ॐ

ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन

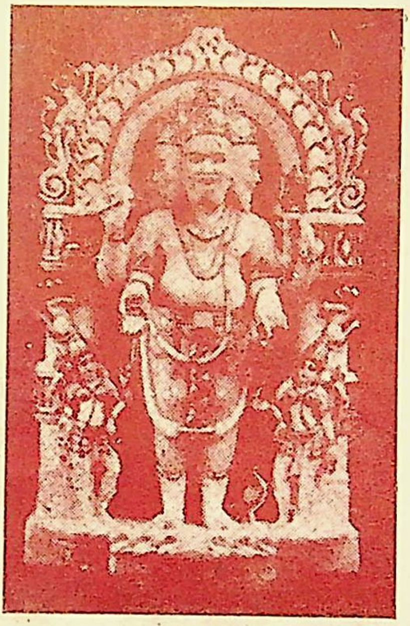

48
BT
7545

JACL-KRC
007545

लेखक :

वैद्य पण्डित रामप्रसाद शर्मा शा

आयुर्वेद एवं धार्मिकाध्यात्मिक

ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन

वैद्य पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री

7545

12.2 g

SV-2024

यो देवानां प्रभवश्चोद्‌भवश्च विश्वाधियो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं, स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु ।

जो देवों का प्रभव और उद्‌भव है, विश्व का स्वामी है, सर्वत्र व्याप्त है, जिसने सबसे पहले हिरण्यगर्भ को जन्म दिया था, वह परमेश्वर हमको बुद्धि दे ।

●

को अद्धा वेद क इह प्रवोचद्, देवा अच्छा पथ्या का समेति ।

ददृश्र एषामवमा सदांसि, परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ।

(ऋ. ३।५४।५)

कौन निश्चय के साथ जानता है और कौन बतलायेगा कि देवों तक पहुँचने का मार्ग कौनसा है ? हम देवों के निचले सदनों को तो हम देखते हैं; परन्तु उनके व्रतों में प्रविष्ट, ऊंचे, गुह्य स्थानों को कौन जानता है ?

९-२.२

ॐ

ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन

राजस्थान राज्य-सरकार (शिक्षा विभाग) द्वारा मान्यता प्राप्त
'शिव-तत्त्व-दर्शन' 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन', तथा' विष्णु-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ लेखक—

वैद्य पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री, खेतड़ी वाला

☐

प्राक्कथन लेखक—
विद्याभास्कर आयुर्वेद बृहस्पति, **डॉ. वेद प्रकाश शास्त्री,**
एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत-स्वर्णपदक विजेता) पी-एच. डी., डी. लिट्., डी. एस.-सी.
साहित्याऽऽयुर्वेदरत्न **हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)**

☐

१९८१

प्रकाशक—

शिव-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ प्रकाशन समिति
बिरलाग्राम (नागदा) मध्य प्रदेश

ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन

(क) लेखकाधीन

लेखक—**वैद्य पण्डित रामप्रसास शर्मा शास्त्री, खेतड़ी वाला**
आयुर्वेद एवं धार्मिकाध्यात्मिक विविधोपाधि-अलंकृत

□

प्रथम संस्करण : १९८१

JACL-KRC
007545

□

मूल्य : पच्चीस रुपये

□

प्रकाशक—**शिव-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ प्रकाशन समिति**
बिरलाग्राम (नागदा) मध्यप्रदेश

□

मुद्रक—अर्चना प्रकाशन, अजमेर (राजस्थान)

पुस्तक प्राप्ति स्थान

पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री,
मेहतवास, बिरला ग्राम,
(नागदा) मध्यप्रदेश

ओम प्रकाश शर्मा,
६६/११, ग्रेसिम स्टाफ कॉलोनी,
बिरला ग्राम, (नागदा) मध्यप्रदेश

।। ॐ विश्वनिर्मात्रे ब्रह्मणे नमः ।।

समर्पण

तत्त्व-दर्शन यह आपका,
विश्व-विधाता स्वीकार करो ।
तत्त्व-मनन में रत रहूँ,
वरदान यही प्रदान करो ।।

कार्तिक पूर्णिमा, शनिवार सं. २०३७ वि. रामप्रसाद शर्मा, खेतड़ी निवासी
दिनाङ्क २२ नवम्बर, १९८० ईस्वी

ग्रन्थकार--

वैद्य पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री खेतड़ी वाला
आयुर्वेद एवं धार्मिकाध्यात्मिक विविधोपाधि अलंकृत

।। ॐ ब्रह्माम्यां नमः ।।

श्रीमान्/श्रीमती ______________________________

____

सादर सप्रेम भेंट, उपहार

की ओर से

प्राक्कथन

महाकवि भर्तृहरि ने नीति शतक में लिखा है —

'स जातो येन जातेन याति वंशसमुन्नतिम् ।'

यह कथन अक्षरशः यदि किसी पर घटित होता है तो विद्वद्वरेण्य आचार्य रामप्रसाद शर्मा शास्त्री पर ही । श्रीशास्त्रीजी आर्ष परम्परा के वे बहुमूल्य मोती हैं जिनको स्वकीय अध्ययन के स्वारस्य को विश्व की थाती बनाने और उसे विश्वात्मा को समर्पित करने का चाव आर्ष परम्परा के उत्तराधिकारी होने के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है । अपने अवस्थताजन्य शैथिल्य और व्यस्तता की अवहेलना कर श्री शास्त्रीजी अद्य प्रभृति—शिव-तत्त्व-दर्शन, शक्ति-तत्त्व-दर्शन, विष्णु-तत्त्व-दर्शन तीन ग्रन्थरत्न धर्मप्राण सनातन धर्मानुयायियों को समर्पित कर चुके हैं और इस व्याज से ऋषि-ऋण से उऋण होने का गौरव अर्जित कर चुके हैं । इतना सब होने पर भी उनका प्रबुद्ध चैतन्य उन्हें ऋषियों की गौरवमयी परम्परा को अधिकाधिक समुज्ज्वल रूप में आगे बढ़ाने के लिये प्रेरित करता रहता है और वे बद्धकक्ष होकर उसके आग्रह को स्वीकार कर कर्मभूमि में सक्रिय हो उठते हैं ।

सम्प्रति श्री शास्त्रीजी ने ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन के प्रणयन हेतु कमर कसी है । शिव, शक्ति और विष्णु-तत्त्व-दर्शन के प्रणयन के पश्चात् ब्रह्मा-तत्त्व की ओर उनका उन्मुख होना स्वाभाविक ही है ।

कहने में भले ही यह बात सामान्य सी लगे कि जिस व्यक्ति ने तीन-तीन विषयों पर साधिकार ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं, उसके लिये 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' जैसे ग्रन्थ का प्रणयन बिल्कुल सामान्य सी बात है; परन्तु है यह सुतरां क्लिष्टतम कार्य ही । शास्त्रों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की समानरूपेण व्याख्या मान्यता और महत्ता तो प्रतिपादित है परन्तु उपासना का विधान है मात्र शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी का, शुक्रनीति-४।३९६ में उक्त पंचदेव के ही मन्दिर बनाने का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

शृंगाटके ग्राममध्ये विष्णोर्वा शंकरस्य च ।
गणेशस्य रवेर्देव्याः प्रासादान् क्रमतो न्यसेत् ॥

अर्थात् राजा का कर्तव्य है कि वह चौराहों पर, गांवों के बीच में, विष्णु, शंकर, गणेश, सूर्य और दुर्गा के मन्दिर बनवाये ।

कैवल्य उपनिषद् में ब्रह्मा-विष्णु और महेश की अभिन्नता प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

'स ब्रह्मा, स विष्णुः स रुद्रः'

अर्थात् वही ब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र है ।

इस स्थिति में स्वभावतः यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब तीनों देव समान स्तर के भागी हैं तब ब्रह्मा के मन्दिर का विधान क्यों नहीं है ?

पुराणों में तीन पुराण ब्रह्माजी से सम्बद्ध हैं—

(१) ब्रह्मपुराण

(अ) ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ॥

(मत्स्य पुराण ५३।१३)

(ब) तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्रह्म संज्ञकम् ।

(देवीभागवत १।३।५)

(२) पद्मपुराण

एतदेव यदा पद्मं ह्यमूद्धैरण्मयं जगत् ।
तद् वृत्तान्तादयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।

(मत्स्य ५३।१३।१४)

(३) ब्रह्माण्डपुराण

ब्रह्मा ब्रह्माण्ड माहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः ।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्ड द्विशताधिकम् ॥

(मत्स्य ५३।५५)

पुराण परम्परा विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति, ब्रह्मा से शिव की उत्पत्ति स्वीकारती है, इस स्थिति में विष्णु और शिव के मन्दिर का विधान, ब्रह्मा के सम्बन्ध में उपेक्षा अथवा उदसीनता क्यों बरती गई यह विचारणीय प्रश्न है। श्रीरामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने इस दिशा में विशद चिन्तन कर उसके स्वारस्य नवनीत से अपने प्रबुद्ध पाठकों को लाभान्वित बनाने की दिशा में अभिनव प्रयास किया है जो न केवल स्तुत्य अपितु अंगीकरणीय भी है। कतिपय विद्वानों के अनुसार ब्रह्मादुहिताप्रसंग तथा ब्रह्मा-बालखिल्य प्रसंग को ब्रह्मा की पूजा का निषेधक विधान प्रतिपादित किया जाता है; परन्तु यह समीचीन नहीं है। इसका युक्तियुक्त खण्डन तथा तात्त्विक विवेचन मेरे कनिष्ठ पितामह शास्त्रार्थ महारथी पण्डित माधवाचार्यजी शास्त्री ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रत्न 'पुराण दिग्दर्शन' के सन्देहभास निवारण नामक नवम अध्याय में पृष्ठ ४१० से ४३४ के अन्तर्गत किया है।

यद्यपि 'प्रजाकामः धातारं पूजयेत' आदि उल्लेख यत्र-तत्र मिलते हैं और स्वयं महाकवि कालीदास ने पुत्र प्राप्त्यर्थ वसिष्ठाश्रम के लिये प्रस्थान करने वाले दिलीप से ब्रह्मा के पूजन का निर्देश इस प्रकार दिया है—

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्र काम्यया ।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ॥

(रघुवंश १।३५)

तथापि ब्रह्मा की पूजा कब, कहाँ, कैसे करनी चाहिये इसका उल्लेख प्रायः नहीं मिलता; किन्तु शर्मा शास्त्री ने स्वयं अपने प्रयत्न प्रयासों तथा अपने सम्पर्कीय

विद्वानों की सहायता सहयोगों द्वारा जो भी पूजा विधि एवं इस विषय में जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसको सम्मिलित कर इस अभाव की पूर्ति का प्रयास किया है।

विद्वद्वर मल्लिनाथ ने एकत्र सृष्टि कर्ता ब्रह्मा के अर्चन का निर्देश पितृऋण से उऋ्रण होने के लिये आवश्यक प्रतिपादित किया है। यह सब होने पर भी ब्रह्मा के मन्दिर की स्थिति मात्र पुष्कर में दृग्गोचर होती देखी व सुनी गई, अन्यत्र ब्रह्मा के मन्दिर का अभाव ही सुना गया था; किन्तु लेखक ने अनेक प्रयसों द्वारा पुष्कर के अतिरिक्त और अनेक ब्रह्मा के मन्दिरों का पता लगाकर उनके परिचय भी लिखे हैं।

पृथूदक (पिहोवा-कुरुक्षेत्र) में ब्रह्मयोनि, हरिद्वार में ब्रह्मकुण्ड, बद्रीनारायण क्षेत्र में ब्रह्मकपाली तथा कुरुक्षेत्र के थानेश्वर में ब्रह्मसर, रसालवा में ब्रह्मतीर्थ, भरौत में ब्रह्मावर्त तीर्थ, शीला खेड़ी में ब्रह्मोदुम्बर तीर्थ, थाना में ब्रह्मस्थान एवं एलोरा के कैलास मन्दिर में खनित ब्रह्मा की पूजित मूर्ति ब्रह्मा की व्यापकता, आराध्य रूप में स्थिति प्रतिपादित करती है; परन्तु इस पर भी ब्रह्मा के मन्दिरों (देवालयों) की न्यूनता आश्चर्य का विषय ही कहा जा सकता है।

शर्मा शास्त्री ने इस विषय पर विस्तृत रूप में प्रकाश डालने के लिये 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। यह ग्रन्थ गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों के प्रतीक रूप में चौबीस सोपानों (अध्यायों) में लिखा गया है। और ब्रह्माजी के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं के लेखों में उपलब्ध सामग्री को चुन-चुन कर ब्रह्मा जी का सर्वाङ्गीण परिचय देने का प्रयास किया है। यही नहीं ब्रह्मा के पश्चात् उनकी शक्तियों, उनके वाहनों और तत्परक प्रतीकों की भी भावपूर्ण व्याख्या व पूजा विधि प्रस्तुत की हैं। द्विजों के लिये ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) की आवश्यकता, महत्ता एवं उसकी निर्माण विधि का साङ्गोपाङ्ग वर्णन एवं चोटी (शिखा) रखने की आवश्यकता, महत्त्व भी लिखे हैं। अन्त में ग्रन्थ समापन प्रार्थना व सर्वमङ्गल कामना लिखकर ग्रन्थ पूर्ण किया है। यद्यपि मान्यता है—

'गंगा, गायत्री, गोमाय, इन्हें जो माने हिन्दू कहाय'

तथापि आज का हिन्दू न केवल इन तीनों से बल्कि शिखा-सूत्र-तिलक आदि से भी वंचित होता चला जा रहा है। वह वेद के इस आदर्श को भूल गया है—

(अ) सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम्॥

(कात्यायन स्मृति)

(ब) ऊर्ध्व पुण्ड्रं मृदा धार्यं भस्मनात्तु त्रिपुण्ड्रकम्।

(द) मुक्तकक्षो महाधमः— (शिष्ट स्मृति)

परिणाम यह है कि हिन्दू अधःपतित होता चला जा रहा है। शर्मा शास्त्री ने इस ग्रन्थ रत्न में हिन्दू के करने योग्य कार्यों का उल्लेख कर एक आदर्श धर्मगुरु

वाहनों तथा उनकी पूजा विधि, प्रार्थनाओं उनकी उपादेयता आदि का गुम्फन और संकलन इस विशेषता के साथ किया है कि यह ग्रन्थ आर्ष परम्परा की धरोहर बन गया है।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि धार्मिक-जगत् लेखक के पूर्व प्रकाश्य ग्रन्थों की भाँति इस ग्रन्थ को भी सश्रद्ध अपना कर पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री को ऐसे ही और ग्रन्थरत्न प्रस्तुत करने के लिये उत्प्रेरित करेगा।

इन शब्दों के साथ मैं श्री पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री का अभिवादन करता हूँ और सृष्टि कर्ता से प्रार्थना करता हूँ कि वह इन्हें दीर्घायु और कार्यक्षमता प्रदान करे, जिससे श्री शर्मा शास्त्री जी अपने स्वाध्याय के स्वारस्य से जगती को अनन्त काल तक आप्यायित करते रहें।

'रामप्रसाद' प्रसाद राम का,
हो न भला क्यों प्रज्ञाधाम।
प्रखर प्रणेता ! लो जन जन का,
नमन, अहर्निश आठों याम॥

हैदराबाद (आन्ध्र)
दीपोत्सव २०३७ विक्रम

विद्याभास्कर
आयुर्वेद वृहस्पति
डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री
एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत-स्वर्णपदकविजेता)
पी-एच. डी., डी. लिट्., डी. एस. सी.,
साहित्यऽऽयुर्वेदरत्न

॥ ॐ ब्रह्मणे नमः ॥

आत्म-निवेदन

ॐ यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(अथर्ववेद १०।८।१)

'जो भूत, भविष्यत् एवं वर्तमानकालिक समस्त जगत् के अधिष्ठाता नियन्ता है एवं केवल स्वः (विशुद्ध अनन्त आनन्द) ही जिसका स्वरूप है, उस ज्येष्ठ (अति प्रशस्त महान्) ब्रह्म को नमस्कार है।'

समस्त सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू समाज में चाहे वह किसी भी जाति, मत, पंथ एवं धर्मानुयायी हों, त्रिदेवत्व ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मान्यता पाई जाती है।

सृष्टिस्थित्यकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
य सज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

(विष्णुपुराण १।२।६६)

'वे एक ही भगवान् जनार्दन जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन संज्ञाओं को धारण करते हैं।'

लेखक का जन्म ऐसे कुल में हुआ है, जिसमें वेद, वेदान्त, ज्योतिष, पुराण, धर्मशास्त्रादि की शिक्षा पूर्वजों में शताब्दियों से चली आ रही है। ग्रन्थों का पठन, मनन, स्वाध्याय एक व्यसन रूप में सर्वदा ही बना रहा है। प्रातःस्मरणीय परम पूज्य स्वर्गीय पितामह पण्डित महासुखजी शर्मा जो वेद, वेदान्त, ज्योतिष, पुराण, धर्मशास्त्रादि के प्रकाण्ड विद्वान् थे, द्वारा तथा पूज्यपाद गुरुवर्य्य विद्वानों द्वारा प्राप्त शिक्षा व सम्पर्क, ज्ञानोपदेश का ही प्रभाव है कि यह अकिंचन लेखक सन् १९६४ में जीविकोपार्जन भार से मुक्त होकर अपने वानप्रस्थाश्रम के सदुपयोग हेतु इस प्रकार के धार्मिक, आध्यात्मिक ग्रन्थों के अधिक पठन, मनन, स्वाध्याय में लग गया; किन्तु लेखक का व्यवसाय (पेशा) पुस्तक लेखन कभी रहा नहीं, न लेखन कला का अभ्यास ही किया, अतः पुस्तक लेखन में अनेक प्रकार की भूल-त्रुटियां रहने के भय के कारण संकोच बना रहा; फिर भी भगवान् साम्ब सदाशिव की कृपा अनुग्रह प्रेरणा तथा पूर्वजों एवं गुरुवर्य्यों के आशीर्वाद का आश्रय ग्रहण कर 'शिव-तत्त्व-दर्शन' नामक एक ग्रन्थ लिख डाला। जिसको अनेक धर्मगुरुओं, धार्मिक, आध्यात्मिक प्रवुद्ध वरिष्ठ विविध शास्त्र पारंगत विद्वानों ने अवलोकन पश्चात् अपने आशीर्वाद, मङ्गल कामनाएँ तथा सम्मतियां प्रदान करने का अनुग्रह किया। इसके प्रकाशन हेतु 'शिव-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ प्रकाशन समिति' का गठन हुआ और उस समिति ने अर्थ संग्रह की व्यवस्था कर उसका प्रकाशन कराया। 'शिव-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ का प्रकाशन होने पर सैकड़ों वरिष्ठ विद्वानों तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी सम्मतियाँ

एवं प्रशंसा पत्र प्रेषित किये। यदि उन सबको पुस्तकाकार किया जावे तो एक अच्छी बड़ी स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है। राजस्थान-राज्यसरकार, शिक्षा विभाग ने भी अपने विद्यालय पुस्तकालय संकेत क, ख, ग, घ के लिये मान्यता प्रदान की। अनेकानेक ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं एवं अन्वेषण कर्ताओं की रिपोर्टों के तथ्यमय, अंश, सारांश संकलन द्वारा ही अपनी वाङ्मयी पूजा के रूप में 'शिव-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ का लेखन किया गया था। इसके पश्चात् इसी प्रकार से दूसरा ग्रन्थ 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' तथा तीसरा ग्रन्थ 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' के भी अपनी वाङ्मयी पूजा के रूप में लेखन और प्रकाशन हुए। जिनका भी पूर्व लिखित प्रकाशित ग्रन्थों से अधिकाधिक धर्माचार्यों, विद्वानों द्वारा समादर किया गया।

इन ग्रन्थों के लेखन कार्य में एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि सनातन-धर्मावलम्बियों में त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की मान्यता तो समान रूप में है, किन्तु ब्रह्मा जी की पूजा विधि एवं उनके प्रादुर्भाव की पर्वतिथि व्रत उत्सवादि मनाने के लिये भगवान् विष्णु, शिव के समान उल्लेख क्यों प्राप्त नहीं हैं। उपासना विषय में भी पञ्चदेवोपासना का ही शास्त्रों में आदेश प्राप्त होता है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

'सूर्य, गणेश, देवी, शिव, और भगवान् केशव इन पाँच देवताओं का सभी कार्यों में पूजन करना चाहिये।'

सूर्य, गणेश, देवी, शिव, एवं विष्णु के अवतार राम कृष्ण आदि के मन्दिर प्रायः सभी ग्राम शहरों में प्राप्त होते हैं; किन्तु ब्रह्माजी का मन्दिर पुष्कर के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर होने का ज्ञान तो नितान्त ही जनसाधारण को नहीं है। इनके मन्दिर निर्माण व उपासना की इस प्रकार उपेक्षा कैसे की गई? अनेक पुस्तक विक्रेताओं, प्रकाशकों, पुस्तकालयों से भी ब्रह्मा विषयक कोई छोटी-बड़ी पुस्तक हो तो प्राप्त करने के अनेक प्रयास किये गये, किन्तु भगवान् ब्रह्मा जी की अर्चना, प्रार्थना, उपासनादि विषयक कोई पुस्तक भी प्राप्त नहीं हो सकी। अतएव इन प्रश्नों के समाधान हेतु अनेक ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं तथा अनेक विद्वानों से जो भी साहित्य सामग्री प्राप्त हो सकी, उसी के आधार पर यह ग्रन्थ भी भारत की बहुमुखी भाषा हिन्दी में भगवान् ब्रह्मा एवं उनकी ब्रह्मशक्ति सावित्री-गायत्री तथा उनकी वाक् शक्ति सरस्वती की वाङ्मयी पूजा के रूप में लिखकर इस अभाव की पूर्ति का प्रयास किया गया है। यद्यपि पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों की अपेक्षा छोटा ही हो पाया है, क्यों कि भगवान् ब्रह्मा जी के विषय में अन्य ग्रन्थों में भी साहित्य सामग्री अत्यन्त स्वल्प ही प्राप्त हो पाई, अतः गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों के आधार पर चौबीस सोपानों (अध्यायों) में यह ग्रन्थ लिखा गया है।

इस ग्रन्थ में भगवान् ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव उनकी मूर्ति प्रतीक निदान भगवान् ब्रह्मा की आयु तथा युगादि का कालमान, भगवान् ब्रह्मा का तात्त्विक

विवेचन, भगवान् ब्रह्माजी के विभिन्न नाम होते हुए भी उपनिषद्, स्मृति, पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया ब्रह्म-तत्त्व में एक ही है। भगवान् ब्रह्मा का अवतार विवेचन, विखना मुनि, ऋक्षराज जाम्बवान्, भगवान् कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध, मध्वाचार्य ब्रह्मा के अवतार, ब्रह्माजी का हिरण्यकशिपु, रावण, विभीषण, कुंभकर्ण, कंस को वरदान प्रदान करने का विवेचन, नारदजी का भगवान् ब्रह्माजी को शाप ब्रह्माजी के मंत्र कवच, स्तोत्र, पूजा विधि का लोप होने की कथा, ब्रह्माजी के मुख्य क्षेत्र पुष्कर व ब्रह्मा मन्दिर का परिचय माहात्म्य, ब्रह्मा जी के अन्य मन्दिरों का परिचय, सावित्री-गायत्री, सरस्वती की मूर्ति प्रतीक निदान, ब्रह्मा, सरस्वती, सावित्री-गायत्री के वाहन राजहंस की व्याख्या, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) की आवश्यकता महत्त्व तथा निर्माण विधि, शिखा (चोटी) की आवश्यकता महत्त्व, ब्रह्मा, सावित्री-गायत्री-सरस्वती की पूजा विधि और ग्रन्थ समापन प्रार्थना स्वस्त्यन, सर्व मङ्गल कामना, भविष्य कामना लिखी गई हैं।

किसी भी प्रकार का श्रेय या लाभ प्राप्ति हेतु इन ग्रन्थों का लेखन नहीं किया है। अपने वानप्रस्थ आश्रम जीवन का सदुपयोग अपनी वाङ्मयी पूजा के रूप में ब्रह्मा स्वरूप भगवान् परमपिता परमात्मा के विभिन्न स्वरूप अवतारों का स्मरण, नमन, स्तवन, अर्चना, पूजा हो जाये, यही इसका मुख्य उद्देश्य है। यह अनेक ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं के साहित्य का संकलन मात्र है। शास्त्र, साहित्य, लेखन कला, सम्बन्धित अनेक भूल त्रुटियाँ इसमें रही होंगी। उनके लिये मैं पूज्यवर्य्यों, विद्वानों, पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ। कोई भूल त्रुटियाँ दृष्टि में आवें, उनको मुझे अवश्य सूचित करें और उन पर ध्यान न देकर जो उत्तम मीठा सारयुक्त फल रुचिकर प्रतीत हो, ग्रहण करें, यही मेरा विनम्र निवेदन है।

लेखक द्वारा एक स्वल्पबुद्धि मानव होकर परब्रह्म परमात्मा के विभिन्न स्वरूपों और विश्वविधाता, सृष्टि निर्माणकर्ता के विषय में कुछ लिखने का प्रयास करना, पेदली पक्षी के ऊपर को पैर करके सोने वाली कहावत के समान ही है; किन्तु कृपा आभास प्रेरणा उसी परब्रह्म परमेश्वर की है। भगवान् विघ्नहरण गणेश, श्रीमां सरस्वती, कुमार, कुमारी, सिद्ध, किन्नर, सूर्यादि नवग्रह, विनायक, गौरी, नारायणी, सावित्री-गायत्री, भगवान् शिव, विष्णु, आदित्य, प्रजापति ब्रह्मा, माता-पिता, पूर्वज पितृगण तथा गुरुवर्य्यों के चरणों में नतमस्तक होकर लेखन का शुभारम्भ किया था। उन्हीं की कृपा आशीर्वाद से यह ग्रन्थ अत्यन्त शीघ्र तैयार होकर प्रस्तुत हो रहा है। यह शुभ कार्य परम पूज्य इष्ट देवों ने अपनी अलक्षित शक्ति प्रेरणा ज्ञानाभास द्वारा ही कराया है। जिसकी अनुभूति समय-समय पर अनेकों बार परोक्ष-अपरोक्ष रूप में मुझे होती रही है।

इस पुण्यप्रद ; कार्य में कई धर्मप्राण पूज्य महानुभावों, विद्वानों, धनी-मानी सज्जनों, भाइयों, बहिनों द्वारा साहित्य संग्रह, परोक्ष, अपरोक्ष अर्थसंग्रह कार्य हुआ है। ग्वालियर रेयोन, भारत कोमर्स इन्डस्ट्रीज के अनेक छोटे-बड़े कर्मचारी

अधिकारीगण तथा 'शिव-तत्व-दर्शन ग्रन्थ प्रकाशन समिति' के कार्यकर्ताओं के सम्मिलित करने पर एक वृहत्संख्या है। इनमें सर्वाधिक सुरुचि बाबू दुर्गाप्रसाद जी मण्डेलिया की रही है। इन सबके सुरुचि सहयोग चिरस्मरणीय रहेंगे। हम उन सब ही के प्रति आभारी हैं।

इस ग्रन्थ के साहित्य संग्रह में महामहोपाध्याय वयोवृद्ध आचार्य हरिशंकर वेणीराम शास्त्री, यज्ञ कर्मकाण्ड ज्योतिषाचार्य, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालंकार, हलवद (सौराष्ट्र), वेद-न्यायाचार्य प्राचार्य पण्डित रामचन्द्र शास्त्री होसमने तथा आचार्य पण्डित विश्वेश्वर शास्त्री द्राविड, साङ्गवेद संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी, डॉ. व्रजेन्द्रनाथ शर्मा, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट., एफ. आर. ए. एस., लन्दन, कीपर एण्ड अध्यक्ष (पुरातत्त्व विभाग) राष्ट्रीय संग्रहालय भारत सरकार, नयी दिल्ली ने अपने लेख एवं भगवान् ब्रह्मा की पूजा विधि प्रेषित करने का अनुग्रह किया है और ज्योतिष शास्त्र मार्तण्ड, खगोल शास्त्र दिवाकर, ज्योतिष भास्कर, सिद्धान्तज्योतिषरत्न, सिद्धान्तज्योतिषाचार्य, व्याकरणशास्त्री, काव्य तीर्थ, ज्योतिषशास्त्रवाचस्पति, आचार्य हिम्मत राम महाशंकर शास्त्री याज्ञिक (ज्ञानी) अध्यक्ष प्राच्य विद्या भवन, वेधशाला, अहमदाबाद (गुजरात) ने 'प्राच्य ब्रह्मक्षेत्र इडर राज्य का इतिहास' नामक पुस्तक जिसमें ब्रह्मपुराणान्तर्गत ब्रह्मक्षेत्र का माहात्म्य भी है, इस ग्रन्थ में आवश्यक साहित्य संग्रहार्थ प्रेषित करने का अनुग्रह किया था; किन्तु पुस्तक गुजराती भाषा में होने के कारण हम पूर्ण ज्ञान लाभ करने से वंचित रहे। परन्तु इसमें से कतिपय आवश्यक परिचय हिन्दी में करने में श्रीमती पुनीता देवी बुच्च बी. ए., बी. लिब., धर्मपत्नी श्रीमान् विपिन बुच्च इञ्जिनीयर महोदय, ग्रेसिम, बिरलाग्राम (नागदा) ने सहयोग प्रदान किया है। हम उन सबके प्रति कृतज्ञ एवं आभारी हैं।

विद्या भास्कर, आयुर्वेद वाचस्पति, डॉ. वेद प्रकाश शास्त्री एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट., डी. एस-सी., साहित्य-आयुर्वेद रत्न ने इस ग्रन्थ में अपने विचार प्राक्कथन के रूप में लिखने का अनुग्रह किया है। उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ प्रकाशन से पूर्व जिन परमपूज्यपाद धर्मगुरुओं, धर्ममर्मज्ञ विविधशास्त्रनिष्णात विद्वानों के ग्रन्थावलोकन एवं संक्षिप्त परिचय अवलोकन कर अपने आशीर्वाद मङ्गल कामनाएं एवं शुभ सम्मतियां प्रदान करने का अनुग्रह किया है। उन सबका मैं चिरकृतज्ञ ऋणी हूँ।

'ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-दर्शन' के मुद्रणार्थ प्रबन्ध भार 'शिव-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ प्रकाशन समिति बिरलाग्राम (नागदा) मध्यप्रदेश' ने उठाया है। मैं समिति के सभी कार्यकर्ताओं का आभारी हूँ।

डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली, एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), पी-एच. डी., साहित्य रत्न ने सर्वदा मेरा पितृ समान आदर करते हुए, अपना ही कार्य मानकर मुद्रण

प्रबन्धादि सभी कार्यों में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है और इसी प्रकार से श्री ओम प्रकाश शर्मा, बी. कॉम; लक्ष्मणगढ़ निवासी ने शिव-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ प्रकाशन समिति संबन्धित सभी कार्यों में सक्रिय एवं तत्परता से सर्वदा ही सहयोग प्रदान किया है। मैं उनके प्रति सर्वदा आभारी हूँ।

पुस्तक मुद्रण में असावधानीवश कतिपय अशुद्धियां रह गयी हैं। जिनका शुद्धि पत्र पुस्तक के अन्तिम भाग में लगाया गया है। कृपया पाठकगण शुद्धि पत्र के अनुसार शुद्ध पढ़ने का कष्ट करें।

यह परम पवित्र पुण्यप्रद मेरा त्रिदेवों (ब्रह्मा,विष्णु,महेश) का उनकी शक्तियों सहित वाङ्मयी पूजा यज्ञ कार्य इतनी शीघ्रता से पूर्ण हो पाया है। इसका श्रेय उक्त पूज्यवर्य्यो, महानुभावों, विद्वानों, श्रीमानों, भाई, बहिनों को ही है। परम जगत् पिता सृष्टि निर्माता भगवान् ब्रह्म(ब्रह्मा) के चरण कमलों में मैं करबद्ध प्रार्थना करता हूँ, उन सभी को सपरिवार सानन्द रहते हुए निरन्तर अपने व्यवसाय कार्यों में उन्नति प्रदान करे, उनके विचार बुद्धि धार्मिक आध्यात्मिक विषयों में विशेष रुचिकर प्रगति करावें, अपना मन अविचल दृढ़ भगवद् भक्ति में सर्वदा लगाये रक्खे।

परम पूज्य गुरुवर्य्य, आदरणीय विद्वान् साहित्य सेवी अनुसंधानाभिलाषी भाई-बहिनें, माताएँ अन्य भगवद्भक्त पाठकगण इस ग्रन्थ के पठन मनन द्वारा परम पिता विश्व विधाता भगवान् ब्रह्म (ब्रह्मा) एवं उनकी शक्ति सावित्री-गायत्री, सरस्वती की भक्ति व विद्यालाभ प्राप्त करेंगे, यही मेरा परम सौभाग्य होगा, परिश्रम सफल एवं जन्म कृतार्थ होगा।

परमपिता सृष्टि निर्माता प्रजापति भगवान् ब्रह्म (ब्रह्मा) श्री माँ ब्रह्मशक्ति सावित्री-गायत्री, वाक् शक्ति श्री माँ सरस्वती इस ग्रन्थ को मेरी वाङ्मयी पूजा के रूप में स्वीकार कर, आशीर्वाद प्रदान करें कि मेरा मन और चित्त परब्रह्म परमात्मा के मनन-चिन्तन में ही सर्वदा लगा रहे।

यह 'ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ प्रजापति सृष्टि निर्माता भगवान् ब्रह्म (ब्रह्मा) एवं उनकी ब्रह्मशक्ति सावित्री-गायत्री तथा वाक्शक्ति सरस्वती के श्रीचरणों में मेरी पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति से समर्पण करता हूँ। वे सबको आनन्द मङ्गल, सद्बुद्धि तथा ईश्वर भक्ति प्रदान करें।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।।

'जो सभी देवताओं को अपने तेज से तेजस्वी बनाते हैं, जो देवताओं में सर्वश्रेष्ठ इन्द्र अथवा अग्नि रूप में स्थित हैं, जो सब देवताओं से प्रथम ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुए, उस ब्राह्मी दीप्ति (ब्रह्म प्रकाश) आदित्य भगवान् (सूर्य-नारायण) प्रजापति को मेरा नमस्कार है।' शुभम्।

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा सम्वत् २०३७ विक्रम
दिनांक २२ नवम्बर १९८० ईस्वी

विनीत
राम प्रसाद शर्मा
खेतड़ी (राजस्थान)
निवासी

अनुक्रमणी

प्राक्कथन			
आत्म-निवेदन			
मङ्गलाचरण			१
सोपान	१	ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव	४
”	२	ब्रह्माजी की आयु, उनके रचे सर्ग	१०
”	३	ब्रह्मा तत्त्व विवेचन	१५
”	४	विभिन्न नाम; पर ब्रह्म तत्त्व एक	२५
”	५	ब्रह्मा का अवतार विवेचन	२८
”	६	श्री विखना मुनि	२८
”	७	ऋक्षराज जाम्बवान्	३३
”	८	श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध	३४
”	९	श्री मध्वाचार्यजी	४४
”	१०	ब्रह्माजी के वरदान	४८
”	११	हिरण्यकशिपु को वरदान	४९
”	१२	रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण को वरदान	५१
”	१३	कंस को वरदान	५३
”	१४	नारदजी का शाप	५८
”	१५	पुष्कर का परिचय, अन्य मन्दिर व मूर्तियां	६४
”	१६	ब्रह्मा की वाक् शक्ति सरस्वती	७८
”	१७	सावित्री-गायत्री	८२
”	१८	वाहन राजहंस	८३
”	१९	ब्रह्मसूत्र	८४
”	२०	शिखा की आवश्यकता व महत्त्व	९३
”	२१	सरस्वती पूजा विधान	९५
”	२२	सावित्री (गायत्री) पूजा विधि	१०४
”	२३	ब्रह्मा पूजन विधि	१०९
”	२४	ग्रन्थ समापन प्रार्थना, निवेदनादि	११७
परिशिष्ट—(क)		ब्रह्माजी की उत्पत्ति	१२८
		मूर्ति का विज्ञान, पूजा न होने का कारण	१३१
		पंचदेव व मूर्तियों की पूजा का कारण	१३३
		पंचोपासना के विधान का प्रयोजन	१३४
		ब्रह्मा का स्वरूप	१३४
		कलौ ब्रह्मादि सर्वेषां देवानां पूज्यत्वम्	१३७
		अथ श्री ब्रह्मा पूजन प्रकार:	१३९
		ब्रह्माजी के मन्दिर तथा मूर्तियां	१४०
परिशिष्ट—(ख)		आशीर्वाद, मंगल कामना तथा सम्मतियां	१४३

ॐ

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-दर्शन

मङ्गलाचरण

ॐ नमो विघ्नराजाय सर्वसौख्यप्रदायिने ।
दुष्टारिष्टविनाशाय पराय परमात्मने ॥
लम्बोदरं महावीर्यं नागयज्ञोपशोभितम् ।
अर्धचन्द्रधरं देवं विघ्नव्यूहविनाशनम् ॥

'सम्पूर्ण सौख्य प्रदान करने वाले सच्चिदानन्दस्वरूप विघ्नराज गणेशजी को नमस्कार है। जो दुष्ट अरिष्ट-ग्रहों का नाश करने वाले परात्पर परमात्मा हैं, उन गणपति को नमस्कार है। जो महापराक्रमी, लम्बोदर, सर्पमय यज्ञोपवीत से सुशोभित, अर्धचन्द्रधारी और विघ्न-समूह का विनाश करने वाले हैं, उन गणपति देव की मैं वन्दना करता हूँ।'

कुमारी च कुमारश्च गणेशश्च विनायकः ।
सिद्धाश्च किंनराश्चापि मङ्गलं प्रदिशन्तु न ॥

'कुमारी, कुमार, गणेश, विनायक, सिद्ध तथा किन्नरगण हमें मङ्गल प्रदान करें।'

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

'नारायणी ! तुम सब प्रकार का मङ्गल प्रदान करने वाली मङ्गलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रों वाली गौरी हो, तुम्हें नमस्कार है।'

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां,
वंदे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥

'जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचार की परमतत्त्व हैं, जो सब संसार में फैल रही हैं, जो हाथों में वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, अभय देती हैं, मूर्खता रूपी अन्धकार को दूर करती हैं, हाथ में स्फटिक मणि की माला लिये रहती हैं, कमल के आसन पर विराजमान होती हैं और बुद्धि देने वाली हैं, उन आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वती की वन्दना करता हूँ।'

रक्तःश्वेत हिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां,
रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ।

गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां,
पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ।।
(देवी भागवत १२।६)

'जो रक्त, श्वेत, पीत, नील और धवल वर्णों के श्रीमुखों से सम्पन्न हैं, तीन नेत्रों से जिनका विग्रह देदीप्यमान हो रहा है, जिन्होने अपने रक्तवर्ण शरीर को नूतन लाल कमलों की माला से सजा रखा है, जो अनेक मणियों से अलंकृत हैं, कमल के आसन पर विराजमान हैं, जिनके हाथों में कमल और कुण्डिका एवं दो हाथों में वरमुद्रा तथा अक्षमाला सुशोभित हैं, उन हंस की सवारी करने वाली कुमारी-अवस्था से सम्पन्न भगवती गायत्री की मैं उपासना करता हूँ ।'

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।

'सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देने वाली हे मन्त्रपूत भगवती महालक्ष्मी ! आपको सर्वदा प्रणाम है ।'

नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे ।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शिवतराय ते ।।

'आप परम आराध्य को नमस्कार है । आप परम कारण को नमस्कार है । आप शिव को नमस्कार है और परम कल्याणमय प्रभु को नमस्कार है ।'

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं
सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षम् ।
सहारवक्षः स्थलकौस्तुभश्रियं
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ।।

'जो शङ्ख-चक्र धारण किये हुए हैं, किरीट और कुण्डलों से विभूषित हैं, पीताम्बर ओढ़े हुए हैं, सुन्दर कमल के समान जिनके नेत्र हैं, हारयुक्त वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणि की अनोखी शोभा हो रही है । उन चतुर्भुज भगवान् विष्णु को सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ।'

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।।

'जो सभी देवताओं को अपने तेज से तेजस्वी बनाते हैं, जो देवताओं में सर्वश्रेष्ठ इन्द्र अथवा अग्नि के रूप में स्थित हैं, जो सब देवताओं से पहले ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुए, उन ब्राह्मी दीप्ति (ब्रह्मप्रकाश) आदित्य प्रजापति को हम नमस्कार करते हैं ।'

मात-पिता-गुरुदेव, नमन स्वीकार कीजिये ।
रचना तत्त्व-विधाता की, पूर्ण करा दीजिये ।।
यो वै विष्णुः स वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः ।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ।।
(हरिवंश पु. वि. प. १२५।३१)

'जो विष्णु हैं वे ही रुद्र हैं वे ही ब्रह्मा हैं। अर्थात् उनका मूलस्वरूप वस्तुतः एक ही है।'

त्रिदिवत्त्व में ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपों में सर्वत्र मान्यता है; किन्तु उपासना में पञ्चदेवों की ही मान्यता पाई जाती है—

उपासना पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्। (योगशास्त्र)
आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥ (शब्दकल्पद्रुम)

'सूर्य, गणेश, देवी, शिव, विष्णु इन पांचों देवताओं का सभी कार्यों में पूजन करना चाहिये।' इसी प्रकार के प्रमाण कई एक पुराण शास्त्रों में भी प्राप्त होते हैं।

धार्मिक ग्रन्थों का पठन, मनन, स्वाध्याय करने वालों को सहज ही एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब ब्रह्माजी की त्रिदेवों में मान्यता है तो फिर उनकी पूजा उपासना, अर्चना विधि, उनके स्तोत्र (प्रार्थना) भी कहीं अलग से लिखे हुए क्यों प्राप्त नहीं होते हैं? पुष्कर के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर उनके देवालय भी होने का पता सर्वसाधारण को नहीं है। यद्यपि बड़े देवालय, तीर्थ स्थानों पर निर्माण किये हुए बड़े मन्दिरों में मुख्य देव मण्डप के अतिरिक्त छोटे मण्डपों में तथा मन्दिर की भित्ति चित्रों में लगी हुई मूर्तियों में ब्रह्माजी की भी मूर्तियां प्राप्त होती हैं; किन्तु वहां भी उनकी कहीं पूजा नित्य होती हो ऐसा देखने में नहीं आया और भगवान् ब्रह्माजी के विषय में अलग से कोई पुस्तक भी प्राप्त नहीं होती, जिससे इस शंका का समाधान हो सके। कई एक पुराण ग्रन्थों में तपस्या करने वालों की तपस्या द्वारा प्रसन्न होकर उन तपस्या करने वालों को ब्रह्माजी का वर प्रदान करने की कई एक कथाएँ प्राप्त होती हैं।

इन शंकास्पद प्रश्नों का समाधान होने एवं विश्व-निर्माणकर्ता, वेद-अधिष्ठाता तथा वे ब्रह्माजी भी ब्रह्मस्वरूप हैं, थोड़ा-बहुत उनका चिन्तन-मनन हो जाये। उनकी वाङ्मयी पूजा के रूप में 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक एक पुस्तक लिखी जाये। जिसमें सृष्टि रचयिता ब्रह्मा का तात्त्विक प्रतिपादन भी हो सके और अपने वान-प्रस्थ आश्रम समय का सदुपयोग भी हो सके। सृष्टि निर्माता भगवान् ब्रह्मा का विषय और मैं एक स्वल्प बुद्धि साधारण मानव इस विषय में लेखनी उठाऊँ हास्यास्पद-सा ही कार्य है; किन्तु गणेश आदि सभी देवी-देवताओं के चरणों में नमन कर इस कार्य का आरम्भ करता हूँ। वे सब ही देवी-देवता इस कार्य को पूर्ण कराने में मेरे को सहायता प्रदान करने का अनुग्रह करेंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। शेष पूर्ण कराना तो उन्हीं का कार्य है। मैं तो बारम्बार उनकी ही शरण ग्रहण करता हूँ।

***

भगवान् ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव तथा उनकी मूर्ति (प्रतीक) का निदान

सोपान १

रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्ते सनातन ।
त्वया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम् ।।

(वामनपुराण ३।१६)

'सनातन देव ! आपने ही रजोगुण से युक्त होकर ब्रह्मा का रूप धारण करके इस समस्त स्थावर-जंगम जगत् की रचना की है, अतः नाथ ! आपको नमस्कार है ।'

सृष्टि के पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व जल में डूबा हुआ था । उस समय एक मात्र श्रीनारायण देव शेष शय्यापर पौढ़े हुए थे । वे अपनी ज्ञान शक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए ही योगनिद्रा का आश्रय ले, अपने नेत्र मूँदे हुए थे । सृष्टि कर्म से अवकाश लेकर आनन्द में मग्न थे । उनमें किसी भी क्रिया का उन्मेष नहीं था । जिस प्रकार अग्नि अपनी दाहिका आदि शक्तियों को छिपाये हुए काष्ठ में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार श्री भगवान् ने सम्पूर्ण प्राणियों के सूक्ष्म शरीरों को अपने शरीर में लीन करके अपने आधारभूत उस जल में शयन किया, उन्हें सृष्टि काल आने पर पुनः जगाने के लिये केवल कालशक्ति को जाग्रत रखा । इस प्रकार अपनी स्वरूपभूता चिच्छक्ति के साथ एक सहस्र चतुर्युग पर्यन्त जल में शयन करने के अनन्तर जब उन्हीं के द्वारा नियुक्त उनकी कालशक्ति ने उन्हें जीवों के कर्मों की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित किया, तब उन्होंने अपने शरीर में लीन हुए अनन्त लोक देखे । जिस समय भगवान् की दृष्टि अपने में निहित लिङ्ग-शरीरादि सूक्ष्म तत्त्व पर पड़ी, तब वह कालाश्रित रजोगुण से क्षुभित होकर सृष्टि रचना के निमित्त उनके नाभि देश से बाहर निकला । कर्मशक्ति को जाग्रत् करने वाले काल के द्वारा विष्णु भगवान् की नाभि से प्रकट हुआ वह सूक्ष्म तत्त्व कमल कोश के रूप में सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्य के समान अपने तेज से उस अपार जल राशि को देदीप्यमान कर दिया । सम्पूर्ण गुणों को प्रकाशित करने वाले उस सर्वलोकमय कमल में वे विष्णु भगवान् ही अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो गये । तब उसमें से बिना पढ़ाये ही स्वयं सम्पूर्ण वेदों के जानने वाले साक्षात् वेदमूर्ति श्री ब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें स्वयम्भू कहा जाता है । उस कमल की कर्णिका (गद्दी) में बैठे हुए ब्रह्माजी को जब कोई लोक दिखाई नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़कर आकाश में चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओं में चार मुख हो गये । उस समय प्रलयकालीन पवन के थपेड़ों से उछलती हुई जलकी तरङ्गमालाओं के कारण उस जलराशि से ऊपर उठे हुए कमल पर

विराजमान आदि देव ब्रह्माजी को अपना तथा लोकतत्त्वरूप कमल का कुछ भी रहस्य न जान पड़ा।

वे सोचने लगे, इस कमल की कर्णिका पर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? यह कमल भी बिना किसी अन्य आधार के जल में कहां से उत्पन्न हो गया ? इसके नीचे अवश्य कोई वस्तु होनी चाहिये, जिसके आधार पर यह स्थित है।

ऐसा सोचकर वे उस कमल की नाल के सूक्ष्म छिद्रों में होकर उस जल में घुसे। किन्तु उस नाल के आधार को खोजने लगे और खोजते-खोजते नाभि देश के समीप पहुँच जाने पर भी वे उसे न पा सके। उस अपार अन्धकार में अपने उत्पत्ति स्थान को खोजते-खोजते ब्रह्माजी को बहुत समय बीत गया। यह समय (काल) ही भगवान् का चक्र है, जो प्राणियों को भयभीत (करता हुआ उनकी आयु को क्षीण) करता रहता है। अन्त में विफल मनोरथ हो वे वहाँ से लौट आये और पुनः अपने आधार भूत कमल पर बैठकर धीरे-धीरे प्राणवायु को जीतकर चित्त को निःसंकल्प किया और समाधि में स्थित हो गये। इस प्रकार पुरुष की पूर्ण आयु के बराबर काल तक (अर्थात् दिव्य सौ वर्ष तक) अच्छी तरह योगाभ्यास करने पर ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ, तब उन्होंने अपने उस अधिष्ठान को, जिसे वे पहले खोजने पर भी नहीं देख पाये थे, अपने ही अन्तःकरण में प्रकाशित होते देखा। उन्होंने देखा कि उस प्रलयकालीन जल में शेषजी के कमलनाल सदृश गौर और विशाल विग्रह की शय्या पर पुरुषोत्तम भगवान् अकेले ही लेटे हुए हैं। शेषजी के दस हजार फण छत्र के समान फैले हुए हैं। उनके मस्तकों पर किरीट शोभायमान हैं, उनमें मणियां जड़ी हुई हैं, उनकी कान्ति से चारों ओर का अन्धकार दूर हो गया है। वे अपने श्याम शरीर की आभा से मरकतमणि के पर्वत की शोभा को लज्जित कर रहे हैं। उनकी कमर का पीतपट पर्वत के प्रान्त देश में छाये हुए सायंकाल के पीले-पीले चमकीले मेघों की आभा को मलिन कर रहा है, सिर पर सुशोभित सुवर्ण मुकट सुवर्णमय शिखरों का मानमर्दन कर रहा है। उनकी वनमाला पर्वत के रत्न, जल प्रपात, ओषधि और पुष्पों की शोभा को परास्त कर रही हैं तथा उनके भुजदण्ड वेणुदण्ड का और चरण वृक्षों का तिरस्कार करते हैं। उनका वह श्रीविग्रह अपने परिमाण से लम्बाई-चौड़ाई में त्रिलोकी का संग्रह किये हुए है। वे अपनी शोभा से विचित्र एवं दिव्य वस्त्राभूषणों की शोभा को सुशोभित करने वाला होने पर भी पीताम्बर आदि अपनी वेश-भूषा से सुसज्जित हैं। अपनी-अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न मार्गों से पूजा करने वाले भक्तजनों की कृपा पूर्वक अपने भक्तवाञ्छा कल्पतरु चरणकमलों का दर्शन दे रहे हैं, जिनके सुन्दर अंगुलिदल नखचन्द्र की चन्द्रिका से अलग-अलग स्पष्ट चमकते रहते हैं। सुन्दर नासिका, अनुग्रहवर्षी भौहें, कानों में झिलमिलाते हुए कुण्डलों की शोभा विम्बा फल के समान लाल-लाल अधरों की कान्ति एवं लोकार्तिहारी मुस्कान से युक्त मुखारविन्द के द्वारा वे अपने उपासकों का सम्मान, अभिनन्दन कर रहे हैं। वत्स !

उनके नितम्बदेश में कदम्ब-कुसुम की केसर के समान पीतवस्त्र और सुवर्णमयी मेखला सुशोभित है तथा वक्षस्थल में अमूल्यहार और सुनहरी रेखावाले श्रीवत्स-चिह्न की अपूर्व शोभा हो रही है। वे अव्यक्त मूल चन्दनवृक्ष के समान हैं। महामूल्यवान् केयूर और उत्तम-उत्तम मणियों से सुशोभित उनके विशाल भुजदण्ड ही मानों उनकी सहस्त्रों शाखाएं हैं और चन्दन के वृक्षों में जैसे बड़े-बड़े सांप लिपटे रहते हैं, उसी प्रकार उनके कंधों को शेषजी के फणों ने लपेट रखा है। वे नागराज अनन्त के बन्धु श्रीनारायण ऐसे जान पड़ते हैं, मानों कोई जल से घिरे हुये पर्वतराज ही हों। पर्वत पर जैसे अनेकों जीव रहते हैं, उसी प्रकार वे सम्पूर्ण चराचर के आश्रय हैं, शेषजी के फणों पर जो सहस्रों मुकुट हैं, वे ही मानों उस पर्वत के सुवर्ण मण्डित शिखर हैं तथा वक्षस्थल में विराजमान कौस्तुभमणि उसके गर्भ से प्रकट हुआ रत्न है। प्रभु के गले में वेदरूप भौंरों से गुञ्जायमान अपनी कीर्तिमयी वनमाला विराज रही है, सूर्य, चन्द्र, वायु और अग्नि आदि देवताओं की भी आप तक पहुँच नहीं है तथा त्रिभुवन में बेरोक-टोक विचरण करने वाले सुदर्शन चक्रादि आयुध भी प्रभु के पास ही घूमते रहते हैं, उनके लिये भी आप अत्यन्त दुर्लभ हैं।

तब विश्व-रचना की इच्छावाले लोक-विधाता ब्रह्माजी ने भगवान् के नाभिसरोवर से प्रकट हुआ वह कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, उनके सिवा और कुछ उन्हें दिखायी न दिया। रजोगुण से व्याप्त ब्रह्माजी प्रजा की रचना करना चाहते थे। तब उन्होंने सृष्टि के कारणरूप केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, तब लोक रचना के लिये उत्सुक होने के कारण वे अचिन्त्यगति श्रीहरि में चित्त लगाकर उन परम पूजनीय प्रभु की अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए ब्रह्माजी ने कहा—

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां
　　न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम्।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं
　　मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि॥
सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा
　　सत्त्वेन यन्मृडयते भगवन् भगेन।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं
　　स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ॥
एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या
　　यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेता
　　युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम्॥

(श्रीमद्भागवत ३।९।१,२२-२३

"प्रभो ! आज बहुत समय के बाद मैं आपको जान सका हूँ । अहो ! कैसे दुर्भाग्य की बात है कि देहधारी जीव आपके स्वरूप को नहीं जान पाते । भगवान् ! आपके सिवा और कोई वस्तु नहीं है । जो वस्तु प्रतीत होती है, वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है, क्यों कि माया के गुणों के क्षुभित होने के कारण केवल आपही अनेकों रूपों में प्रतीत हो रहे हैं ॥१॥ आप सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र सुहृद् और आत्मा हैं तथा शरणागतों पर कृपा करने वाले हैं । अतः अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्य से आप विश्वको' आनन्दित करते हैं, उसी से मेरी बुद्धि को युक्त करें-जिससे मैं पूर्वकल्प के समान इस समय भी जगत् की रचना कर सकूँ ॥२२॥ आप भक्त वाञ्छा-कल्पतरु हैं । अपनी शक्ति लक्ष्मी जी के सहित अनेकों गुणावतार लेकर आप जो-जो अद्भुत कर्म करेंगे, मेरा यह जगत् की रचना करने का उद्यम भी उन्हीं में से एक है । अतः इसे रचते समय आप मेरे चित्त को प्रेरित करें-शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं सृष्टिरचना विषयक अभिमान रूप मलसे दूर रह सकूँ ॥२३॥"

प्रभो ! इस प्रलयकालीन जलमें शयन करते हुए आप अनन्तशक्ति परमपुरुष के नाभि-कमल से मेरा प्रादुर्भाव हुआ है और मैं हूँ भी आपकी ही विज्ञान शक्ति । अतः इस जगत् के विचित्र रूप का विस्तार करते समय आपकी कृपा से मेरी वेदरूप वाणी का उच्चारण लुप्त न हो । आप अपार करुणामय पुराणपुरुष हैं । आप परम प्रेममयी मुसकान के सहित अपने नेत्रकमल खोलिये और शेष-शय्या से उठकर विश्व के उद्भव के लिये अपनी सुमधुर वाणी से मेरा विषाद दूर कीजिये । अपने मन और वाणी की शक्ति के अनुसार उनकी स्तुति करके ब्रह्माजी थके-से होकर मौन हो गये । श्रीमधुसूदन भगवान् ने देखा कि ब्रह्माजी इस प्रलय जलराशि से बहुत घबराये हुए हैं तथा लोकरचना के विषय में कोई निश्चित विचार न होने के कारण उनका चित्त बहुत खिन्न है । तब उनके अभिप्राय को जानकर वे अपनी गम्भीर वाणी से उनका खेद शान्त करते हुए कहने लगे ।

श्रीभगवानुवाच

मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह ।
तन्मयाऽऽपादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥

(श्रीमद्भागवत् ३·९-२)

श्रीभगवान् ने कहा—'वेदगर्भ ! तुम विषाद के वशीभूत हो आलस्य न करो, सृष्टि रचना के उद्यम में तत्पर हो जाओ । तुम मुझ से जो कुछ चाहते हो, उसे तो मैं पहले ही कर चुका हूँ ।'

तुम एक बार फिर तप करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो । उनके द्वारा तुम सब लोकों को स्पष्टतया अपने अन्तःकरण में देखोगे । फिर भक्तियुक्त और समाहितचित्त होकर तुम सम्पूर्ण लोक और अपने में मुझको व्याप्त देखोगे तथा मुझमें सम्पूर्ण लोक और अपने आपको देखोगे । जिस समय जीव काष्ठ में व्याप्त अग्नि के समान समस्त भूतों में मुझे ही स्थित देखता है, उसी समय वह

अपने अज्ञानरूप मल से मुक्त हो जाता है। जब वह अपने को भूत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरण से रहित तथा स्वरूपतः मुझ से अभिन्न देखता है, तब वह मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है। तुम सबसे पहले मन्त्र-द्रष्टा हो। प्रजा उत्पन्न करते समय भी तुम्हारा मन मुझ में ही लगा रहता है, इससे पापमय रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता। तुमने मुझे जान लिया है।' मेरा आश्रय कोई है या नहीं' इस सन्देह से तुम कमलनाल के द्वारा जल में उसका मूल (जड़) खोज रहे थे, इसीलिये मैंने तुम्हें अपना यह स्वरूप अन्तःकरण में ही दिखलाया है। प्यारे ब्रह्मा ! तुमने जो मेरी कथाओं के वैभवयुक्त मेरी अनेक प्रकार से स्तुति की है और तपस्या में जो तुम्हारी निष्ठा है, वह मेरी ही कृपा का फल है। मैं समस्त कामनाओं और मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हूँ। जो पुरुष नित्यप्रति मेरे स्तोत्रों द्वारा मेरा भजन करेगा, उस पर मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊँगा। इसलिये—

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥
(श्रीमद्भागवत ३।९।४३)

'ब्रह्माजी ! त्रिलोकी को तथा जो प्रजा इस समय मुझमें लीन है, उसे तुम पूर्वकल्प के समान मुझसे उत्पन्न हुए, अपने सर्ववेदमय स्वरूप से स्वयं ही रचना करो।'

प्रकृति और पुरुष के स्वामी कमलनाभ भगवान् सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी को इस प्रकार जगत् की अभिव्यक्ति करवाकर अपने उस नारायण रूप से अदृश्य होगये।
(श्रीद्मभागवत स्कन्ध ३ अध्याय ८-९ के आधार से)

ब्रह्मा की मूर्ति (प्रतीक) का निदान

ब्रह्मा

सभी प्रधान देवों के निर्माण में ब्रह्म, वाक्, माया, दिक, काल, त्रिगुण और धर्म के सिद्धान्तों का प्रधानतया प्रयोग होता है। कोई विशेष प्रयोजन ध्यान में रहने से, इनके अतिरिक्त, अन्य सिद्धान्तों के आधार पर भी प्रतीक की कल्पना की जाती है।

भगवान विष्णु और शिव की तरह भगवान् ब्रह्मा के भी दो रूप हैं— पूर्ण ब्रह्म और रजोगुण के अधिष्ठाता गुणाभिमानी देव।

ब्रह्मा, ब्रह्म है, आत्मभू (आप से आप उत्पन्न होने वाले) हैं। ये स्वयंभू हैं और सारी सृष्टि के धाता (बनाने वाले) हैं; यह सृष्टि स्वरूप हैं, अर्थात् इनमें और सृष्टि में कोई अन्तर नहीं है—

जगद्विराजोः सत्तैका पवनस्पन्दयोरिव ।
जगद्यत्स विराडेव यो विराट् तज्जगत्स्मृतम् ॥
जगद् ब्रह्मा विराट् चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः ।
(योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्रकरण, उत्तरार्द्ध सर्ग ७४।२४-२५)

'पवन और उसके स्पन्दन की तरह जगत् और विराट् एक ही सत्ता है, जो जगत् है, वही विराट् है, जो विराट् है, वही जगत् है। जगत्, विराट् और ब्रह्मा ये तीन पर्यायवाची (एकार्थक) शब्द हैं।'

इनके चतुर्मुखादि की व्याख्या इस प्रकार है—

ऋग्वेदादिप्रभेदेन कृतादियुगभेदतः।
विप्रादिवर्णभेदेन चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम्॥

(रूपमण्डन)

'ऋग्वेदादि चारों वेद, कृत इत्यादि चारों युग और ब्राह्मणादि चारों वर्णों के प्रतीक इनके चारों मुख और चारों भुजाएँ हैं।'

अरुणादित्यसंकाशं चतुर्वक्त्रं चतुर्मुखम्।
चतुर्वेदमयं देवं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥

(कालीविलास-तन्त्रम्, पटल २० श्लोक १२)

'ब्रह्मा का बाल सूर्य के समान लाल वर्ण, चार शिर और चार मुख, चारों वेदमय और धर्म, अर्थ काम, मोक्ष के देने वाले हैं।'

लाल रंग रजोगुण का संकेतक है।

रजोगुणाभिमानी ब्रह्म के प्रतीक होने पर ये सत्त्व और तम दोनों गुणों को क्रियाशील करने वाले रजोगुण के अधीश्वर हैं और विधाता और स्रष्टा हैं।

इनका नाम अब्जयोनि भी है। ये कमल से उत्पन्न होते हैं और उस पर बैठे रहते हैं। यह कमल विष्णु की नाभि से निकलता है।

विश्वव्यापी और अविनाशी तत्त्व में जब स्पन्दन होता है तब यह बिन्दु का रूप ग्रहण करता है। इस पद्म का रूप इस प्रकार बताया गया है—

प्रकृतिमयपत्रविकारमयकेसरसंविन्नालादिविशेषणशीलं पद्मम्॥

(ललिता सहस्रनाम, सौभाग्य-भास्कर भाष्य, बम्बई १९३५ पृष्ट ८१)

'प्रकृति उसके पत्ते हैं, परिवर्तन या विवर्तन केसर है और चेतना इसका नाल है। इस पद्म के ऐसे विशेषण हैं।' इसलिए कहा गया है—

'पद्मं विश्वं करे स्थितम्॥'

(गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत्, श्लोक २६)

'विष्णु के एक हाथ में पद्म के रूप में विश्व है।'

ब्रह्माजी के एक हाथ में पुस्तक और दूसरे में कभी स्रुव और कभी माला रहती है। एक में कमण्डल और एक में चरुपात्र रहता है। पुस्तक वेद है, स्रुव और चरुपात्र यज्ञ के चिह्न हैं, माला-अक्षमाला का, कमण्डल अमृत से भरा हुआ पात्र का प्रतीक है।

(साभार भारतीय प्रतीक विद्या पुस्तक से संगृहीत)

***

भगवान् ब्रह्माजी की आयु तथा युग आदि का कालमान, भगवान् वाराह द्वारा पृथ्वी का रसातल से उद्धार और ब्रह्माजी के द्वारा रचे हुए विविध सर्गों का विवेचन

सोपान २

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! ब्रह्माजी सर्वज्ञ एवं साक्षात् नारायण के स्वरूप हैं। वे उपचार से—आरोप द्वारा ही 'उत्पन्न हुए' कहलाते हैं। वास्तव में तो वे नित्य ही हैं। अपने निजी मान से उनकी आयु सौ वर्ष की मानी गई है। वह ब्रह्माजी की 'पर' कहलाती है, उसके आधे भाग को परार्ध कहते हैं। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओं की एक कला और तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तों के काल को मनुष्यों का एक दिन-रात माना गया है। तीस दिन-रात का एक मास होता है। एक मास में दो पक्ष होते हैं। छह महीने का एक अयन और दो अयनों का एक वर्ष होता है। अयन दो हैं, दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन देवताओं की रात्रि है और उत्तरायण उनका दिन है। देवताओं के बारह हजार वर्षों के चार युग होते हैं, जो क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के नाम मे प्रसिद्ध हैं। इन युगों का वर्ष-विभाग इस प्रकार बतलाया गया है—पुरातत्त्व के ज्ञाता विद्वान् पुरुषों का कहना है कि सत्ययुग आदि का परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष होता है। प्रत्येक युग के आरम्भ में उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या कही जाती है और युग के अन्त में सन्ध्यांश होता है। सन्ध्यांश का मान भी उतना ही है, जितना सन्ध्या का। नृप-श्रेष्ठ ! सन्ध्या और सन्ध्यांश के बीच का समय है, उसी को युग समझना चाहिये। वही सत्ययुग और त्रेता आदि के नाम से प्रसिद्ध है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सब मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं। ऐसे एक हजार चतुर्युगों को ब्रह्माजी का एक दिन कहा जाता है।*(१)

राजन् ! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। उस समय का परिमाण इस प्रकार कहा गया है। सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु और मनु पुत्र-ये एक ही समय में उत्पन्न होते हैं तथा अन्त में साथ-ही-साथ इनका संहार भी होता है। इकहत्तर चतुर्युग से कुछ अधिक काल का एक मन्वन्तर होता है।* (२) यही मनु और देवताओं आदि का समय है। इस प्रकार दिव्य वर्ष गणना के अनुसार आठ लाख; बावन हजार वर्षों का एक मन्वन्तर होता है।

महामते ! मानव-वर्षों से गणना करने पर मन्वन्तर का कालमान पूरे तीस करोड़, सड़सठ लाख, बीस हजार वर्ष होता है इससे अधिक नहीं।* (३) इस काल को चौदह गुना करने पर ब्रह्माजी के एक दिन का मान होता है। उसके अन्त में नैमित्तिक नाम वाला ब्राह्म-प्रलय होता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—सम्पूर्ण त्रिलोकी दग्ध होने लगती है और महर्लोक में निवास करने वाले पुरुष आँच से सन्तप्त होकर जनलोक में चले जाते हैं। दिन के बराबर ही वह अपनी रात बीत जाने पर ब्रह्माजी पुनः संसार की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार [पक्ष, मास आदि क्रम से धीरे-धीरे] ब्रह्माजी का एक वर्ष व्यतीत होता है तथा इसी क्रम से उनके सौ वर्ष पूरे हो जाते हैं। सौ वर्ष ही उन भगवान् ब्रह्माजी की पूरी आयु है।

भीष्मजी ने कहा– महामुने ! कल्प के आदि में नारायण संज्ञक भगवान् ब्रह्माजी ने जिस प्रकार भूतों की सृष्टि की, उसका आप वर्णन कीजिये।

पुलस्त्य जी ने कहा—राजन् ! सबकी उत्पत्ति के कारण और अनादि भगवान् ब्रह्माजी ने जिस प्रकार प्रजावर्ग की सृष्टि की वह बतलाता हूँ, तुम ध्यान से सुनो। जब पिछले कल्प का अन्त हुआ, उस समय रात्रि में सोकर उठने पर सत्त्वगुण के उद्रेक से युक्त प्रभु ब्रह्माजी ने देखा कि सम्पूर्ण लोक सूना हो रहा है। तब उन्होंने यह जानकर कि पृथ्वी एकार्णव के जल में डूब गयी है और इस समय पानी के भीतर ही स्थित है, उसको निकालने की इच्छा से कुछ देर तक विचार किया। फिर वह यज्ञमय बाराह का स्वरूप धारण कर जल के भीतर प्रविष्ट हुए। भगवान् को पाताल लोक में आया देखकर पृथ्वी देवी भक्ति से विनम्र हो गयी और उनकी स्तुति करने लगी।

पृथ्वी बोली—भगवान् ! आप सर्वभूतस्वरूप परमात्मा हैं, आपके इस स्वरूप को बारम्बार नमस्कार है। आप इस पाताल लोक से मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकाल में मैं आपसे ही उत्पन्न हुई थी। परमात्मन् ! आपको नमस्कार है। आप सबके अन्तर्यामी हैं आपको प्रणाम है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) आपके ही स्वरूप हैं, काल भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो ! जगत् की सृष्टि आदि के समय आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप धारण करके सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, यद्यपि आप इन सब से परे हैं। मुमुक्षु पुरुष आपकी आराधना करके मुक्त हो, परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो गये हैं। भला, आप वासुदेव की आराधना किये बिना कौन मोक्ष पा सकता है। जो मन से ग्रहण करने योग्य, नेत्र आदि इन्द्रियों द्वारा अनुभव करने योग्य तथा बुद्धि के द्वारा विचारणीय है, वह सब आपका ही रूप है। नाथ ! आप ही मेरे उपादान हैं, आप ही आधार हैं, आपने ही मेरी सृष्टि की है तथा मैं आपकी ही शरण में हूँ, इसलिये इस जगत् के लोग मुझे 'माधवी' कहते हैं।

पृथ्वी ने जब इस प्रकार स्तुति की, तब उन परम कान्तिमान् भगवान् धरणी-

धर ने घर्घर स्वर में गर्जना की। सामवेद ही उनकी उस ध्वनि के रूप में प्रकट हुआ। उनके नेत्र खिले हुए कमल के समान शोभा पा रहे थे तथा शरीर कमल के पत्ते के समान श्याम रंग का था। उस महावाराह रूपधारी भगवान् ने पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर उठा लिया और रसातल से वे ऊपर की ओर उठे। उस समय उनके मुख से निकली हुई सांस के आघात से उछले हुए उस प्रलयकालीन जल ने जनलोक में रहने वाले सनन्दन आदि मुनियों को भिगोकर निष्पाप कर दिया। [निष्पाप तो वे थे ही, उन्हें और भी पवित्र बना दिया।] भगवान् महावाराह का उदर जल से भीगा हुआ था। जिस समय वे अपने वेदमय शरीर को कँपाते हुए पृथ्वी को लेकर उठने लगे, उस समय आकाश में स्थित महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषियों ने कहा—जनेश्वरों के भी परमेश्वर केशव! आप सब के प्रभु हैं। गदा, शङ्ख, उत्तम खड्ग और चक्र धारण करने वाले हैं। सृष्टि, पालन और संहार के कारण तथा ईश्वर भी आप ही हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आप से ही व्याप्त है। भगवन्! आप इस विश्व का हितसाधन कीजिये। जगदीश्वर! एक मात्र आप ही परमात्मा हैं, आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। सर्वभूतस्वरूप परमात्मन्! आप प्रसन्न होइए। आपका स्वरूप अप्रमेय है। प्रभो! भगवन्! आप सब के उद्भव के लिए इस पृथ्वी का उद्धार एवं सम्पूर्ण जगत् का कल्याण कीजिए।

राजन्! सनकादि मुनि जब इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उस समय पृथ्वी को धारण करने वाले परमात्मा महावाराह शीघ्र ही इस वसुन्धरा को ऊपर उठा लाये और उसे महासागर के जल पर स्थापित किया। उस जलराशि के ऊपर यह पृथ्वी एक बहुत बड़ी नौका की भाँति स्थित हुई। तत्पश्चात् भगवान् ने पृथ्वी के कई विभाग करके सात द्वीपों का निर्माण किया तथा भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और महर्लोक इन चारों लोकों की पूर्ववत् कल्पना की। तदनन्तर ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से कहा, 'प्रभो! मैंने इस समय जिन प्रधान-प्रधान असुरों को वरदान दिया है, उनको देवताओं की भलाई के लिये आप मार डालें। मैं जो सृष्टि रचूँगा, उसका आप पालन करें।' उनके ऐसा कहने पर भगवान् विष्णु 'तथास्तु' कहकर चले गये और ब्रह्माजी ने देवता आदि प्राणियों की सृष्टि आरम्भ की। महत्तत्त्व की उत्पत्ति को ही ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि समझना चाहिये। तन्मात्राओं का आविर्भाव दूसरी सृष्टि है। उसे भूतसर्ग भी कहते हैं। वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कार से जो इन्द्रियों को उत्पत्ति हुई है, वह तीसरी सृष्टि है, उसी का दूसरा नाम ऐन्द्रिय सर्ग है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग है, जो अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ है। चौथी सृष्टि का नाम मुख्य सर्ग है। पर्वत और वृक्ष आदि स्थावर वस्तुओं को मुख्य कहते हैं। तिर्यक् स्रोत कहकर जिनका वर्णन किया गया है, वे (पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि) ही पाँचवीं सृष्टि के अन्तर्गत हैं, उन्हें तिर्यक् योनि भी कहते हैं। तत्पश्चात् ऊर्ध्वरेता देवताओं का सर्ग है, वही छठी सृष्टि है और उसी को देवसर्ग भी कहते हैं। तदनन्तर सातवीं सृष्टि अर्वाक् स्रोतों की है वही मानव-सर्ग कहलाता है। आठवाँ अनुग्रह-

सर्ग है, वह सात्त्विक भी है और तामस भी। इन आठ सर्गों में से अन्तिम पाँच वैकृत-सर्ग माने गये हैं तथा आरम्भ के तीन सर्ग प्राकृत बताये गये हैं। नवां कौमार सर्ग है, वह प्राकृत भी है वैकृत भी। इस प्रकार जगत् की रचना में प्रवृत्त हुए जगदीश्वर प्रजापति के ये प्राकृत और वैकृत नामक सर्ग तुम्हें बतलाये गये, जो जगत् के मूल कारण हैं। अब और क्या सुनना चाहते हो?

भीष्म जी ने कहा—गुरुदेव! आपने देवताओं आदि की सृष्टि थोड़े में ही बतायी है। मुनिश्रेष्ठ! अब मैं उसे आपके मुख से विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजी ने कहा—राजन्! सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों से प्रभावित रहती है, अतः प्रलयकाल में सबका संहार हो जाने पर भी वह उन कर्मों के संस्कार से मुक्त नहीं हो पाती। जब ब्रह्माजी सृष्टि कार्य में प्रवृत्त हुए, उस समय उनके द्वारा देवताओं से लेकर स्थावर पर्यन्त चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न हुई। वे चारों [ब्रह्माजी के मानसिक संकल्प से प्रकट होने के कारण] मानसी प्रजा कहलायीं। तदनन्तर प्रजापति ने देवता, असुर, पितर और मनुष्य - इन चार प्रकार के प्राणियों की तथा जल की भी सृष्टि करने की इच्छा से अपने शरीर का उपयोग किया। उस समय सृष्टि की इच्छा वाले मुक्तात्मा प्रजापति की जंघा से पहले दुरात्मा असुरों की उत्पत्ति हुई। उनकी सृष्टि के पश्चात् भगवान् ब्रह्मा ने अपनी वयस् (आयु) से इच्छानुसार पक्षियों को उत्पन्न किया। फिर अपनी भुजाओं से भेड़ों और मुख से बकरों की रचना की। इसी प्रकार अपने पेट से गायो और भैंसों को तथा पैरों से घोड़े, हाथी, गधे, नीलगाय, हरिन, ऊंट, खच्चर तथा दूसरे-दूसरे पशुओं की सृष्टि की। ब्रह्माजी की रोमावलियों से फल, मूल तथा भांति-भांति के अन्नों का प्रादुर्भाव हुआ। गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर तथा अग्निष्टोम यज्ञ को प्रजापति ने अपने पूर्ववर्ती मुख से प्रकट किया। यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदशस्तोम, वृहत्साम और उक्थ की दक्षिण वाले मुख से रचना की। सामवेद, जगतीछन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्र भाग की सृष्टि पश्चिम मुख से की तथा एकविंशस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम, अनुष्टुप-छन्द और वैराज को उत्तर मुख से उत्पन्न किया। छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं, प्रजापति के विभिन्न अङ्गों से उत्पन्न हुए। कल्प के आदि में प्रजापति ब्रह्मा ने देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्यों की सृष्टि करके फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, राक्षस, सिंह, पक्षी, मृग और सर्पादि को उत्पन्न किया। नित्य और अनित्य जितना भी यह चराचर जगत् है, सबको आदिकर्ता भगवान् ब्रह्मा ने उत्पन्न किया। उन उत्पन्न हुए प्राणियों में से जिन्होंने पूर्वकल्प में जैसे कर्म किये थे, वे पुनः बारम्बार जन्म लेकर वैसे ही कर्मों में प्रवृत होते हैं। इस प्रकार भगवान् विधाता ने ही इन्द्रियों के विषयों, भूतों और शरीरों में विभिन्नता एवं पृथक्-पृथक् व्यवहार उत्पन्न किया। उन्होंने कल्प के आरम्भ में वेद के अनुसार देवता आदि प्राणियों के नाम रूप और कर्त्तव्य का

विस्तार किया। ऋषियों तथा अन्यान्य प्राणियों के भी वेदानुकूल नाम और उनके यथा योग्य कर्मों को भी ब्रह्माजी ने ही निश्चित किया। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओं के बारंबार आने पर उनके विभिन्न प्रकार के चिह्न पहले के समान ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में सारे पदार्थ पूर्वकल्प के अनुसार ही दृष्टि-गोचर होते हैं। सृष्टि के लिये इच्छुक तथा सृष्टि की शक्ति से युक्त ब्रह्माजी कल्प के आदि में बारंबार ऐसी ही सृष्टि किया करते हैं।

(कल्याण के विशेषांक, पद्मपुराण सृष्टि खण्ड के आधार से)

भगवान् ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि रचना विषय में यज्ञ के लिये ब्राह्मणादि वर्गों तथा विविध अन्नों, फल, फूल, कन्द और औषधादि तथा छोटे-बड़े विविध जीवन-जीवाणुवों, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदि की उत्पत्ति, मैथुनी सृष्टि और उनकी सन्तान परम्परा का विस्तृत वर्णन पुराण शास्त्रों में उपलब्ध होता है। किन्तु यहाँ हमारा तात्पर्य ब्रह्माजी द्वारा केवल सृष्टिरचना दर्शाना ही था, अतः संक्षेप में दर्शाने का प्रयास किया है।

※ (१) युगों तथा ब्रह्मा के दिन की वर्ष संख्या इस प्रकार समझना चाहिये। सत्ययुग का मान चार हजार दिव्य वर्ष है, उसके आरम्भ में चार सौ वर्षों की सन्ध्या और अन्त में चार सौ वर्षों का सन्ध्यांश होता है, इस प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांश सहित सत्ययुग की अवधि चार हजार आठ सौ (४८००) दिव्य वर्षों की है। इसी तरह त्रेता का युगमान ३००० दिव्य वर्ष, सन्ध्या-मान ३०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान ३०० वर्ष है, अतः उसकी पूरी अवधि ३६०० दिव्य वर्षों की हुई। द्वापर का युगमान २००० वर्ष, सन्ध्या-मान २०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान २०० वर्ष है, अतः उसका न मान २४०० दिव्य वर्षों का हुआ। कलियुग का युग-मान १००० वर्ष, सन्ध्या-मान १०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान १०० वर्ष है, इसलिए उसकी आयु १२०० दिव्य वर्षों की हुई। देवताओं का वर्ष मानव वर्ष से ३६० गुना अधिक होता है, अतः मानव वर्ष के अनुसार कलियुग की आयु ४,३२,००० वर्षों की, द्वापर की ८,६४,००० वर्षों की, त्रेता की १२,९६,००० वर्षों की तथा सत्ययुग की आयु १७,२८,००० वर्षों की है। इनका कुल योग ४३,२०,००० वर्ष हुआ। यह एक चतुर्युग का मान है। ऐसे एक हजार चतुर्युगों का अर्थात् हमारे ४,३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है।

※ (२) ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मन्वन्तर होते हैं, इकहत्तर चतुर्युगों के हिसाब से चौदह मन्वन्तरों में ९९४ चतुर्युग होते हैं; परन्तु ब्रह्मा का दिन एक हजार चतुर्युगों का माना गया है, अतः छह चतुर्युग और बचे। छह चतुर्युग का चौदहवां भाग कुछ कम पांच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्षों का होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तर में इकहत्तर चतुर्युग के अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

※ (३) यह वर्ष संख्या पूरे इकहत्तर चतुर्युगों का मन्वन्तर मानकर निकाली गई है, इस हिसाब से ब्रह्माजी के दिन का मान ४,२९,४०,८०,००० (चार अरब, उनतीस करोड़, चालीस लाख, अस्सी हजार), मानव-वर्ष होता है; परन्तु पहले बतला आये हैं कि इकहत्तर चतुर्युग से कुछ अधिक काल का मन्वन्तर होता है। वह अधिक काल है - छह चतुर्युग का चौदहवां भाग। उसको भी जोड़ लेने पर मन्वन्तर का काल ऊपर दी हुई संख्या से अधिक होगा और उस हिसाब से ब्रह्माजी का दिनमान चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षों का ही होगा।

※ ※

भगवान् ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-विवेचन

सोपान ३

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव हैं, गुरु ही साक्षात् पर-ब्रह्म हैं, उन श्रीगुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।'

सत्त्व, रज, तम—ये विश्व के मूल उपादान हैं। इनका अर्थ है—सामञ्जस्य, सक्रियता और निष्क्रियता। इन्हीं को लेकर भगवान् ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीन रूप धारण किये हैं। इनमें ब्रह्मा जगत् के उत्पादक, विष्णु पालक और महेश संहारक हैं। महाकवि कालिदास ने अपने अमरकाव्य 'कुमारसम्भव' में कहा है—

एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा
सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।

एक ही भगवान् तीन रूपों में विभक्त हो गये; किन्तु उनमें छोटा-बड़ापन समान है—वे सभी एक दूसरे से छोटे और सभी एक-दूसरे से बड़े हैं।

वस्तुतः ईश्वर एक ही है, इस विषय में वेद, उपनिषद् पुराणादि में लिखा है—

इदं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋग्वेद १।१६४।४६; अथर्ववेद ९।१०।२८; निरुक्त ७।१८)

इस मन्त्र का भावार्थ है 'अव्याकृत ब्रह्मतत्त्व रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, आदित्य, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा तथा महामाया शक्ति के रूप में अवतीर्ण एवं अभिहित होता है।'

एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। (ऋग्वेद १०।११४।५)

'इस एक को ही सज्जन (विद्वान्) बहुत से रूपों में कल्पना करते हैं।'

महादेवी का कथन है—ग्रहमानन्दानानन्दौ। ग्रहं विज्ञानाविज्ञाने। ग्रहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। ग्रहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानिग्रहमखिलं जगत्। (देव्यथर्वशीर्षमन्त्र (३))

'मैं ग्रानन्द ग्रौर ग्रानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान ग्रौर ग्रविज्ञान रूपा हूँ। ग्रवश्य जानने योग्य ब्रह्म ग्रब्रह्म मैं ही हूँ। पंचीकृत ग्रौर ग्रपंचीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह समस्त दृश्य जगत् मैं ही हूँ।'

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः। (श्वेताश्वतर ६।११)

एको नारायणः। (नारायणोपनिषद् २)

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते............. तद् ब्रह्म। (तैतिरीय० ३।१)

ईशावास्यमिदँ सर्वम्। (ईशा०)

परविद्यास्वक्षर शिवशम्भुपरब्रह्मपरज्योतिः परतत्त्व परमात्मादिशब्द निर्दिष्टमुपास्यं वस्त्विह तैरेव शब्दैरनूद्य तस्य नारायण त्वं विधीयते।

(ब्रह्मसूत्र-श्रीभाग्य, लिङ्गभूययस्त्वाधिकरण)

ग्रर्थात् इन सब प्रमाणों का यही सारांश है कि पराख्य परमात्मा ही इस जगत् का कारण है, वह एक ही देव समस्त भूतों में छिपा हुग्रा है, वह एक नारायण है। उस एक ही परमात्मा का नानाविधरूप तथा नामों से वर्णन होता है। जिससे यह समस्तभूत-ग्राम समुत्पन्न होता है, वह ब्रह्म है। परतत्त्व प्रतिपादक वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराणादि ग्रन्थों में जो ग्रक्षर शिव, शम्भु, परब्रह्म, परज्योति, ब्रह्मा, शक्ति, परत्व ग्रौर परमात्मा ग्रादि शब्दों द्वारा प्रतिपादित उपास्य वस्तु है, उसे यहां उन्हीं शब्दों द्वारा ग्रनूदित करके उसका नारायणत्व ही सिद्ध किया जाता है।

ब्रह्मा, विष्णु ग्रौर महेश इन तीनों देवताग्रों में कोई छोटा-बड़ा नहीं है, इस विषय में ग्रनेक प्रमाण हैं—

यो वै विष्णुः स वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः॥
वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयम्भुवः।
ग्रर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समाश्रिताः॥

(हरिवंश पुराण, विष्णु पर्व १२५/३१,३२)

'जो विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं, ग्रौर जो रुद्र हैं, वे ही ब्रह्मा हैं ग्रर्थात् उनका मूलस्वरूप वस्तुतः एक ही है। हां, ये कार्यभेद से रुद्र, विष्णु ग्रौर ब्रह्मा तीन देवता ग्रवश्य कहलाते हैं। फलस्वरूप यह तीनों ही लोकस्रष्टा, वरदायक, जगन्नाथ, स्वयम्भू, ग्रर्धनारीश्वर तथा तीव्र व्रत का ग्राश्रय लेने वाले हैं।'

भगवान् शिव ने विष्णु की स्तुति में कहा है—

रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्ते सनातन।
त्वया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम्॥ 'वामनपुराण ३।१६)

'सनातन देव ! आपने ही रजोगुण से युक्त होकर ब्रह्मा का रूप धारण करके इस समस्त स्थावर-जंगम की रचना की है, अतः नाथ ! आपको अभिवादन है।'

पद्मपुराण में लिखा है—

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।
त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदाः प्रकीर्त्तिताः ।।

(पद्मपुराण ७१।२०)

'ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देवता एक मूर्ति (रूप) ही हैं, केवल तीनों का गुणभेद ही बतलाया गया है। वैसे तीनों में कोई अन्तर नहीं है।'

ब्रह्माजी भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं—

शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्माविष्णुशिवात्मिकाः।
भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ।।

(विष्णु पुराण १।९।५६)

'जिस अभूत पूर्व देव की ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप शक्तियां हैं, वही भगवान् विष्णु का परम पद है।'

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्माविष्णुशिवात्मिकाम्।
य संज्ञां याति भवानेक एव जनार्दनः।।

(विष्णुपुराण १.२.६६)

'ये एक ही भगवान् जनार्दन जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन संज्ञाओं को धारण करते हैं।'

एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम्।
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम।
अहं भवानजश्चैव रुद्रो योऽयं भविष्यति।।
एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै बन्धनं भवेत्।

(शिवपुराण रुद्र. सृ. ९.३७-३९)

'यह समझ कर तीनों के भेद का कोई कारण नहीं देखना चाहिये। वस्तुतः सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ शिवरूप ही हैं। ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी – ये सब एक रूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धन का कारण है।'

ब्रह्माजी के विषय में देवी पुराण में कहा गया है—

जय देवाधिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने।।

(देवीभागवत ८३.१३)

'आपकी जय हो ! उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप

तीनों भावों से भावित होने वाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेव के लिये नमस्कार है।'

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने महर्षि मार्कण्डेय को अपना प्रभाव बतलाते हुए कहा है—

अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः।
विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्म शक्रश्चाहं सुराधिपः।
अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा॥
(महाभारत वन १८९।४-५)

'द्विजश्रेष्ठ! मैं नारायण ही सबकी उत्पत्ति का कारण सनातन और अविनाशी हूँ। सम्पूर्ण भूतों की सृष्टि और संहार करने वाला भी मैं ही हूँ। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, में ही देवराज इन्द्र हूँ और मैं ही राजा कुवेर तथा प्रेतराज यम हूँ।'

श्रीमद्भागवतपुराण में तो यहां तक बात आयी है कि महर्षि अत्रि जब विश्व के एक मात्र कारण श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिये तप कर रहे थे, उस समय ब्रह्मा, महेश—तीनों मूर्तियां उनके सामने प्रकट हुईं। महर्षि ने पूछा कि मैंने तो एक भगवान् के ही दर्शन चाहे थे, फिर आप तीन महानुभाव कैसे पधारे?' इस पर भगवान् विष्णु ने तीनों की ओर से उत्तर दिया—

अहं ब्रह्मा च सर्वश्च जगतः कारणं परम्।

'ब्रह्मा शङ्कर और मैं—तीनों ही जगत् के परम कारण हैं।'

भगवद् भजन एवं कीर्तन महिमा में लिखा है—

ये ह्रीमं विष्णुमव्यक्तं देवं वापि महेश्वरम्।
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥१९

'जो इन अव्यक्त विष्णु तथा भगवान् महेश्वर को एक भाव से देखता है, उसका पुनः इस संसार में जन्म नहीं होता।'

येऽसमानं प्रपश्यन्ति हरिं वै देवतान्तरम्।
ते यान्ति नरकान् घोरान्न तांस्तु गणयेद्धरि॥२०

जो 'हरि' और 'हर' को समान भाव से नहीं देखते, श्रीहरि को दूसरा देवता समझते हैं, वे घोर नरक में पड़ते हैं, उन्हें हरि अपने भक्तों में नहीं गिनते।'

शिवपुराण में लिखा है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते॥
अयं परस्त्वयं नेति सरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवत्येव पिशाचा वा न संशयः॥

'ये (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरे से उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरे को धारण करते हैं, एक दूसरे के द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरे के अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णु की और कहीं महादेव की। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरे की अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा गया है, जैसे वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है, वे अगले जन्म में राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

स्वयं भगवान् शिव श्रीभगवान् विष्णु से कहते हैं—

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।

(शिवपुराण रुद्र. स. ९।५४-५६)

'जो मेरे दर्शन का फल है, वही आपके दर्शन का है। आप विष्णु मेरे हृदय में निवास करते हैं और मैं आप विष्णु के हृदय में रहता हूँ। जो हम दोनों में भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।'

भगवान् श्रीराम भगवान् शिव से कहते हैं—

ममासि हृदये शर्व भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥

(पद्मपुराण पाताल. ४६।२०-२१)

'शंकर! आप मेरे हृदय में रहते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एक रूप हैं, जो मनुष्य हम दोनों में भेद-भावना करते हैं, वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकों में यातनाएँ भोगते हैं।'

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी श्रीभगवान् शिव से कहते हैं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि॥
प्रजावान् भूमिवान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा।
ज्ञानवान्मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्म ६।३१।३२।४५)

'मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे

जब तक चन्द्र और सूर्य का अस्तित्व रहेगा, तबतक 'कालसूत्र' नामक नरक में पचते रहेंगे। जो शिवलिङ्ग का निर्माण कर एकबार भी उसकी पुजा कर लेता है, वह दसहजार कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है। शिवलिङ्ग के अर्चन से मनुष्य को संतान, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति-सब कुछ प्राप्त हो जाता है।'

भगवान् विष्णु ने दक्ष प्रजापति से कहा—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ।।
(श्रीमद्भागवत ४।७।५४)

'विप्र ! हम तीनों एक रूप हैं और समस्त भूतों की आत्मा हैं। हमारे अन्दर जो भेद-भावना नहीं करता, निस्संदेह वह शान्ति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।'

योग वासिष्ठ में तो यहाँ तक लिखा है—

एष देवः स परमः पूज्य एषः एव सदा सताम् ।
चिन्मात्रमनुभूत्यात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः ।।
घटे पटे वटे कुड्ये शकटे वानरे स्थितः ।
शिवो हरो हरिर्ब्रह्मा शक्रो वैश्रवणो यमः ।।
बहिरन्तश्च सर्वात्मा सदा स्वात्मा सुबुद्धिभिः ।
विविधेन क्रमेणैव भगवान् परिपूज्यते ।।
(योगवासिष्ठ, निर्वाण प्रकरण सर्ग १८)

'यही देव सबसे बढ़कर हैं। यही सर्वदा सज्जनों के पूज्य हैं। ये केवल चित्भर हैं, अनुभव स्वरूप हैं, सर्वगामी और सर्वाधार हैं। घट, पट, वट, भीत, शकट और वानर में स्थित हैं। शिव, हर, हरि, ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, यम, भीतर, बाहर सबके आत्मा हैं। निर्मल बुद्धिवाले अपने आत्मा भगवान् को नाना प्रकार से पूजते हैं।'

आधुनिक युग में भी वेद मन्त्रों तथा वैदिक देवताओं के प्रतीकों पर आधारित कतिपय शोध ग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें भगवान् ब्रह्मा के विषय में जिस प्रकार ग्रन्थकारों ने अपने विचार तथा संदर्भ लिखे हैं, वे प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) पुस्तक का नाम—'हिन्दू देव परिवार का विकास'—डॉ. सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक है—मित्र प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहावाद, अध्याय पाँचवां पृष्ठ ९३ पर लिखते हैं—

'प्रजापति'

प्रजापति हिरण्यगर्भ का नाम है। इन्हीं का दूसरा नाम 'ब्रह्मा' है। हिरण्यगर्भ वस्तुतः परमात्मा से अभिन्न है, इस बात को यह मन्त्र व्यक्त करता है—

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।।
(शुक्ल यजुर्वेद ३१।१९)

'वस्तुतः अजायमान, अज, अजन्म होते हुए भी प्रजापति गर्भ में आते हैं और अनेक प्रकार से जन्म लेते हैं। उनके वास्तविक स्वरूप को, जिसमें सभी भुवन स्थित हैं, धीर लोग, योगीजन देखते हैं।'

प्रजापति ही विश्वकर्मा भी हैं, वे सारे चराचर जगत् के रचयिता हैं—

वाचस्पतिं विश्व कर्म्माणं भूतये मनोजवं वाजे हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरव से साधुकर्म्मा ।।
(१०,८१,७)

'हम आज मनोवेग से चलने वाले वाचस्पति विश्वकर्मा को यज्ञ में बुलाते हैं। वह हमारे सब हवनों को स्वीकार करें। वह साधुकर्मा हैं, सबका कल्याण और सब की रक्षा करे।'

(२) पुस्तक का नाम –'वेद-विद्या'—वासुदेव शरण अग्रवाल, प्रकाशक—रामप्रसाद एण्ड सन्स पुस्तक प्रकाशक, आगरा, पृष्ठ संख्या २३८ पर लिखते हैं—

ब्रह्मा वै सर्वस्य प्रतिष्ठा।

७ हृदय विद्या

प्रतिष्ठा तत्त्व की संज्ञा ब्रह्मा है। स्थिति भाव से ही गति का जन्म होता है। स्थिति मानों जल की घनीभूत निश्चेष्ट अवस्था है। उसी का द्रुतिभाव गति है। स्थिति निद्रा है, गति जागरण है। गति-आगति का प्रादुर्भाव केन्द्र में प्रसुप्त शक्ति का जागरण है? ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णु के इस समन्वितभाव की संज्ञा हृदय है। स्थिति-गति आगति की व्याख्या वेद की हृदय विद्या है। अनिरुक्त अमृत अमूर्त नभ्य प्रजापति रूप को ही हृदय कहा जाता है। केन्द्र की संज्ञा हृदय है। यही हृद्देश है। अभिव्यक्त पदार्थ का अव्यक्त केन्द्र उसका हृदय है। वहीं से देव तत्त्व या शक्ति का विकास होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायः प्रश्न किया जाता है कि हृदय तत्त्व क्या है? उत्तर में प्रतीक शैली से व्याख्या की जाती है कि हृदय में तीन अक्षर हैं—हृ-द-य। तीन अक्षर तो प्रकट ही हैं, वस्तुतः ऋषि की दृष्टि स्थिति-गति-आगति रूप प्राणन या स्पन्दन की ओर है। उसे ही अक्षर तत्त्व कहते हैं। प्राण ही अक्षर शक्ति है। इन तीन अक्षर देवों में 'हृ' आहरण या आगति का, 'द' विकिरण, प्रसारण या गति का, और 'य' गति या आगति के नियमन या स्थिति का प्रतीक है। 'हृ' विष्णु, 'द' इन्द्र, 'य' ब्रह्मा या प्रतिष्ठा तत्त्व का संकेत है। ये ही तीन अक्षर देवता हैं। इन्हीं तीन अक्षर देवों की हलचल या प्राणात्मक स्पन्दन से प्रत्येक प्राणी का जन्म-वृद्धि-विकास और ह्रास संभव होता है। प्रत्येक बीज या अंकुर में प्रसुप्त प्राणशक्ति जब जागरण भाव में आती है तभी वह बाहर से भूतों को खींचकर अपने केन्द्र में लाती है और स्वस्वरूप में परिणत कर लेती है। यही प्रक्रिया प्राण, गति, तैजस, अग्नि आदि कितने ही संकेतों या नामों से प्रकट की जाती है।

स्थिति गति-आगति के त्रिक का वैदिक नाम हृदय विद्या है। हृदय का

सामान्य लौकिक अर्थ अवएव है जो रुधिर का अभिसरण करते हुए नित्य स्पन्दित रहता है और जब तक उसका स्पन्दन है तभी तक आयुष्य है। स्पन्दन ही आयुष्य है अथवा आयुर्बल ही स्पन्दन है। दोनों ही एक तथ्य है। आयुष्य ही अमृत है। अतएव शक्ति का स्पन्दन ही अमृत तत्त्व है। अमृत का ही दूसरा नाम अक्षर तत्त्व या प्राण तत्त्व है। स्थिति-गति-आगति के प्रतीक तीन प्राण देवता क्रमशः ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णु वैदिक परिभाषा में अक्षर देवता कहलाते हैं। अक्षर अविनाशी प्राण तत्त्व हैं। विनाशी भूत तत्त्व को क्षर कहा जाता है, जैसे गीता में स्पष्ट कहा है—

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।

कूट का अर्थ ढेर है। ढेर, राशि, कूट, स्तोम एक ही अर्थ के वाचक हैं। एक ही बहुभाव में अभिव्यक्ति कूट या स्तोम के नियम के अनुसार होती है। नाना कलाओं या संख्याओं की समष्टि से कूट बनता है। प्रत्येक भूत कूट है अर्थात् शक्ति की अनेक कलाओं के राशिभूत होने से बनता है। जो शक्ति अभिव्यक्त नहीं हुई वह अखण्ड या निष्कल होती है। उनकी अभिव्यक्ति की एक-एक इकाई जब कूट या समूह बनती है उसे ही भूत या अक्षर कहा जाता है। शक्ति अक्षर अखण्ड अविनाशी प्राण तत्त्व है। वही भूत या कूट की विधृति है, अतएव अक्षर को गीताकार ने कूटस्थ कहा है। अस्यवामीय सूक्त के अनुसार—

ततः क्षरत्यक्षरं ततो विश्वमुपजीवति। (१।१६४।४२)

(३) पुस्तक का नाम 'वैदिक-दर्शन', नाम लेखक— डॉ. फतहसिंह
प्रकाशक – संस्कृति-सदन, कोटा, (राजस्थान)

पृष्ठ संख्या (१९२) में ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र विषय में व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

(घ) ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—नाम, रूप तथा कर्म के प्रसंग में हम देख चुके हैं कि इन तीनों में से प्रत्येक तत्त्व का उद्भव (उक्थ), स्थिति (विभरण) तथा संहार (साम) होता है और तत्त्वों की इन तीनों क्रियाओं (उद्भव, स्थिति तथा संहार) को करने वाले क्रमशः वाक्, चक्षु (मन) तथा प्राण में से प्रत्येक में तीन पक्ष हो जाते हैं—

उद्भव सम्बन्धी वाक्			उद्भव संबंधी चक्षु (मन)			उद्भव संबंधी प्राण (आत्मा)		
स्थिति	"	"	स्थिति	"	"	स्थिति	"	"
संहार	"	"	संहार	"	"	संहार	"	"

इनमें से उद्भव-सम्बन्धी वाक्, चक्षु (मन) तथा प्राण (आत्मा) को ब्रह्मा का, स्थिति-सम्बन्धी वाक्, चक्षु (मन) तथा प्राण (आत्मा) को विष्णु का तथा संहार सम्बन्धी वाक्, चक्षु (मन) तथा प्राण (आत्मा) को रुद्र का लोक कहा जाता है, यद्यपि निम्न लिखित के 'त्रितय' ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र लोकों में से हर एक में पाया जाता है, परन्तु फिर भी इन तीनों लोकों में क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय तत्त्व की प्रधानता है—

इच्छा	ज्ञान	क्रिया
साम	यजुः	ऋक्
स्वः	भुवः	भूः
सोम	इन्द्र (सूर्य)	अग्नि
तमः	सत्त्व	रज
आनन्द	सत्	चित्
बुद्धि	मन	चित्
नाम	रूप	कर्म
वाक्	चक्षु (मन)	प्राण

ब्रह्मा—उक्त तीनों लोकों में से उद्भव या सृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले लोक का देवता ब्रह्मा है। यही देवता बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति या विश्वकर्मा भी कहलाता है। ऋग्वेद में इसके लिये दो पूरे सूक्त (१०।८१-८२) मिलते हैं। वह 'विश्व-भुवनों' का होता ऋषि तथा हमारा पिता है (१०।८१।१)। वह धाता, विधाता, परम-संदृक (ऋषि) विश्वकर्मा है, जिसमें 'सप्त-ऋषि' केवल 'एक' कहे जाते हैं (१०।८२।२)। वह विश्व धामों और भुवनों को जानने वाला विधाता, जनिता तथा पिता है, जो सभी देवों का 'नामधा' है और जिससे सारे ऋषि उत्पन्न हुये हैं (१०।८२।३-४)—न केवल इतना ही, अपितु 'रज' से सम्बन्ध रखने वाले सारे देवी तथा आसुरी 'भूत' और द्यावापृथिवी एवं देवासुर से परे सारी सृष्टि की उत्पत्ति भी इसी से हुई है (१०।८२।४-५) सारे विश्व का स्रष्टा होने के कारण वह विश्वतश्चक्षु, विश्वतोमुख, विश्वतोबाहु, तथा विश्वतस्पात् कहा जाता है (१०।८१।३)। जिस सामग्री से उसने यह सारी सृष्टि-रचना की है, वह कुतूहल का विषय है—

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः (१०।८१।४)
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवा समपश्यन्त विश्वे ।। (१०।८२।५)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वाक् (नाम), मन (रूप) तथा कर्म में से ब्रह्मा के लोक में प्रत्येक ही है। अतः वाक् (नाम) की दृष्टि से ब्रह्मा (विश्वकर्मा) को वाचस्पति तथा 'नामधा एक एव' कहा जाता है (१,८१,७;८२,३) और वाक् के ही अन्तर्गत अथर्वांगिरस, ऋक्, यजुः तथा सामवेद आजाने से ब्रह्मा को चतुर्मुख या चारों वेदों का ज्ञाता कहा जाता है। वाक्,नाम और वेद की निष्पत्ति क्रमशः कवि, मन तथा देव शब्दों से हुई है क्योंकि प्रथम (वाक् या शक्ति), द्वितीय(शक्तिमान अकर्ता) की सक्रिय शक्ति होने से उसका विपरीत-रूप ही कल्पित किया गया है। अतः ब्रह्मा के लिये 'मनोजुवा' विशेषण भी प्रयुक्त होता है (१०।८१।७)। कर्म-तत्त्व उक्त कवि और वाक् या देव और वेद अथवा मन और नाम के संयोग का परिणाम है, इसी बात को व्यक्त करते हुए बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य उपनिषदों में वाक् और कवि तत्त्वों के संयोग को सा तथा अमः का संयुक्त रूप बतलाकर संयुक्त-रूप प्राण को

बृहस्पति, ब्रह्मणस्थति या साम कहा गयाः—

एष उ एव बृहस्पतिर्वाग् वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पति ।
एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ।
एष उ एव साम वाग् वै सा अम एष सा च अमश्चेति तत्साम्नः: साम्नत्त्वम् ।
(बृ. उ. १,३,२०-२२)

यद्यपि कर्म-तत्त्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार वाक् तथा प्राण के इस संयुक्त सामरूप से ही होता है, इसकी क्रिया का मूल कारण वाक् की सक्रियता ही है । अतः 'वाक्' को इस रूप में 'कृ' धातु के विलोम ऋक् द्वारा व्यक्त किया जाता है और इस दृष्टि से उक्त प्राण या बृहस्पति को ऋच्यध्यूढं साम कहा जाता हैः—

वागेवर्क् प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं सामतस्यादृच्यध्यूढं
साम गीयते वागेव सा प्राणोऽमस्तस्साम । (छान्दोग्य उपनिषद् १,७,१)

(४) पुस्तक का नाम—'वैदिक माइथौलोजी', (वैदिक पुराकथा शास्त्र)
नाम लेखक—ए. ए. मैकडोनेल, (विदेशी विद्वान्)
हिन्दी अनुवादक—रामकुमार राय, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,

इसमें वेदों के देवी-देवताओं, सृष्टि क्रम तथा यज्ञ-उपासना प्रणाली का वह ज्ञान है जिसकी स्थापना पाश्चात्य शोधकों ने की है। अत्यन्त उत्कृष्ट, सुसम्बद्ध तथा तर्कसंगत रूप से व्याख्या प्रस्तुत की है । फिर भी इसकी शैली प्राचीन है, जिसमें लम्बे-लम्बे जटिल वाक्यों, क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग हुआ है । इसमें वेदों के अनेक गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन हुआ है । इसमें चारों वेदों के एक-एक वैदिक देवताओं के विषय में कौन-कौन से मन्त्र किस-किस वेद में आये हैं, देवताओं के ब्रह्माण्ड में स्थान कहाँ-कहाँ हैं, उनके क्या-क्या अधिकार हैं ?, क्या-क्या कार्यक्षेत्र हैं ?, इन सभी बातों का सविस्तार वर्णन है वैज्ञानिक विचारों का उल्लेख ससंकेत संदर्भ रूप में यथास्थान किया गया है । पृष्ठ संख्या (१९१-१९७) पर देवता की निरूपण संख्या (३६) पर बृहस्पति का वर्णन किया गया है—

दिव्य 'ब्राह्मण' पुरोहित के रूप में बृहस्पति को हिन्दू त्रयी के प्रमुख देवता 'ब्रह्मा' के प्रतिरूप होना लिखा है ।

भगवान् ब्रह्मा का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत करने लिये वेद, उपनिषद्, श्रुति, स्मृति और पुराण धर्मशास्त्रादि विविध ग्रन्थों के अनेक प्रमाण संग्रह किये गए हैं । इन सभी का तात्पर्य यही पाया जाता है कि भगवान् जनार्दन एक ही हैं, सृष्टि स्थिति और संहार के लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाम तथा स्वरूप धारण करते हैं । इनमें कोई भेद नहीं है ।

यो वा त्रिमूर्त्तिः परमः परश्च त्रिगुणं जुषाणः सकलं विधत्ते ।
त्रिधा त्रिधा वा विदधे समस्तं त्रिधा त्रिरूपं सकलं धराय स्वाहा ।।
(परमात्मोपनिषत् पृष्ठ १०२ श्लोक. ७)

'जो परम और पर (सबका कारण) तीनों गुणों को लेकर त्रिमूर्ति के रूप में तीन—तीन प्रकार से, तीन रूप धारण कर सब की रचना करता है, उस साकार (सकल ब्रह्म) को प्रणाम है ।' ❋❋

उपनिषद्, स्मृति और पुराणों में भगवान् ब्रह्मा के विभिन्न नाम होते हुए भी सृष्टि प्रक्रिया भिन्न-भिन्न नहीं, ब्रह्म-तत्त्व में एक ही है

सोपान ४

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ।।
(अथर्ववेद-का. १९, अनु. १ सूक्त ९, मंत्र ४)

'परमेष्ठी = ब्रह्मा सर्वोत्कृष्ट स्थान पर स्थित हैं। उन्होंने ही इस असत् मन को सत् बनाया अर्थात् मन की सृष्टि की। तदनन्तर मनको सृज्य विषय में तीक्ष्ण बनाया। यही मन सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण है। इसी मन से घोर कर्म की सृष्टि की गयी। अब इसी के द्वारा उन घोर कर्मों की हमारे लिये शान्ति प्रदान हो।'

भगवान् ब्रह्मा सृष्टि के निर्माता हैं। पुराणों में सृष्टि क्रम में संक्षेपतः बतलाया गया है कि क्षीर समुद्र में शेषशय्या पर भगवान् नारायण सो रहे हैं, जगज्जननी लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं, भगवान् नारद पास में खड़े हुए स्तुति कर रहे हैं। उन्हें जब सृष्टि रचने की इच्छा होती है, तब उनकी नाभि से एक 'पद्म' (कमल) निकलता है, उस कमल में से चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, वे ब्रह्मा स्थावर-जङ्गमात्मक विश्व का निर्माण करते हैं। इस चित्र को ध्यान में रखें।

अठारह पुराणों की शास्त्रानुसार गणना का क्रम निम्न प्रकार है—
(१) ब्राह्म, (२) पाद्म, (३) वैष्णव, (४) वायव्य (शैव), (५) भागवत, (६) नारद, (७) मार्कण्डेय, (८) आग्नेय, (९) भविष्य, (१०) ब्रह्मवैवर्त, (११) लिङ्ग, (१२) वाराह, (१३) स्कन्द, (१४) वामन, (१५) कौर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड़, (१८) ब्रह्माण्ड।

मोटे रूप में भी देखते ही प्रत्येक भावुक पाठक को एक प्रकार का चमत्कार सा प्रतीत होता है कि इस विद्या विषय का आरम्भ ब्रह्म से होता है और समाप्ति ब्रह्माण्ड पर होती है तथा मध्य में भी 'ब्रह्मवैवर्त' में ब्रह्म की स्मृति (याद) करा दी जाती है। इसी से स्पष्ट हो गया कि यह 'सृष्टिविद्या' है, जो ब्रह्म से आरम्भ होती है और 'ब्रह्माण्ड' तक हमारे ज्ञान को पहुँचा देती है और आदि, मध्य एवं अन्त में ब्रह्म का कीर्तन करती हुई ब्रह्म पर से ज्ञान को विचलित नहीं होने देती, इससे

प्रमाणित होता है कि हमारे पुराणों का मुख्य प्रतिपाद्य सृष्टिविद्या ही है। अब हम पुनः भगवान् ब्रह्माजी के प्रादुर्भाव चित्र की ओर चलते हैं। कार्य से कारण की ओर जाना है, स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करना है। स्थावर-जङ्गमात्मक दृश्यजगत् के निर्माता ब्रह्मा का तत्त्व पहला 'ब्राह्मपुराण' कहलाता है। ब्रह्मा जहाँ से प्रकट हुए, उस पद्म (कमल) का निरूपण दूसरे-'पद्मपुराण' में हुआ है। पद्म के उद्भव-स्थान भगवान् विष्णु को तीसरे वैष्णव-पुराण में समझाया गया है और उसके आधार (शयन स्थान) 'शेष' का वायुपुराण में निरूपण कियागया है। इसी वायु-पुराण को कहीं (शिवपुराण) नाम से लिखा गया है। तात्त्विक दृष्टि से इन नामों में कोई भेद नहीं है-यह तत्त्व-निरूपण से स्पष्ट हो सकता है। इस शेष के भी आधार 'सरस्वान्' (क्षीरसागर) को पाँचवाँ 'भागवत' समझाता है, इसलिये 'सारस्वत कल्प' भी कहते हैं—'सरस्वत इदं सारस्वतम्।' अब रह गये 'नारद भगवान्', उनका निरूपण छठा 'नारद पुराण' कर देता है। इस प्रकार पूर्व षटक (पहले छह पुराणों) में यह सृष्टि का पुराणोक्त चित्र एक-एक करके विशद रूप से समझा दिया गया है।

इसी विषय को मनुस्मृति के प्रथमाध्याय के आरम्भ में लिखा है—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः॥
अपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥

'संक्षेप में इस सबका तात्पर्य यही है कि सृष्टि के आरम्भ में सब से पूर्व 'स्वयम्भू' प्रादुर्भूत हुआ, उसने प्रजासृष्टि की इच्छा से सबसे पहले अपने शरीर से अप (आपोमय परमेष्ठिमण्डल) को उत्पन्न किया [इसे ही पौराणिक चित्र में क्षीर समुद्र कहा गया है।] और उसमें भावी सृष्टि का बीज रखा। वह बीज सुवर्ण का अण्डा बना, उसके हजार किरणें थीं, और सब किरणों में समान कान्ति थी। [इसे ब्रह्माण्डगोलक या त्रिलोक मण्डल समझना चाहिये।] उसके मध्य में सर्वलोक पितामह ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। [स्मरण रहे कि पद्मज ब्रह्मा सब लोकों के पिता हैं, किन्तु वे ब्रह्मा उनके भी उत्पादक हैं, इसलिये उन्हें [सूर्यरूप ब्रह्मा को पितामह

कहा गया है ।] आगे इन ब्रह्मा का ही नाम 'नारायण' बतलाया गया है, और 'नारायण' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है कि नर (स्वयंम्भू के पुत्र अप 'नार' हैं, उस नार आपोमयमण्डल) में रहने के कारण ये पितामह ब्रह्मा नारायण हैं। इस सब वर्णन पर सूक्ष्म दृष्टिपात कर लेने के पश्चात् इस विषय में कोई सन्देह नहीं नहीं रह सकता कि पूर्वोक्त पौराणिक चित्र में जिन्हें क्षीरसमुद्रशायी विष्णु कहा गया है, वे ही मनुस्मृति में 'पितामह' ब्रह्मा कहे गये हैं। 'नारायण' नाम दोनों जगह समान हैं। भगवान् मनु ने स्वयम्भू से आरम्भ किया है, स्वयम्भू का 'ब्रह्मा' नाम लोक प्रसिद्ध है और आगे-आगे के मण्डलों में जितनी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे आदि के मण्डलों की शक्ति से भिन्न नहीं हैं। या इस प्रकार कहिये कि आदित्यमण्डल का जो अभिमानी देव है, वही भिन्न-भिन्न नाम-रूपों से आगे उत्पन्न होने वाले मण्डलों का भी अभिमानी है। वह उनमें भेद दृष्टि सर्वथा नहीं करता। इसी अद्वैततत्त्व के निर्वाह के लिये भगवान् मनु ने 'ब्रह्मा' नाम ही सर्वत्र रख दिया है। किन्तु व्यवहार-सांकर्य मिटाने के लिये पुराणों में 'विष्णु' और 'ब्रह्मा' पृथक्-पृथक् नाम कर दिये गये हैं, अद्वैत सब को मान्य होता है। इसलिये-

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।

यह सिद्धान्त सर्वत्र ही उद्घोषित है। पितामह ब्रह्मा ने वर्षभर उस अण्डे में निवास कर अपने ध्यान से उस अण्डे के दो विभाग कर दिये। उन्हीं दोनों टुकड़ों से द्यु (स्वर्लोक) और पृथिवी (भूलोक) को बनाया। [यही भूलोक पुराणों में पद्मरूप से निरूपित हुआ है और इस पर एक दूसरे ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, जिनका वर्णन मनुस्मृति में आगे चलकर श्लोक (३२) में 'विराट्' नाम से आता है।] तैत्तिरीय उपनिषद् में जो 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः वायुरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी' इत्यादि कहा गया है, वहाँ इतनी विशेषता है कि 'अप' शब्द से हमारी त्रिलोकी के अन्तरिक्ष को लिया है, जिसे पूर्वोक्त मनुस्मृति के श्लोकों में भी 'अपांस्थानम्' नाम से बतलाया गया है। यह सूर्यमण्डल से उत्पन्न है और पृथिवी और सूर्य के मध्य में स्थित है। पहला 'अप' जो कि सूर्यमण्डल का भी उत्पादक है, जिसे 'जनः' वा परमेष्ठिमण्डल नाम से हम पहले लिख आये हैं, वह इस उपनिषद् में 'वायु' नाम से ही निर्दिष्ट है। आकाश तो वाङ्मयमण्डल स्वयम्भू है ही। इन विषयों का सविस्तार वर्णन इस अध्याय में किया जाना सम्भव नहीं। यहाँ सक्षेप में यही दिखाने का प्रयास किया गया है कि उपनिषद्, मनुस्मृति वा पुराणों की सृष्टि-प्रक्रिया भिन्न-भिन्न नहीं है, एक ही ब्रह्म तत्त्व को भिन्न-भिन्न शब्दों में बतलाया गया है। विवेक दृष्टि से किञ्चित् विचार करने से ही सब की एकवाक्यता बुद्धि में आ जाती है।

(साभार कल्याण के पद्मपुराणाङ्क से संगृहीत)

* *

भगवान् ब्रह्मा का अवतार विवेचन

सोपान ५

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४।७)

'हे भारत जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकाररूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ ।'

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४।८)

'साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये, पापकर्म करने वालों का नाश करने के लिये और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ ।'

इसी प्रकार से भगवान् ब्रह्माजी भी, जब भगवान् विष्णु अवतार धारण करते हैं, उनकी अवतार लीलाओं का आनन्द प्राप्त करने एवं उनके लीला चरित्रों में सहयोग प्रदान करने तथा उत्तम धर्मों की स्थापना करने हेतु अवतार धारण करते हैं, जिनका वर्णन अनेक शास्त्रों में उपलब्ध होता है। उनमें से कतिपय अवतारों की कथाएँ भार्गव संहिता, स्कन्दपुराण, पञ्चरात्र, गरुडपुराण, आनन्द-संहिता, ब्रह्माण्डपुराण, वाल्मीकिरामायण, श्रीमद्भागवत्, गर्गसंहिता के आधार पर आगे प्रस्तुत की जा रही हैं ।

* *

श्रीविखना मुनि भगवान् ब्रह्मा के अवतार

सोपान ६

भगवान् विष्णु के उपदेशानुसार वैखानस-सम्प्रदाय भगवान् विखना मुनि के द्वारा ही प्रचलित हुआ था । भगवान विष्णु ने लोक-कल्याण के लिये अर्चारूप में इस पृथ्वी पर अवतार लेकर उक्त अर्चावतार की अर्चना की परम्परा को स्थापित करने के लिये स्वांश से विखना मुनि को प्रकट किया और अर्चा-सम्प्रदाय का उपदेश किया । श्रीविखनामुनि ही विश्व के आदि वैष्णवधर्मप्रवर्तक हुए । श्रीविखना

मुनि साक्षात् ब्रह्मा ही हैं। ब्रह्माजी ने ही भगवान् विष्णु के संकल्पानुसार विखना मुनि रूप से सृष्टि के आदि में यजुर्वेद की वैखानसी शाखा के अनुसार 'वैखानससूत्र' का निर्माण किया—

आदिकाले तु भगवान् ब्रह्मा तु विखना मुनिः।
यजुश्शाखानुसारेण चक्रे सूत्रं महत्तरम्॥
(भार्गव संहितायाम्)

वैखानसीं महाशाखां स्वसूत्रे विनियुक्तवान्।
पद्मभूः परमो धाता तस्मिन्नाराधनत्रयम्॥
(स्कन्दपुराण)

उन विखना मुनि ने भगवान् विष्णु द्वारा उपदिष्ट विस्तृत आगम को संक्षिप्त किया और फिर भृगु, अत्रि, कश्यप, मरीचि आदि शिष्यों को उसका उपदेश किया। उक्त वैखानस भगवच्छास्त्र को पुनः इन मुनियों ने चार लाख श्लोकों में संक्षिप्त करके इस भारत भूमि पर प्रकट किया—

ततः परं चतुर्वक्त्रो जटाकाषायदण्डवत्।
तपस्तप्त्वा चिरं कालं..............................॥
पश्चादपश्यद्विष्णूक्तमागमं विस्तरात्तदा।
संक्षिप्य सारमादाय शाणोल्लिखितरत्नवत्॥
धाता विखनसो नाम्ना मरीच्यादिसुतान् मुनीन्।
अबोधयदिदं शास्त्रं सार्द्धकोटिप्रमाणतः।
मुनिभिस्तैश्च संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः॥
(श्रीपञ्चरात्र)

पुरा चतुर्मुखादेशाच्चत्वारो मुनयोऽमलाः।
प्रणीय वैष्णवं शास्त्रं..............................॥
(गरुडपुराण)

उक्त भृगु, अत्रि, कश्यप एवं मरीचि ऋषियों द्वारा रचित भगवच्छास्त्र क्रमशः अधिकार, संहिता, काण्ड तथा तन्त्रनामों से जाने गये। भगवान् विखना मुनि द्वारा रचित गृह्यसूत्र में विष्णु-अर्चा के लिये शारीरिक संस्कारों का वर्णन भी किया गया है तथा उसके—

अग्नौ नित्यहोमान्ते विष्णोर्नित्यार्चागृहे देवायतने वा भक्त्या भगवन्तं नारायणमर्चयेत्।'

उक्त वाक्य में भगवदर्चा को नित्यहोम के अनन्तर नित्यकर्म के रूप में करने का निर्देश किया गया है। भगवान् विष्णु की अर्चा अपने घर पर या देवालय में करने का जो विधान है, उसके अनुसार परात्पर, परब्रह्म, परमज्योति, अक्षर, सर्वभूतात्मक, सर्वाधार, सनातन परम पुरुष श्रीविष्णु की अर्चा के लिये देवालय निर्माण-विधि, प्रतिमा-प्रतिष्ठा-विधि, अनेक प्रकार के ध्यान-मुद्रा-भेद सहित

समन्त्र, सप्रयोग भगवान् की अर्चा-विधि का उल्लेख सविस्तार 'विमानार्चनकल्प' ग्रन्थ में महर्षि मरीचि ने किया है। वैखानस शास्त्रोक्त रीति से भगवान् विष्णु की पूजा विधियों का सविशेष विवरण 'अर्चना-नवनीत' 'विष्णवर्चनसार-संग्रह' 'भगवदर्चा-प्रकरण' आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से पाया जाता है।

वैखानस महर्षि की उत्पत्ति तथा सूत्र-रचना विषय में और भी प्रमाण प्राप्त होते हैं—

भगवान् विष्णु ने वेदान्त-तत्त्व-मीमांसा के खनन करने वाले स्वाराधन (विष्णु के आराधन) में तत्पर मुनि को उत्पन्न किया। वे मुनि भगवान् के अंशभूत होने से रूप, लक्षण, सौन्दर्य तथा ओज में उनके समान ही थे। उनकी चार भुजाएं शङ्ख, चक्र तथा वरद, अभय मुद्राओं से सुशोभित थीं। वे कुशासन पर आसीन थे। उनका ललाट पट्ट ऊर्ध्व पुण्ड्र से सुशोभित था। वे किरीट, कुण्डल, केयूर, हार आदि अलंकारों से अलंकृत तथा शिखा, यज्ञोपवीत एवं त्रिदण्ड से सुशोभित थे। उनके उभय-मुद्रायुक्त हस्त में कमल शोभा पाता था। उन भगवदवतार महर्षि का नाम भगवान् विष्णु ने 'विखनस' रखा -

चिन्तयित्वासृजद्, विष्णुः स्वाराधनपरं मुनिम्।
वेदान्ततत्त्वमीमांसाखननं कृतवान् प्रभुः॥
स्वांशभूतो हि भगवान् संजातो मुनिपुङ्गवः।
रूपलक्षणसौन्दर्य.. ॥
चतुर्भुजः शङ्खचक्रवरदाभयचिह्नितः।
कुशासने समासीन ऊर्ध्वपुण्ड्र पवित्रकः॥
किरीटहाराभरण — कुण्डलाङ्गदभूषितः।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां त्रिदण्डेन विराजितः॥
पद्मं चाभयहस्ते तु..।
नाम्ना विखनसं चक्रे। (आनन्द संहिता)

महर्षि विखनस ने भगवान् विष्णु के आदेशानुसार नैमिषारण्य में चिरकाल तक तपस्या करके श्रौत-स्मार्तरूप सूत्र तथा आगम को भगवान् विष्णु से प्राप्त किया और विष्णूक्त आगम का सारभूत सार्धकोटि (डेढ करोड़) प्रमाण ग्रन्थों की रचना की।

मया नियुक्तो विखनः मदाराधनकृद्भव।
सूत्रं कुरु महाभाग त्वजाम्ना यजुषि श्रुतौ॥
वैखानसमिदं प्रोक्तं लोके ख्यातिं गमिष्यति।
(ब्रह्माण्डपुराण भगवद्विखनस संवाद)

इस प्रकार भगवान् की आज्ञा पाकर यजुर्वेद के मन्त्रों से द्वात्रिंशत्प्रश्नात्मक वैखानस सूत्र एवं कर्षणादि प्रतिष्ठान्त दैविक कर्मकाण्ड का निर्माण भगवान् वैखानस ने किया।

पश्चादपश्यद् विष्णूक्तमागम विस्तरात्तदा ।
सश्रौतं च ससूत्रं च वेदमार्गैरभिष्टुतम् ।।

'संक्षिप्य सारमादाय धाता विखनसो नाम्नामरीच्यादिसुतान् मुनि-नाबोधयदिदं शास्त्रं सार्धकोटि प्रमाणतः ।' (वैखानसभगवच्छास्त्र)

'पश्चात् ब्रह्माजी ने वेदमार्गानुमोदित श्रौत-स्मार्तरूप विष्णूक्त आगम को अति विस्तृत जानकर संक्षेप में उनका सार डेढ करोड़ प्रमाण ग्रन्थों के रूप में महर्षि विखनस के नाम से मुनिवर मरीचि आदि पुत्रों को समझाया ।'

भारत के मुकटायमान नैमिषारण्यक्षेत्र में स्वयंभू मन्वन्तर के कृतयुगान्तर्गत शुक्ल नामक वर्ष में श्रवणनक्षत्र से युक्त श्रावण पूर्णिमा इन्दुवासर के दिन सिंह लग्न में इन सूत्रों का निर्माण सम्पन्न हुआ । यह आनन्दसंहितोक्त वचनों से प्रमाणित है—

स्वायम्भुवमनोः काले युगादौ शुक्लवासरे ।
श्रवणे श्रावणे शुक्लपूर्णिमासोमवासरे ।।
सिंह लग्ने च संयुक्ते विखनाः प्राप नैमिषम् ।।

(आनन्दसंहिता)

महर्षि विखनस ने अपने शिष्य दक्ष, मरीचि, नीललोहित, भृगु, आङ्गिरस, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, वसिष्ठ, ऋतु, सनकादि को इस भगवच्छास्त्र का उपदेश किया ।

दक्षं मरीचिं नीललोहितं भृगुमेव च ।
तथाङ्गिरसमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं तथा ।।
वसिष्ठं च क्रतुं चैव क्रमादसृजदब्जभूः ।
नव ब्राह्मणा एवैते विनान्ये नीललोहितम् ।।
धर्म सङ्कल्पसहिताः सनकाद्यामुनीश्वराः ।
......................शिष्याः विखनसः प्रोक्ताः ।।

(आनन्द संहिता)

इन शिष्यों में नीललोहित को छोड़कर नव शिष्य ब्राह्मण थे, जिनमें केवल चार भृगु, अत्रि, कश्यप एवं वसिष्ठ महर्षियों ने गुरूपदिष्ट सार्धकोटचात्मक (डेढ़ करोड़) भगवच्छास्त्र को संक्षिप्त करके चार लाख प्रमाण ग्रन्थ की रचना की । वे क्रमशः अधिकार, काण्ड, तन्त्र तथा संहिता नाम से प्रसिद्ध हैं । ये ही वैदिक संस्कृति के मूलस्तम्भ देवालय-निर्माण, प्रतिष्ठापन एवं विम्ब प्रतिष्ठा, अर्चना आदि के लिये मूलाधार बनकर लोक कल्याण के लिये परम श्रेयोदान कर रहे हैं ।

विखनस मुनि ग्यारह प्रश्नात्मक स्मार्तसूत्र, इक्कीस प्रश्नात्मक श्रौतसूत्र निर्माण करके वैखानस-सम्प्रदाय के प्रवर्तक बने । इन सूत्रों के व्याख्यानभूत—

(१) श्रीनिवास दीक्षितीय, (२) नृसिंहवाजपेयीय तथा (३) सुन्दरराजीय आदि ग्रन्थ प्रख्यात हैं । विखनस महर्षि द्वारा सूत्र में निर्दिष्ट जिन वेद-मन्त्रो पर

सायणभाष्य में व्याख्या नहीं की गयी, उन सभी मन्त्रों पर श्रीभट्ट भास्कराचार्य द्वारा निर्मित भट्ट भास्करीय मन्त्र भाष्य उपलब्ध हैं। ये वैखानस सम्प्रदाय के प्रमाणभूत मूलाधार ग्रन्थ माने जाते हैं।

वैखानस सूत्र की विशेषता

इस सूत्र में अन्य सूत्रों की अपेक्षा एक विशिष्ट संस्कार होता है, जिसको विष्णुबलि कहते हैं। इस संस्कार में शिशु को गर्भावस्था में ही स्वयं भगवान् विष्णु द्वारा चक्रमुद्रा धारण करायी जाती है, जिससे उसको परम वैष्णवत्व की प्राप्ति उस प्रकार हो जाती है, जिस प्रकार भागवतोत्तम प्रह्लादजी को गर्भावस्था में नारदोपदेश द्वारा परम वैष्णवत्व की प्राप्ति हुई थी। लिखा है—

त्वदंशजानां सर्वेषां गर्भवैष्णवजन्मनाम्।
अहमेव स्वयं गर्भे यन्मुद्रां धारयाम्यहम्॥

(आनन्द संहिता भगवद्वचन)

'जैसे सब शालग्राम शिलाओं में गर्भचक्र होता है, वैसे ही वैखानस-सम्प्रदाय के अनुयायियों को गर्भ में ही चक्र धारण कराया जाता है।' कहा है—

शालग्रामेषु सर्वेषु गर्भे चक्रस्य धारणम्।
वैखानसानां सर्वेषां गर्भे चक्रस्य धारणम्॥

(आनन्द संहिता)

इसी कारण से वे भगवान् को अतिशय प्रिय हैं। ब्रह्माण्डपुराण में तो भगवान् का ही अंश कहा गया है—

त्वत्सूत्रिणो द्विजाः सर्वे मदंशा एव सुव्रत।

(ब्रह्माण्डपुराण भगवद्विखनस-सम्वाद)

'हे सुव्रत! तेरे सूत्रों के अनुयायी सभी ब्राह्मण मेरे ही अंश हैं।'

वैखानस शास्त्रानुयायियों की विशिष्ट महत्ता के विषय में वृद्ध-मनुस्मृति, महाभारत, ब्रह्मवैवर्तपुराण, गरुडपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, कूर्मपुराण, पौष्करसंहिता, हारितस्मृति, आदि अनेक ग्रन्थों में प्रमाण प्राप्त होते हैं।

वैदिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक काल में इस वैखानस सम्प्रदाय का सभी ने अनुसरण किया है। यह सम्प्रदाय केवल वैखानस लोगों का ही है, ऐसी धारणा भी उचित नहीं है। शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है—

वेदे वैखानसे सूत्रे यो धर्मः परिकीर्तितः।
सर्वैः सधर्मोऽनुष्ठेयो नात्र कार्या विचारणा॥

'वेदोक्त वैखानस-सूत्र में जिस (भगवत्पूजारूपी) धर्म का निर्देश किया गया है, उसका पालन सभी को करना चाहिये, इसमें ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं है।'

वैखानस सूत्रोक्त विधि से ग्राम में विष्णु भगवान् के मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें भगवान् विष्णु की मूर्ति की प्रतिष्ठा भी उसी ही विधि से करे और

वैखानस सम्प्रदायानुगत ब्राह्मणों के द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना करावें, जिससे उन ग्रामवासियो के वर्णाश्रमाचार प्राप्त अनुष्ठानों में होने वाले न्यूनातिरिक्त दोष धुलकर के परिपूर्ण होते हैं और वे विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। इसके लिये लिखा है—

ग्रामे विष्णुं प्रतिष्ठाप्य वैखानस विधानतः।
विप्रै र्वैखानसैर्विष्णोः कारयित्वार्चनं नराः॥
वर्णाश्रमफलं लब्ध्वा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥

(आनन्द संहिता)

उपर्युक्त विवेचन से वैखानस-सम्प्रदाय विष्णु भगवान् की अर्चना कराने की विधि निर्माण करने के लिए ही भगवान् विष्णु की आज्ञा द्वारा सृष्टि निर्माता, वेदों के अधिष्ठाता भगवान् ब्रह्माजी ने विखना मुनि के रूप में अवतार धारण कर इस कार्य को सम्पन्न किया था। यह सम्प्रदाय अति प्राचीन वैदिक विशिष्ट वैष्णव सम्प्रदाय प्रमाणित होता है। अतः इसके अनुसार सब भगवदाराधन करके भगवान् विष्णु के पद को प्राप्त कर सकते हैं।

नारायणः पिता साक्षात् माता चापि हरिप्रिया।
भृगवादिमुनयः शिष्यास्तस्मै विखनसे नमः॥

'जिनके पिता साक्षात् नारायण एवं माता श्रीलक्ष्मीजी हैं तथा भृगु आदि मुनिगण शिष्य हैं, उन विखनस महर्षि को नमस्कार है।'

[यह सोपान (अध्याय) साभार कल्याण के विष्णु अङ्क तथा उपासनाङ्क में प्रकाशित श्रीभास्कर रामकृष्णमाचार्युलु के लेखों की सहायता से लिखा गया है।]

* *

ऋक्षराज जाम्बवान् ब्रह्माजी के अवतार

सोपान ७

भगवान् विष्णु ने जब राजा दशरथजी के पुत्ररूप में रामचन्द्रजी के नाम से अवतार लिया, उस समय ब्रह्माजी ने देवगणों से कहा, भगवान् श्रीरामचन्द्र के कार्यों में सहायता करने के लिये आप लोग ऐसे पुत्रों की सृष्टि करो, जो बलवान् इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, माया जानने वाले शूरवीर, वायु के समान वेगशाली, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, किसी से परास्त नहीं होने वाले, विष्णु तुल्य पराक्रमी, अनेक प्रकार के उपायों को जानने वाले, दिव्य शरीरधारी तथा अमृतभोजी देवताओं के समान सब प्रकार की अस्त्र विद्या के गुणों से सम्पन्न हों।

प्रधान-प्रधान अप्सराओं, गन्धर्वों की स्त्रियों, नागों की कन्याओं, रीछों की

का पालन नहीं कर सकते हैं। नृपश्रेष्ठ ! यदि आप में इस प्रकार की शक्ति हो तो आपके कुलगुरु पुरोहित गर्गाचार्य को बुलाकर सब प्रकार के सभी प्रबन्ध करने के पश्चात् यज्ञ आरम्भ करा दीजिये।

राजा उग्रसेन ने कहा—महामुने ! मैं अश्वमेध यज्ञ अवश्य करूँगा, आप इस यज्ञ के योग्य अश्व को मेरी अश्वशाला में चलकर बहुत से अश्वों में से छाँट लीजिये।

राजा की बात सुनकर बहुत अच्छा कहकर देवर्षि नारदजी यज्ञ के योग्य अश्व देखने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अश्वशाला में गये वहां उन्होंने अनेक प्रकार के उत्तम सुन्दर घोड़े देखे, किन्तु अश्वमेध यज्ञ में प्रयोग होने योग्य श्यामकर्ण घोड़ा एक भी नहीं मिलने से राजा उदास होने लगे। तब ही हँसते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि मेरी अश्वशाला में और देखें। वहां पहुंचने पर अश्वमेध योग्य कई एक श्यामकर्ण घोड़े मिल गये। तब ही भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—'नृप श्रेष्ठ ! आप मेरे कहने से चन्द्रमा के समान कान्तिमान् श्यामकर्ण एक घोड़े को लेकर यज्ञ आरम्भ कर देवें।'

भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा सुनकर राजा उग्रसेन उनसे बोले—'प्रभो ! अब मैं क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करूँगा।' ऐसा कह कर वे श्रीकृष्ण और नारदजी के साथ राजसभा में गये। वहां तुम्बुरु सहित नारदजी श्रीकृष्ण से विदा ले, राजा को आशीर्वाद देकर ब्रह्मलोक में चले गये।

राजा उग्रसेन और भगवान् श्रीकृष्ण सभी सुधर्मा सभा के मन्त्रीगणों को यज्ञ की सभी सामग्री संग्रह करने और यज्ञ सम्बन्धी सब प्रकार के प्रबन्ध करने के लिए यथोचित प्रबन्धकों को नियुक्त कर दिया। यदुकुलगुरु गर्गाचार्य को भी बुलाया गया। विद्वान् ब्राह्मणोचित् कार्यों के लिये उन्होंने सब ही प्रकार के योग्य विद्वानों, ऋषि-मुनियों को बुलवाकर यज्ञशाला निर्माण के कार्यों का शुभारम्भ करा दिया।

एक दिन यज्ञ सम्बन्धित अनेक प्रबन्ध करने हेतु राजा उग्रसेन भगवान् श्रीकृष्ण और श्री गर्गमुनि, मुख्य-मुख्य यादव सामन्तों और मन्त्रीगणों की सभा हो रही थी। उस समय ही श्रीगर्गमुनि ने कहा—नृपेश्वर ! अश्व की रक्षा के लिए कौन आयेगा, इस बात का निश्चय कर लीजिये, क्यों कि भू-मण्डल पर आपके शत्रु बहुत हैं। पूरे एक वर्ष तक आपको असिपत्र-व्रत का पालन करना होगा, तब ही यह श्रेष्ठ यज्ञ सकुशल सम्पन्न हो सकेगा। पूर्वकाल में राजसूय यज्ञ के अवसर पर प्रद्युम्न ने समस्त भू-मण्डल पर विजय पायी थी। इस बार अश्व की रक्षा के लिये क्या पुनः उन्हीं की नियुक्ति करेंगे ? यह बात सुनकर राजा चिन्ता में पड़ गये और भगवान् श्रीकृष्ण की ओर देखने लगे। राजा को चिन्तामग्न देखकर भगवान् ने तत्काल पान का बीड़ा लेकर हँसते हुए कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे बलवान् युद्ध कुशल समग्र यादव वीरो ! महाराज उग्रसेन के सामने मेरी बात सुनो—जो मनस्वी एवं महारथी वीर भू-मण्डल

के समस्त राजाओं से अश्वमेध यज्ञ-सम्बन्धी अश्व को छुड़ा लेने में समर्थ हो, मेरे हाथ में पान का बीड़ा है, वह इस पान के बीड़े को ग्रहण करे। इस बात को सुनकर सब वीरगण एक-दूसरे की ओर देखने लगे। तब ही धनुष धारण किये हुए, उषापति अनिरुद्ध ने खड़े होकर महाराज उग्रसेन को नमस्कार किया और भगवान् श्रीकृष्ण के हाथ में से पान का बीड़ा ले लिया और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मस्तक झुकाकर कहा—

श्री अनिरुद्ध बोले—जगदीश्वर! मैं समस्त राजाओं से श्यामकर्ण घोड़े की रक्षा करूँगा। आप मुझे इस कार्य में नियुक्त कीजिये और कहा दीन-वत्सल गोविन्द! यदि मैं घोड़े का पालन नहीं कर सकूँ तो उस दशा में मुझे अनेक प्रकार के पापों का फल मिले।

अनिरुद्ध का यह ओजस्वी वचन सुनकर समस्त यादव आश्चर्यचकित हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्काल ही अपने पौत्र के मस्तक पर हाथ रखा और मेघ के समान गम्भीर वाणी में उनसे कहा—

श्रीकृष्ण बोले—अनिरुद्ध! तुम एक वर्ष तक अश्वमेधीय अश्व की समस्त राजाओं से रक्षा करते हुए फिर यहां लौट आओ।

शुभमुहूर्त में अश्वमेध यज्ञ का शुभारम्भ

राजा उग्रसेन ने असिपत्र-व्रत का संकल्प धारण कर लिया और श्रीगणेश पूजन, स्वस्तिवाचनपूर्वक करके समस्त देवताओं का आह्वान पूजन किया। ऋत्विजों का वरण पूजन किया और श्यामकर्ण अश्व का आनयन और अर्चन कराया। ब्राह्मणों को दक्षिणा-दान किया, स्वर्णपत्र पर गर्गजी द्वारा उग्रसेन के बल-पराक्रम का उल्लेख करके अश्व के भालदेश पर बांधा गया तथा अनिरुद्ध को अश्व की रक्षा के लिए आदेश दिया गया। अश्व की पूजा करने के पश्चात् उसका मोचन किया गया तथा उसकी रक्षा के लिये अनिरुद्ध का विजयाभिषेक किया। अनिरुद्ध ने अन्तःपुर से आज्ञा ग्रहण कर अश्व की रक्षा के लिये प्रस्थान किया और अनिरुद्ध की सहायता के लिये साम्ब भी कृतप्रतिज्ञ होकर साथ गये। भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से श्रीकृष्ण के भाइयों और अनेक पुत्रों ने उनकी रक्षार्थ यादवों की चतुरङ्गिणी सेनाओं सहित उनके पीछे-पीछे प्रस्थान किया।

श्रीगर्गमुनि कहते हैं—यज्ञ में सब ही देवी-देवता आ गये और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक वरदान स्वरूप अनेक प्रकार के रत्नमय आभूषण, वस्त्रालङ्कार अमोघ-शस्त्रास्त्र, विजय प्रदान करने वाले वरदानों सहित अनिरुद्ध तथा अनिरुद्ध की रक्षा में तत्पर रहने वाले साम्ब को प्रदान किये। वेदमन्त्रों का घोष हुआ अनेक प्रकार के गीत, वाद्य सुमधुर ध्वनियों के साथ लावा, पुष्प और मोतियों की वर्षा की गई। अनिरुद्ध तथा साम्ब ने परम पूज्य ऋषि-मुनियों तथा अपने पूज्य परिजनों के चरणों में शीश नवाये और उनसे भी आशीर्वाद स्वरूप अनेक प्रकार के मङ्गल प्रदान करने वाले वस्त्रालङ्कार शस्त्रास्त्र प्राप्त किये। यज्ञ में पधारे हुए ऋषि-

बालक मार डाले । उस पाप की मुक्ति कैसे होगी । जगदीश्वर ! उसके पापों से मैं भी डर गया हूँ । उसके पाप से पिता भी निश्चय ही नरक में जाकर यातनाएँ भोगता है । इसी प्रकार पिता के पाप से पुत्र को भी नरक में गिरना पड़ता है । अतः माधव ! कृपापूर्वक बतलाइये, मैं कंस के उद्धार के लिये क्या अवलम्बन करूँ । जगत्पते ! आज नारदजी ने बात बतलायी है, उसे सुनिये—अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान से महान् से महान् समस्त पापों का भी नाश होकर मनुष्य शुद्ध हो जाता है । उस यज्ञ में मेरा मन लग गया है । यदि आज्ञा दें तो मैं उसका अनुष्ठान करूँ ।

उग्रसेन की यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और पृथ्वी को भार से पीड़ित देखकर विचार करने लगे—"अहो ! मैंने अनेक बार पृथ्वी का भार उतारा है, तथापि वह भार भूमण्डल में अब तक है ही । उसका निवारण अश्वमेध यज्ञ से ही होगा । विदूरथ के वध के अवसर पर मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'अब मैं युद्ध के मैदान में शत्रुओं को अपने हाथ से नहीं मारुँगा । इस कारण स्वयं तो युद्ध के लिये नहीं जाऊँगा, परन्तु अपने पुत्रों तथा अन्य यदुवंशियों को अवश्य युद्ध के लिये भेजूँगा । अश्वमेध तो एक बहाना होगा ।" मन ही मन ऐसा सोचकर भगवान् श्रीकृष्ण सुधर्मा सभा में हँसते हुए उग्रसेन से बोले ।

श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज ! कंस तो मेरे हाथों से मारा गया है, अतः वह तो निश्चय ही वैकुण्ठधाम को गया है और वहां मेरे–जैसा स्वरूप धारण करके नित्य निवास करता है । राजेन्द्र ! प्रतिदिन मेरा दर्शन करने के कारण आप भी पाप रहित हो तथापि आप अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करो । पापनाश या कंस के उद्धार के लिये नहीं, अपने यश के विस्तार के लिये करो । भूपाल इस यज्ञ से भूतल पर आपकी विशाल कीर्ति फलेगी ।

भगवान् श्रीकृष्ण का यह कथन सुनकर उस समय राजा उग्रसेन बड़े प्रसन्न हुए और यह उत्तम वचन बोले ।

राजा उग्रसेन ने कहा—गोविन्द देव ! अब मैं यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध का अनुष्ठान अवश्य करूँगा और वह आपकी कृपा से शीघ्र पूर्ण हो जायेगा । अब आप अश्वमेध यज्ञ का सारा विधि विधान मुझे विस्तार पूर्वक बतलाइये ।

राजा का यह वचन सुनकर विस्तृत यश वाले भगवान् श्रीकृष्ण बोले— 'यदुकुलतिलक महाराज ! अश्वमेध यज्ञ की विधि आप देवर्षि नारदजी से पूछिये । ये सब कुछ जानते हैं । अतः आपके सामने उसका वर्णन करेंगे । श्रीहरि का यह वचन सुनकर यदुराज उग्रसेन आनन्द मग्न हो गये । और सभा में बैठे हुए देवर्षि नारदजी से निवेदन किया कि देवर्षे ! अश्वमेध यज्ञ में घोड़ा कैसा होना चाहिये ? उस यज्ञ में भाग लेने वाले श्रेष्ठ द्विजों की संख्या कितनी होनी चाहिये ? ब्रह्मन् उसमें किस प्रकार की कितनी-कितनी दक्षिणा कब-कब देना चाहिये ? और मुझ यजमान को किस तरह क्या-क्या व्रत नियमादि का पालन करना होगा ?

उग्रसेन की यह बात सुनकर देवताओं के समान दर्शनीय नारदजी श्रीकृष्ण के ऊपर प्रेम पूर्ण दृष्टि डालकर मुस्कराते हुए-से-बोले।

श्रीनारदजी ने कहा - महाराज! विज्ञ पुरुषों का कथन है कि इस यज्ञ में चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण वाले अश्व का प्रयोग होना चाहिये। उसका मुख लाल हो, पूंछ पीले रंग की हो तथा वह देखने में सुन्दर सर्वाङ्ग सुन्दर एवं दिव्य हो। उसके कान श्यामवर्ण के तथा नेत्र सुन्दर होने चाहियें। चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि को वह अश्व स्वच्छन्द विचरने के लिये छोड़ा जाना चाहिये। बड़े-बड़े वीर योद्धा एक वर्ष तक उसके साथ रहकर उस उत्तम अश्व की रक्षा करें। जब तक वह अपने नगर में न लौट आवे, तब तक उसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिये। यजमान उतने काल तक धैर्य से रहे। और प्रयत्न पूर्वक अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये पूर्ण प्रयत्न करे। वह अश्व जहाँ-जहाँ मूत्र और पुरीष करे, वहां-वहां योग्य विद्वान ब्राह्मणों द्वारा हवन कराना तथा एक सहस्र गोओं का दान करना चाहिये। सोने के पत्र पर अपने नाम और बल-पराक्रम का सूचक वाक्य लिखकर उस अश्व के भाल में बांध देना चाहिये तथा जगह-जगह यह घोषणा करानी चाहिये समस्त राजा लोग सुनें, मैंने यह अश्व छोड़ा है। यदि कोई राजा मेरे इस श्यामकर्ण अश्व को अभिमानवश बलपूर्वक पकड़ लेगा, उसे बलात् परास्त किया जायगा। नरेश्वर! इस यज्ञ के आरम्भ में बीस हजार योग्य विद्वान् ब्राह्मणों के वरण करने का विधान है।

अब मैं इस यज्ञ में दी जाने वाली दक्षिणा भी बतलाता हूँ। तुम समर्थ हो, ध्यान से सुनो। अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा इस प्रकार देना चाहिये। प्रत्येक द्विज को एक हजार घोड़े, एक सौ हाथी, दो सौ रथ, एक-एक सहस्र गौ तथा बीस-बीस भार (एक भार एक घोड़ा सुविधा पूर्वक जितना तोल (भार) ले जा सके, इसको एक भार कहते हैं।) सुवर्ण देना चाहिये और उत्तम रेशमी वस्त्रों के जोड़े जो यज्ञ में पहनने योग्य हों, वह भी देना चाहिये। और सभी प्रकार के पात्र (बर्तन) भी देना चाहिये। यज्ञ के पूर्ण होने पर पुनः फिर इसी प्रकार की दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मण को देनी होती है। आप (यजमान) को असिपत्र-व्रत का नियम लेकर ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक रात्रि में अपनी धर्म पत्नी के साथ भूतल पर एक साथ शयन करना चाहिये। और अन्न एवं धन की इच्छा से आये हुए दीन जनों को उनकी इच्छा पूर्ति के लिये अन्न-धन देना होगा। इस विधि से यह यज्ञ पूर्ण होगा। इसके पश्चात् यज्ञ में क्या-क्या सामग्री आवश्यक होती है। कितने यज्ञकुण्ड कितनी पूजा वेदी होंगी। इसके आवश्यक प्रबन्ध के लिये कितने कार्यकर्त्ता और कितने प्रबन्ध करने वाले मनुष्य, वाहन, भण्डार, भोजन, आवास आदि की आवश्यकता होगी, यह सब बातें विस्तृत रूप से बतलायीं और कहा कि यह सब नियम व्रत एक वर्ष तक इसी प्रकार का नियम व्रत का पालन करने वाला ही इस यज्ञ को पूर्ण करता है। इसलिये कृपण (कंजूस) और भीरू हृदय के लोग इस कठिन एवं अद्भुत व्रत

स्त्रियों, विद्याधरियों, किन्नरियों तथा वानरियों के गर्भ से वानर रूप में अपने ही तुल्य पराक्रमी गुणवान पुत्र उत्पन्न करो। 'मैंने तो पहले से ही ऋक्षराज जाम्बवान् की सृष्टि कर रखी है, एक बार मैं जँभाई ले रहा था, उसी समय वह सहसा-ही मेरे मुँह से प्रकट हो गया था।'

पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुङ्गवः।
जृम्भमाणस्य सहसा मम वक्त्रादजायत ।।

(वाल्मीकीय रामायण बाल का. १७।७)

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के कार्यों में सहयोग करने के लिये ही विचित्र प्रकार के गुणवान् बलवान् वानरेश्वरों तथा रीछों की सृष्टि की गयी थी—

गजो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रो
मैन्दः प्रभो ज्योतिमुखो नलश्च।
एते च ऋक्षाः सह वानरेन्द्रै—
स्त्वत्कारणाद् राम सुरैर्हि सृष्टाः ।।

(वाल्मीकीय रामायण उत्तर का. ३६।५०)

'गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, मैन्द, प्रभ, ज्योतिमुख, और नल—इन सब वानरेश्वरों तथा रीछों की सृष्टि देवताओं ने श्रीराम के सहयोग के लिये ही की है।'

ऋक्षराज जाम्बवान् (ब्रह्माजी के अवतार) के बल, बुद्धि, पराक्रम, दूरदर्शिता का वर्णन वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और श्रीभद्-भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ५६,५७ में प्राप्त है।

ऋक्षराज जाम्बवान् (ब्रह्माजी के स्वरूप) को नमस्कार है।

* *

भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ब्रह्माजी के अवतार

सोपान ८

भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा निर्माण करायी हुई द्वारकापुरी में राजा उग्रसेन राज्य करते थे। बलराम और श्रीकृष्ण सहित यदुकुल वंशी क्षत्रियों से उस राज्य की रक्षा हो रही थी। द्वारकापुरी सभी प्रकार के धन, धान्य, वैभवों से देवराज इन्द्र की अमरावती पुरी के समान सम्पन्न थी।

एक समय राजा उग्रसेन अपनी सुधर्मा-सभा में देवराज इन्द्र के दिये हुए सिंहासन पर विराजमान थे। उस समय देवर्षि नारद बलराम और श्रीकृष्ण से मिलने के लिए अपनी वीणा बजाते और श्रीकृष्ण लीलाओं का गान करते हुए

ब्रह्मलोक से चलकर इस भूतल पर आये। वे सूर्य के समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उनके साथ तुम्बरु भी थे। पिङ्गलवर्ण की जटाओं का भार मस्तक की शोभा बढ़ा रहा था। उनकी अङ्गकान्ति कुछ-कुछ श्याम थी, नेत्र मृगों के नयनों के समान विशाल थे। भाल देश केसर के तिलक से शोभा पा रहा था। वे पीले रंग के धौत-वस्त्र और रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। रंगवल्ली की माला और गोपी-चन्दन से मण्डित देवर्षि पन्द्रह बर्ष की सी अवस्था में अत्यन्त सुन्दर सुशोभित हो रहे थे। देवर्षि को आया देखकर राजा उग्रसेन सिंहासन से उठकर खड़े हो गये और उनके चरणों में प्रणाम करके उन्हें बैठने के लिए सिंहासन दिया। उनके चरण पखार कर उत्तम विधि से उनका पूजन किया और उनका चरणोदक मस्तक पर धारण कर राजा उग्रसेन नारदजी से बोले।

श्री उग्रसेन ने कहा—देवर्षे ! आपके दर्शन से आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा सदन सार्थक हो गया और मेरा तन-मन एवं जीवन कृतार्थ हो गया। प्रभो ! आज्ञा कीजिये, आपकी क्या सेवा करूँ ? देवर्षि नारद राजा का यह विनय युक्त वचन सुनकर मन ही मन श्री हरि से प्रेरित उन नृप श्रेष्ठ से बोले।

नारदजी ने कहा—यादवराज ! तुम धन्य हो, तुम्हारे भक्तिभाव के कारण ही भगवान् श्रीकृष्ण बलराम के साथ इस भूतल पर निवास कर रहे हो। तुमने पूर्वकाल में मेरे हा कहने से ऋतु श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जो भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से द्वारकापुरी में सुखपूर्वक सम्पादित हुआ था। उस यज्ञ से तीनों लोकों में तुम्हारी कीर्ति फल गयी थी। राजसूय तथा अश्वमेध इन दो यज्ञों का सम्पादन चक्रवर्ती नरेशों के लिये भी अत्यन्त कठिन होता है; परन्तु राजेन्द्र ! तुम हरिभक्त सम्राट् हो, अत: तुम्हारे लिये ये दोनों ही सुलभ हैं। नरेश्वर ! दोनों यज्ञों में से एक राजसूय यज्ञ को तो तुमने और राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से पूर्ण कर लिया है। युधिष्ठिर के पश्चात् द्वापर के अन्त में यज्ञप्रवर अश्व-मेध का अनुष्ठान भारतवर्ष में दूसरे किसी राजा ने नहीं किया है। यह यज्ञ समस्त पापों का नाश करने वाला तथा मोक्षदायक है। द्विजघाती, विश्वहन्ता तथा गोहत्यारे भी अश्वमेध यज्ञ से शुद्ध हो जाते हैं, इसलिये सम्पूर्ण यज्ञों में अश्वमेध को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। नृपश्रेष्ठ ! जो निष्काम भाव से अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करता है, वह भगवान् गरुड़ध्वज के उस परमधाम में जाता है, जो सिद्धों के लिये भी दुर्लभ है।

देवर्षि नारदजी का यह वचन सुनकर राजा उग्रसेन ने यज्ञप्रवर अश्वमेध के अनुष्ठान का विचार किया। उसी समय बलराम सहित श्रीकृष्ण को अपने निकट आया देखकर राजा उग्रसेन ने उन्हें आसन पर बैठाया और उनका पूजन करके देवर्षि के साथ इस प्रकार कहा।

उग्रसेन बोले– देवदेव ! जगन्नाथ ! जगदीश्वर ! मेरी बात सुनिये। हरे ! मेरे बेटे कंस ने बड़े-बड़े असुरों के साथ मिलकर बिना अपराध ही हज़ारों

मुनि, पराशर व्यास, देवल, च्यवन, असित, शतानन्द, गालव, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, अगस्त्य, वामदेव, मैत्रेय, लोमश, कवि (शुक्राचार्य), मैं गर्ग, ऋतु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सुमन्तु, कण्व, भृगु, परशुराम, अकृतव्रण, मधुच्छन्दा, वीतिहोत्र, कवष, धौम्य, आसुरि, जाबालि, वीरसेन, पुलस्त्य, पुलह, दुर्वासा, मरीचि, एकत, द्वित, त्रित, अङ्गिरा, नारद, पर्वत, कपिलमुनि, जातुकर्ण्य, उतथ्य, संवर्त, ऋष्यश्रृङ्ग, शाण्डिल्य, प्राड्विपाक, कहोड़, सुरत, मुनु, कच, स्थूलशिरा, स्थूलाक्ष, प्रतिमर्दन, बक दाल्भ्य, कौण्डिन्य, रैभ्य, द्रोण, कृष, प्रकटाक्ष, यवक्रीत, वसुधन्वा, मित्रभू. अपान्तरतमा, दत्तात्रेय, महामुनि मार्कण्डेय, जमदग्नि, कश्यप, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, मुनिवसिष्ठ, विश्वामित्र, पतञ्जलि, कात्यायन, पाणिनि, और वाल्मीकि आदि ऋत्विजों ने अपने साथ आये हुए शिष्यों सहित वेदमन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित पुष्पाक्षत वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए आशीर्वाद स्वरूप प्रदान किये ।

यज्ञ के मन्त्रों द्वारा पूजित अनेक वस्त्रालंकारों से सुसज्जित अश्व को आगे करके अनिरुद्ध अपनी चतुरङ्गिणी सेना सहित उत्तम मधुर वाद्यध्वनियों से द्वारकापुरी से बाहर निकले, तब उनके साथ ही राजा उग्रसेन की आज्ञा से वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न तथा अन्य बहुतसे बड़े-बड़े यादव अपने-अपने रथों पर चढ़कर द्वारका से बाहर निकले और अनिरुद्ध तथा उनकी सेना आदि का निरीक्षण किया और भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले राजसूय यज्ञ के अवसर पर प्रद्युम्न को जिस नीति का उपदेश दिया था, वही नीति उस समय अनिरुद्ध से कह सुनायी ।

भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश को अनिरुद्ध आदि सब ही यादवों ने प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य किया तत्पश्चात् मुनिवर गर्ग, अन्यान्य मुनिवृन्द और वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न को अनिरुद्ध ने प्रणाम किया और वे आशीर्वाद प्रदान कर, रथों पर चढ़कर वापस द्वारकापुरी को लौट आये ।

यज्ञ का अश्व अपनी स्वेच्छा से जिस ओर जाता था, अनिरुद्ध अपनी सेनाओं सहित उसके पीछे-पीछे जाते थे । अनेक पृथ्वीपति राजाओं के राज्य में जाने पर अनेक राजाओं ने अनिरुद्ध को बहुमूल्य भेंट सत्कार दिये । यदि किसी ने अपने राज्य के घमण्ड या प्रमादवश अश्व पकड़ा तो तुरन्त ही अनिरुद्ध अपनी सेना द्वारा परास्त कर देते थे और उससे भेंट ग्रहण करते थे । यदि वह राजा युद्ध भूमि में मारा जाता था तो उसके राज्य पर उसी के पुत्र को अभिषिक्त करके, उससे भेंट लेकर आगे प्रस्थान कर देते थे ।

इसी प्रकार से चलते-चलते वह अश्व चम्पावतीपुरी में पहुँच गया । वहाँ का राजा हेमाङ्गद उस दुर्ग मण्डित विशालपुरी का अधिपति था । उसको अपने राज्य और धन का घमण्ड था । उसने घोड़े को पकड़ लिया और अपनी पुरी में लेजाकर बाँध लिया और अपना दुर्ग जिसके बड़े बड़े दृढ़ चार दरवाजे थे, उसके पट बन्द करा दिये और स्वयं उसके दरवाजों पर अपनी सेना सहित रक्षा पर तत्पर हो गया ।

अनिरुद्ध ने अपनी सेना द्वारा चढ़ाई की। बड़ा घनघोर युद्ध हुआ, उसका दुर्ग टूट गया उसकी सेना मारी गयी। अनिरुद्ध ने विजय प्राप्त कर घोड़ा छुड़ा लिया। तब चम्पावतीपुरी का राजा हेमाङ्गद परास्त हो गया और अनेक प्रकार के रत्न, सुवर्ण लेकर अनिरुद्ध के सामने उपस्थित हो गया। अनिरुद्ध ने उसको अभय प्रदान किया। अनिरुद्ध ने उस राजा हेमाङ्गद से कहा कि तुम अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप दो और 'नृपश्रेष्ठ ! मेरे साथ चलकर श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये शत्रु-राजाओं से इस घोड़े की रक्षा करो।'

अनिरुद्ध की बात सुनकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजा हेमाङ्गद अपने पुत्र को राज्य देकर प्रसन्नतापूर्वक अनिरुद्ध के साथ चल पड़ा।

श्री गर्गजी कहते हैं—तदनन्तर वहाँ से छूटने पर परम उज्ज्वल अङ्गोंवाला अनिरुद्ध का अश्व यदुकुल के प्रमुख वीरों के साथ उशीनर - जनपद के बड़े-बड़े वीरों को देखता हुआ धीरे-धीरे बाहर निकला। इस प्रकार विचरता हुआ वह श्रेष्ठ अश्व प्रत्येक राजाओं के राज्य में गया और बहुत-से नरेशों ने उसको पकड़ा तथा छोड़ा। राजा इन्द्रनील और हेमाङ्गद जैसे बलशाली राजाओं को पराजित हुआ सुनकर अन्य मण्डलेश्वर नरेश अपने यहाँ आने पर भी उस घोड़े को पकड़ने का साहस नहीं करते थे।

बहुत-से वीरविहीन देशों का अवलोकन करके वह श्रेष्ठ अश्व स्वेच्छा से घूमता हुआ स्त्रीराज्य में जा पहुँचा। वहाँ कोई 'सुरूपा' नामवाली सुन्दरी राजकन्या राज्य करती थी। कहते हैं, वहाँ कोई पुरुष राजा जीवित नहीं रहता। उस देश में किसी स्त्री को पाकर जो काम भाव से उसका सेवन करता है, वह एक वर्ष के बाद कदापि जीवित नहीं रहता।

स्त्रीराज्य के नगर में फूलों से भरा हुआ एक सुन्दर उद्यान था, वहाँ लवङ्ग-लताएँ फैली हुई थीं और भीनी-भीनी इलायची की सुगन्ध फैल रही थी। पक्षियों और भ्रमरों की मीठी-मीठी बोलियाँ गूँज रही थीं। उस नगर में पहुँच कर घोड़ा उस उद्यान में एक इमली के वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो गया। वहाँ की स्त्रियों ने देखा, बड़ा मनोहर तथा सुसज्जित श्यामकर्ण घोड़ा खड़ा है। वहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी उसे देखने के लिये गये। उस घोड़े को देखकर स्त्रियों ने अपनी स्वामिनी से उसकी चर्चा की। वह चर्चा सुनकर वहाँ की राजारानी छत्र और चँवर से शोभित हो, रथपर चढ़ कर और हजारों स्त्रियों के साथ उस घोड़े को देखने के लिये गयीं। घोड़े को देखकर और उसके भाल में बंधे हुए पत्र को पढ़कर रानी को बड़ा रोष आया। उन्होंने घोड़े को पकड़ कर बाँध लिया और उसके प्रतिपालकों के साथ युद्ध करने का निश्चय कर लिया। उस राज्यरानी की आज्ञा से अनेक स्त्रियाँ हाथियों पर, अनेक रथों पर और अनेक ही घोड़ों पर आरूढ़ होकर कवच पहने, अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न होकर युद्ध के लिये तैयार होकर आयीं। वे सब स्त्रियां कुपित होकर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगीं। उन्हें देखकर अनिरुद्ध ने हेमाङ्गद से पूछा।

अनिरुद्ध बोले—यह ये कौन-सी स्त्रियाँ हैं ? इन्होंने घोड़े को कैसे पकड़ लिया है ? ये युद्ध के लिये कैसे तैयार होकर आयी हैं ? स्त्रियों के साथ युद्ध कैसे किया जायगा ? इनसे घोड़ा किस प्रकार छुड़ाया जा सकेगा ? आपको यदि इसके विषय में कुछ ज्ञात हो तो सविस्तार सब बातें आप बतलायें ?

हेमाङ्गद ने कहा—नृपेश्वर ! इस देश में रानी ही राज्य करती है क्योंकि राजा यहाँ जीवित नहीं रहता है। इन्होंने ही घोड़े को पकड़वा लिया है और यह युद्ध के लिये तैयार होकर बाणों की वर्षा करती हुई आ गयी हैं।

इस विषय का एक प्राचीन इतिहास है, जो मैंने चम्पापुरी में पहले गुरुवर याज्ञवल्क्यजी के मुख से सुना था। वह मैं आप से कहता हूँ, आप ध्यान से सुनें। राजन् ! प्राचीन समय में सतयुग की बात है, इस देश में 'नारीपाल' नाम से विख्यात एक मण्डलेश्वर राजा हुए थे। उसके मोहिनी नाम वाली एक पत्नी थी, जिसका जन्म सिंहलद्वीप में हुआ था। वह पद्मिनी नायिका थी। उसकी चाल हंस के समान थी और मुख चन्द्रमा के समान मनोहर था। राजा उसके सौन्दर्य के महासागर में डूबकर यह भी नहीं जान पाते थे कि कब दिन बीता और कब रात समाप्त हो गयी? वे सैकड़ों वर्षों उसके साथ रमण करते रहे। काम से मोहित होने के कारण वे प्रजाजनों का न्याय भी नहीं करते थे। राजन् ! उस समय सारी प्रजा दुःख से पीड़ित हो रही थी। यादवेश्वर ! प्रजाजनों का पारस्परिक कलह से विनाश होता देखकर राजवल्लभा मोहिनी अपनी शक्ति के अनुसार सारी प्रजा का न्याय कार्य स्वयं ही सम्भालने लगीं। एक दिन उस नरेश से मिलने के लिए महामुनि अष्टावक्र उनके अन्तःपुर में आये। राजा का मन स्त्री में आसक्त रहता था। वे मुनि को आया देखकर जोर-जोर से हंसने लगे और बोले—'यह कुरूप यहाँ कैसे आ गया ?'

तब मुनि रुष्ट होकर बोले—'अरे ! ओ मूर्ख नपुंसक ! मेरी बात सुन ले, तू स्त्रियों के हाथ का खिलौना होकर मुनियों का अपमान क्यों कर रहा है ? तुम्हारे इस देश में स्त्रियाँ ही राज्य करेंगी। इस राज्य में पुरुष-राजा जीवित ही नहीं रहेगा। अतः तू अभी इस राज्य भवन से निकला जा। इस देश में स्त्री को पाकर जो प्रतिदिन उसका सेवन करेगा वह एक वर्ष बीतने पर निस्संदेह जीवित नहीं रहेगा।'

राजन् ! ऐसा कहकर मुनि श्रेष्ठ अष्टावक्र अपने आश्रम को चले गये। मुनि के चले जाने पर राजा उनके शाप से नपुंसक हो गये। यह सब दुर्दशा मुनि ने की है—ऐसा जानकर राजा अत्यन्त दीन एवं दुःख से व्याकुल स्वयं अपनी निन्दा करने लगे। अहो ! स्त्री के वशीभूत होकर मुझ मन्दभाग्य ने यह क्या किया ?, मुनियों की पूजा छोड़कर नरक का रास्ता पकड़ लिया। अब मैं वैतरणी में गिराये जाने योग्य हो गया। इस दशा से मुझे कौन अपने तेज से छुड़ायेगा। ऐसा उद्गार प्रकट करके राजा घर छोड़कर वन-वन में विचरने लगा। वह मुक्तिदाता भगवान् विष्णु के भजन में लग गया और अन्त में उसने श्रीहरि का पद प्राप्त कर लिया। उस शाप के भय से राजा लोग इस देश में राज्य नहीं करते, केवल नारियाँ ही

यहाँ शासन करती हैं ।

अनिरुद्ध और हेमाङ्गद इस प्रकार बातें कर ही रहे थे, तब ही रोष में भरी हुई वहां की वे पुंश्चली नारियां इनके पास आ गयीं और क्रोधपूर्वक अपने धनुषों से बाणों की वर्षा करने लगीं। उन स्त्रियों को देखकर अनिरुद्ध विस्मित हो गये और 'मैं स्त्रियों के साथ युद्ध कैसे करूँगा'—यह विचार करते हुए वे भयभीत-से हो गये। उसी समय वह मण्डलेश्वरी सुरूपा स्त्रियों के साथ उनके निकट आ गई और अनिरुद्ध को देखकर बोली।

रानी ने कहा—वीर ! रणभूमि में खड़े हो जाओ, खड़े हो जाओ। मेरे साथ युद्ध करो। तुम तो बहुत बड़ी सेना को साथ लिये हुए आये हो। फिर युद्धस्थल में व्यर्थ सोच में क्यों पड़ गये हो ? तुम बड़े मानी हो। मैं इस समराङ्गण में वृष्णिवंशी योद्धाओं सहित तुमको पराजित करके अपना क्रीड़ामृग बनाऊँगी, क्यों कि तुम्हें देखकर मैं मदन-ज्वर से पीड़ित हो गई हूँ।

उसकी ये बातें सुनकर अनिरुद्ध भय से विह्वल हो गये। वे सब कुछ जान गये और दीनवाणी में उस मण्डलेश्वरी से बोले—'रानी ! तुम सर्वदेवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अश्व को यज्ञ के लिए अपनी ही इच्छा से मुझे लौटा दो। सुमुखी ! मैं तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करूँगा, अतः तुम श्रीहरि के दर्शन के लिए द्वारकापुरी को जाओ। भद्रे ! जिनके नाम का स्मरण करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, साक्षात् उनके दर्शन का कैसा महान् फल है ? यह तुम्हें क्या बतलाऊँ ?' वार्तालाप में चतुर अनिरुद्ध के इस प्रकार समझाने पर उसे भी पूर्वजन्म की वार्ता का स्मरण हो आया और वह अनिरुद्ध से उसी प्रकार बोली—जैसे ब्रह्माजी से मोहिनी बोली थी।

सुरूपा ने कहा—देव ! मैं पूर्वजन्म में स्वर्ग की एक प्रसिद्ध अप्सरा थी। मेरा नाम 'मोहिनी' था। मेरे अङ्ग कमल के समान प्रफुल्ल एवं सुगन्धित थे। मेरे नेत्र भी कमलदल के समान विकसित एवं विशाल थे। एक दिन की बात है—पद्मयोनि श्री ब्रह्माजी हंस पर आरूढ़ हो कहीं जा रहे थे। उन्हें देखकर मैं उनके निकट गई और बोली—'आप मुझे अङ्गीकार करें।' जब ब्रह्माजी ने मुझे ग्रहण नहीं किया, तब मैं उनको शाप देकर 'ककुद्मती' नदी के तट पर गई और वहां दुष्कर तपस्या करने लगी। मेरी तपस्या से ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये। वे तपस्या के अन्त में मेरे पास आये और प्रसन्नचित्त हो मुझ तपस्विनी से बोले—'वर मांगो।' उनका यह कथन सुनकर मैं (मोहिनी) बोली—देवदेव ! आपको नमस्कार है। लोकेश ! मैं यही वर मांगती हूँ कि आप मुझ दीन तपस्विनी का वरण करें। मैं दुःखित होकर आपकी शरण में आई हूँ। यदि आप मुझे ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं तपस्या से क्षीण हुए, इस शरीर को रोषपूर्वक त्याग दूँगी।' मेरी यह बात सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—

"भामिनी ! शोक न करो। भद्रे ! दूसरे जन्म में तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। मैं द्वारकापुरी में श्रीहरि (श्रीकृष्ण) का सुन्दर पौत्र होऊँगा। उस समय

मेरा नाम 'अनिरुद्ध' होगा और तुम स्त्रीराज्य की रानी होओगी। भद्रे! उस समय मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा। मेरी यह बात झूठी नहीं है।" यह सुनकर मैं इस भूतल पर उत्पन्न हुई। यादव-श्रेष्ठ! आप साक्षात् ब्रह्माजी हैं और मेरे लिये ही आप यहाँ पधारे हैं।

श्री गर्गजी का कथन है—सुरूपा का यह कहना सुनकर समस्त यादव लोग आश्चर्यचकित हो गये। तब धर्मात्मा 'अनिरुद्ध' ने उससे यह निर्मल वचन कहा।

अनिरुद्ध बोले—भद्रे! तुम अब श्री द्वारकापुरी को जाओ। मैं वहां अपनी प्रिया के रूप में तुम्हें ग्रहण करूँगा। इस समय तो मैं राजाओं से अश्व की रक्षा करते हुए उसी के साथ जाऊँगा।

तदनन्तर 'सुरूपा' अनिरुद्ध की आज्ञा से अपनी श्रेष्ठ मन्त्रिणी 'प्रमिला' को राज्य पर स्थापित करके, अश्व (घोड़ा) को लौटा कर स्वयं द्वारकापुरी को चली गयीं।

(गर्ग-संहिता, अश्वमेध खण्ड, अध्या. ७ से १७ के आधार से)

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय नमः संकर्षणाय च।
नमः प्रद्युम्नदेवायानिरुद्धाय नमो नमः॥

* *

श्रीमध्वाचार्य ब्रह्माजी के अवतार

सोपान ९

प्राचीन 'सात्वतधर्म' का ही नाम वैष्णव धर्म है। इसके भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चरात्र, वैखानस, कर्महीन आदि अनेक भेद प्राचीन शास्त्रों में पाये जाते हैं। वैष्णव धर्म का मूल 'वेद' है।

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥'

(शुक्ल यजुर्वेद ६।५)

विष्णु के इस परम पद का संधान ही 'वैष्णवधर्म' है। वैष्णवों ने प्रधान रूप में चार महान् सद्गुरुओं की परम्परा स्वीकार की है—श्री, ब्रह्मा, रुद्र और सनकादि। इन्हीं के नामों पर सम्प्रदाय चले। सम्प्रदाय का अर्थ है—

शिष्टानुशिष्टोपदिष्टो मन्त्र सम्प्रदायः।

"पूर्व आचार्य के समीप प्राप्त मन्त्र और साधना का नाम ही 'सम्प्रदाय' है।" वैष्णव-सम्प्रदाय तो प्राणी मात्र में भगवान् के स्वरूप को देखकर अत्यन्त विनम्र भाव से सबको नमस्कार, सबकी सेवा तथा सबका हित साधन करने में

तत्पर रहता है। उपर्युक्त चार गुरु परम्पराओं से बने हुए चार सम्प्रदाय प्रधान माने जाते हैं—

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रोनिम्बादित्यं चतुस्सनः।।

श्रीलक्ष्मीजी की कृपा से रामानुज, ब्रह्मा की अनुकम्पा से मध्वाचार्य, रुद्र के अनुग्रह से विष्णु स्वामी और सनकादि मुनियों के प्रसाद से निम्बार्काचार्य साधना का सन्मार्ग दिखलाते हुए आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। इसी प्रकार से गर्गसंहिता अश्वमेध खण्ड अध्याय ६१ में राजा वज्रनाभ के प्रश्न करने पर गर्गमुनि का कथन है—

राजा युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, राजा नागार्जुन तथा भगवान् कल्कि—ये सम्वत्सर के प्रवर्तक होगें। ये ही भूपाल पद पर प्रतिष्ठित हो कलि में धर्म की स्थापना करेंगे। राजा युधिष्ठिर तो हो चुके है। शेष राजा भविष्य काल में यथा समय होंगे। वे चक्रवर्ती होकर अधर्म का नाश करेंगे। वामन, ब्रह्मा, शेषनाग और सनकादि—ये भगवान् विष्णु के आदेश से धर्म की स्थापना एवं रक्षा के लिये कलियुग में ब्राह्मण होंगे। वामन के अंश से विष्णु स्वामी और ब्रह्माजी के अंश से मध्वाचार्य होंगे। शेषनाग का अंश रामानुजाचार्य के रूप में प्रकट होगा तथा सनकादि का अंश निम्बार्काचार्य के रूप में। ये कलियुग में सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य होंगे। ये चारों विक्रम सम्वत्सर के प्रारम्भिक काल में ही होंगे। और इस पृथ्वी को अपने सम्पर्क से पवित्र करेंगे।

श्रीमध्वाचार्य का सिद्धान्त

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
मुक्तिर्नैज सुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः।।

श्रीमध्वाचार्य के सिद्धान्त में उपर्युक्त अमूल्य रत्नरूप नौ प्रमेय हैं।—
(१) श्रीहरि सर्वश्रेष्ठ हैं,— (२) जगत् सत्य है, – (३) जड़जीव और ईश्वर में तात्त्विक भेद हैं। — (४) जीवगण श्रीहरि के अनुचर हैं, (५) जीवों के अधिकार योग्यता में नीचा-ऊँचा भाव स्वाभाविक है, — (६) जीव की निज-स्वरूपभूत आनन्द की अनुभूति ही मुक्ति है, — (७) निर्मल-निष्काम भक्ति मुक्ति का साधन है, — (८) प्रत्यक्ष, युक्ति और शास्त्र ये तीन प्रमाण हैं, — (९) समस्त वेदों के मुख्य प्रतिपाद्य एक मात्र श्रीहरि हैं।

आजकल वर्तमान युग में अनेक विद्वान् विश्वविद्यालयों से पी-एच. डी अलंकार (प्रमाणपत्र) प्राप्ति हेतु अनेक धार्मिक प्राचीन विषयों को चुनकर उन पर शोध-ग्रन्थ लिखते हैं। इसी प्रकार से एक विद्वान् डॉ. एम. जार्ज ने 'भक्ति आन्दोलन और इतिहास' नामक शोध प्रवन्ध (ग्रन्थ) लिखा है। प्रकाशक है—

प्रगति प्रकाशन, आगरा (उत्तर प्रदेश), प्रकाशन सन् १९७८ है। इस ग्रन्थ में श्री-मध्वाचार्य के सम्प्रदाय के विषय में कतिपय ग्रन्थों के संदर्भ आधारों को दर्शाते हुए प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ के पृष्ठ २३१ से २३२ पर लिखा है—

दक्षिण भारत के भक्त आचार्यों में श्रीमाध्वाचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है। ये ऐतिहासिक दृष्टि से १३ वीं शती में हुए हैं। व्यवहार पक्ष में भक्ति का समर्थन करने वाले मध्वाचार्य आध्यात्मिक दृष्टि में द्वैतवादी थे। उनका प्रभाव आज भी दक्षिणभारत में अधिक पाया जाता है। भक्ति के प्रचार-प्रसार में बंगाल प्रान्त को भी परोक्षरूप से इन्होंने प्रभावित किया था।

(भागवत सम्प्रदाय, २०१० विक्रमा पृष्ठ ३१४, लेखक देवीप्रसाद मु. से)

उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्य शंकर और रामानुज के मतों से कतिपय भिन्न सिद्धान्तों का भी प्रचार किया है।

(अलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और कृष्ण काव्य, १९६४, पृष्ठ ७०,
लेखक डॉ. मोहम्मद मलिक)

आचार्य सुधारवादी थे। उन्होंने यज्ञ के नाम पर होने वाली पशु हिंसा का अपने मत में विरोध किया। यद्यपि वे समन्वयवादी थे तो भी श्रीविष्णु को महा-भाग्यशाली सर्वोपरि देवता घोषित करते हुए उनके प्रति अपना व्यक्तिगत मत दर्शाया है।

(मध्यकालीन साहित्य में अवतार वाद, २०२० विक्रम, पृष्ठ ५७९ लेखक-
पाण्डेय डॉ. कपिल)

पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति ही उन्होंने भी धार्मिक यात्राएँ करके अपने भक्ति दर्शन का प्रचार-प्रसार किया। योग सिद्धियों तथा चमत्कारों के द्वारा प्रत्येक स्थान के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की विशेष क्षमता उनको उपलब्ध थी। अतः धर्मयात्राओं के अनेक स्थानों से उनके जीवन की कहानियाँ सम्बन्धित हो गई हैं। मध्वाचार्य ने भक्ति के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में से 'गीताभाष्य' 'विष्णु-तत्त्व-निर्णय' 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' 'उपनिषद्-भाष्य', 'सदाचारस्मृति' आदि मुख्य हैं। सृष्टि, स्थिति, संहार, नियम, आवरण, बोधन, बन्धन, तथा मोक्ष इन आठों कामों पर भगवान् विष्णु का ही अधिकार घोषित किया।

(हिन्दी और कन्नड़ भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन, १९६१,
पृष्ठ ३० डॉ. हिरण्मय)

अवतारवाद को ग्रहण करके उसके आधार पर उन्होंने परमात्मा रूपी हरि के नाना रूपों की व्याख्या प्रस्तुत की। मत्स्य, कूर्मादि स्वरूपों से कर चरणादि अवयवों से ज्ञानानन्दादि गुणों से भगवान् अत्यन्त अभिन्न हैं। अतएव भगवान् तथा उनके अवतारों में भेद बुद्धि रखना नितान्त अनुचित है।

(भारतीय दर्शन, पृष्ठ ४६१, लेखक—श्री बलदेव उपाध्याय)

लक्ष्मी को मायारूपिणी शक्ति मानकर परमात्मा के अधीन एवं भिन्न माना है। जीवों के ऊपर उन्ही के द्वारा नियन्त्रण होने की जो कल्पना मध्वाचार्य ने प्रस्तुत की वह परमात्मा के मानवीकरण तथा परमात्म-तत्त्व की व्याख्या का सुन्दर एवं सरलातिसरल मार्ग नियत किया। जगत् को सत्य एवं हरि का किंकर मानकर मध्वाचार्य ने जीवों का वर्गीकरण किया। यह वर्गीकरण साधना पथ के अनुगामियों को उत्तरोत्तर प्रगति प्राप्त कराने का सन्देश है। मध्वाचार्य ने उपासना का भी वर्गीकरण किया है, शास्त्राभ्यास पर आधारित तथा ध्यान परक शास्त्राभ्यास से अज्ञान दूर हो जाता है। भक्ति की प्राप्ति में यह आवश्यक है। भगवान् की कृपा भी भक्ति के लिये अपेक्षित है। ध्यानपरक उपासना अखण्ड स्मृति में लीन रहने की प्रेरणा देती है। भक्ति को मुक्ति का सर्वोच्च साधन बतलाकर सर्व साधारण के लिये उपासनापथ खोलकर भक्ति प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उन्होंने पञ्चरात्रों की अपेक्षा भागवतपुराण के भक्ति सिद्धान्तों का अनुसरण किया। मध्वाचार्य की विचारधारा और आलवारों की विचारधारा में पर्याप्त साम्य दिखायी देता है। आलवारों की भक्ति की अपेक्षा भागवतपुराण में प्रतिपादित भक्तिमार्ग को ही मध्वाचार्य ने मान्यता दी है। आचार्य के ग्रन्थों में प्रतिपादित दार्शनिक विचार इसके प्रमाण हैं।

(आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य, १९६४, पृष्ठ ७२, लेखक डॉ. मोहम्मद मलिक)

सदागमकविज्ञेयं समतीतक्षराक्षरम्।
नारायणं सदा वन्दे निर्दोषाशेषसद्गुणम्॥
(श्रीमन्मध्वाचार्य)

'श्री नारायण आगम द्वारा ज्ञेय हैं। क्षर-अक्षर से अतीत हैं। निर्दोष हैं। समस्त गुणों से परिपूर्ण हैं। मैं इनकी नित्य वन्दना करता हूँ।'

(इस सोपान के लिखने में जिन पुस्तकों एवं लेखकों के नाम लिखे गये हैं, उनके अतिरिक्त कल्याण के विष्णु अंक में प्रकाशित कल्याल सम्पादक स्व. श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार के लेख के कतिपय अंश तथा कल्याण के उपासनांक में प्रकाशित श्री मध्वाचार्य सिद्धान्तों को भी सम्मिलित किया गया है। सब के प्रति आभार ज्ञापित है।)

॥ श्रीः ॥

अनन्त श्री विभूषित आदि मध्वाचार्य महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

संसार मिथ्या है—इस विश्वास और विदेशी शासकों की गुलामी के कारण भारत अकर्मन्यता के गर्त में डूब गया था। संसार सत्य है—यह भावना जनमानस से लुप्त हो चुकी थी। ऐसे काल में श्रीमध्वाचार्य देश के धार्मिक और दार्शनिक

क्षेत्र में प्रकट हुए ।

उन्होंने यही शिक्षा दी कि संसार को मिथ्या मत मानो, सत्य मानो । सत्य के दो रूप उन्होंने बताये—स्वतंत्र तथा परतंत्र । उन्होंने कहा कि स्वतन्त्र सत्य तो केवल ईश्वर हैं । शेष सब परतंत्र सत्य है। इसलिये उनके मत को द्वैत कहा जाता है । मध्वाचार्य ने भक्ति को अंधविश्वास की जकड़ से निकाला और ज्ञान तथा भगवान् के प्रति प्रेम का आधार दिया । भावुकता और शृंगार आदि जो दूसरी बुराइयाँ भक्ति के साथ जुड़ गयी थीं, उन्हें भी उन्होंने दूर किया ।

मध्वाचार्य का जन्म सन् १२३८ में दशहरे के दिन हुआ था । और उन्होंने ७९ वर्ष की आयु पायी । संस्कृत पद्य एवं गद्य में उन्होंने अनेक रचनाएँ कीं । उनकी ३९ रचनाएँ हैं जिन्हें 'सर्वमूल' कहते हैं । ऋग्वेद, उपनिषदों, गीता, ब्रह्मसूत्रों, महाभारत तथा भागवत पर उनकी टीकाएं एवं तर्कशास्त्र, तत्त्वज्ञान, कर्मकांड, सदाचार आदि पर उनकी टिप्पणियाँ तथा भजन इन रचनाओं में शामिल हैं ।

उन्होंने दो बार गोवा की यात्रा की और अगणित लोगों को अपना अनुयायी बनाया । बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय ने बहुत-सी बातें मध्वाचार्य के विचारों से ग्रहण की हैं । चैतन्य सम्प्रदाय अपनी गुरुपरम्परा को मध्वाचार्य और उनके उत्तराधिकारी जयतीर्थ और व्यासतीर्थ नामक शिष्यों से संबद्ध मानते हैं ।

मध्वाचार्य के अनुयायी कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, आंध्र, महाराष्ट्र, गोवा और उत्तर प्रदेश में अधिक हैं ।

मध्वाचार्य की रचनाओं और उन पर जयतीर्थ, व्यासतीर्थ रघुत्तम, वादिराज तथा राघवेन्द्र आदि की टिप्पणियों ने भारतीय दर्शन को महत्वपूर्ण योगदान दिया । कर्नाटक में मध्वाचार्य के मतावलम्बियों का हरिदास नामक सम्प्रदाय है । इस सम्प्रदाय के पुरंदरदास, कनकदास एवं जगन्नाथदास ने दर्शनशास्त्र और कर्नाटक के धार्मिक साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया ।

(साभार वमर चित्रकथा संख्या १५३; प्रकाशक बुक हाउस एज्यूकेशन ट्रष्ट बम्बई-४०००३९ से उद्धृत)

* *

तपस्या द्वारा भगवान् ब्रह्माजी का प्रसन्न होकर वरदान प्रदान करना

सोपान १०

भगवान् ब्रह्माजी की उपासना पूजा क्रिया योग व्रत आदि की कोई विधि विधान पञ्चदेवोपासनाओं की भांति सभी ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होते हैं। किन्तु

तपस्या करने पर ब्रह्माजी का प्रसन्न होकर उनको वरदान प्रदान करने की अनेक कथाएँ नरसिंह-पुराण, श्रीमद्भागवत, शिवपुराण, विष्णुपुराण, वाल्मीकि रामायण, गर्ग संहिता आदि ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। उनमें से कतिपय कथाएँ पाठकों को जानकारी कराने हेतु अलग-अलग आगे प्रस्तुत की जा रही हैं।

* *

ब्रह्माजी का हिरण्यकशिपु को वरदान

सोपान ११

पूर्वकाल में दिति का पुत्र हिरण्यकशिपु महान् प्रतापी हुआ। उसने अनेक सहस्र वर्षों तक निराहार रहते हुए तपस्या की। उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्माजी ने उस दानव से कहा—दैत्येन्द्र! तुम्हारे मन को जो प्रिय लगे, वही वर मांगलो।' दैत्य हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर उन देवेश्वर को विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा—

हिरण्यकशिपु बोला—ब्रह्मन्! भगवन्! यदि आप मुझे वर देने को उद्यत हैं तो मैं जो-जो वर माँगता हूँ, वह सब देने की कृपा करें। मैं न सूखी वस्तु से मरूँ न गीली से, न जल से, न आग से, न काठ से, न कीड़े से, और न पत्थर या हवा से ही मेरी मृत्यु हो। न शूल अथवा किसी और शस्त्र से, न पर्वत से, न मनुष्यों से, न देवता, असुर, गन्धर्व अथवा राक्षसों से ही मरूँ। न किनरों से, न यक्ष, विद्याधर अथवा भुजगों से, न वानर तथा अन्य पशुओं से और न दुर्गा आदि मातृगणों से ही मेरी मृत्यु हो। मैं न घर के भीतर मरूं न बाहर, न दिन में मरूँ, न रात में, तथा आपकी कृपा से मृत्यु के हेतुभूत अन्य कारणों से भी मेरी मृत्यु न हो। देवदेवेश्वर! मैं आप से यही वर माँगता हूँ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो दैत्यराजेन ब्रह्मा तं प्राह पार्थिव ।।१०
तपसा तव तुष्टोऽहं महता तु वरानिमान् ।
दुर्लभानपि दैत्येन्द्र ददामि परमाद्भुतान् ।।११
अन्येषां नेदृशं दत्तं न तैरित्थं तपः कृतम् ।
त्वत्प्रार्थितं मया दतं सर्वं ते चास्तु दैत्यप ।।१२
गच्छ भुङ्क्ष्व महाबाहो तपसामूर्जितं फलम् ।
इत्येवं दैत्यराजस्य हिरण्यकशिपोः पुरा ।।१६
दत्त्वा वरान् ययौ ब्रह्मा ब्रह्मलोकमनूत्तमम् ।
सोऽपि लब्धवरो दैत्यो बलवान् बलदर्पितः ।।१४

देवान् सिंहान् रणे जित्वा दिवः प्राच्यावयद् भुवि ।
दिवि राज्यं स्वयं चक्रे सर्वशक्तिसमन्वितम् ।।१५

(नरसिंह पुराण अध्याय ४०।१०-१५)

मारकण्डेयजी कहते हैं - राजन् ! दैत्यराज हिरण्यकशिपु के यों कहने पर ब्रह्माजी ने उससे कहा—'दैत्येन्द्र ! तुम्हारे इस महान् तप से संतुष्ट होकर मैं इन परम अद्‌भुत वरों को दुर्लभ होने पर भी तुम्हें दे रहा हूँ। दूसरे किसी को मैंने ऐसा वर नहीं दिया है। और न दूसरों ने ऐसी तपस्या ही की है। दैत्यपते ! तुम्हारे मांगे हुए सभी वर मैंने तुम्हें दे दिये, वे सब तुम्हें प्राप्त हों। महाबाहो ! अब जाओ और अपने तप के बढ़े हुए उत्कृष्ट फल को भोगो।' इस प्रकार पूर्वकाल में दैत्यराज हिरण्यकशिपु को अभीष्ट वर देकर ब्रह्माजी अपने परम उत्तम लोक को चले गये। उस बलवान् दैत्य ने वर पाकर बल से उन्मत्त हो श्रेष्ठ देवताओं को युद्ध में जीतकर उन्हें स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरा दिया तथा वह स्वयं स्वर्ग लोक में रहकर वहां का सर्वशक्ति सम्पन्न राज्य भोगने लगा।

दैत्यराज हिरण्यकशिपु वरों को प्राप्त कर मदोन्मत्त हो गया और देवता, ऋषि-मुनि, ब्राह्मण, सज्जनों का तो कहना ही क्या समस्त त्रिलोकी को त्रस्त कर दिया। तब भगवान् विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण कर उस हिरण्यकशिपु का वध किया।

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि-
व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ।
द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया
नखैर्यथाहिं गरुड़ो महाविषम् ।।

(श्रीमद्‌भागवत ७।८।२९)

'बड़े वेग से झपटकर भगवान् (नृसिंह) ने उसे वैसे ही पकड़ लिया, जैसे साँप चूहे को पकड़ लेता है। जिस हिरण्यकशिपु के चमड़े पर वज्र की चोट से भी खरौंच नहीं आयीं थी, वही अब उनके पंजे से निकलने के लिये जोर से छटपटा रहा था। भगवान् ने सभा के दरवाजे पर ले जाकर उसे अपनी जांघों पर गिरा लिया और खेल-खेल में अपने नखों से उसे उसी प्रकार से फाड़ डाला, जैसे गरुड़ महाविषधर सांप को चीर डालते हैं।'

(इसकी कथा नृसिंहपुराण, श्रीमद्‌भावत् सप्तम स्कन्ध अध्याय ३-८ में, शिवपुराण रुद्रसंहिता अध्याय १२ में, विष्णुपुराण प्रथम अंश में और अन्य अनेक पुराणों में भी प्राप्त है।)

* *

रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण को ब्रह्माजी का वरदान

सोपान १२

अपनी दुष्कर्ममय अभीष्ट पूर्ति करने के विचार को मन में रावण ने दृढ़ निश्चय किया—'मैं तपस्या से ही अपना मनोरथ पूर्ण कर सकूँगा', ऐसा सोच कर वह गोकर्ण के पवित्र आश्रम में अपने भाई विभीषण, कुम्भकर्ण सहित पहुँच कर उस भयंकर पराक्रमी राक्षस ने अनुपम तपस्या आरम्भ की। और उस तपस्या द्वारा भगवान् ब्रह्माजी को संतुष्ट किया और उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजय प्रदान करने वाले वरदान दिये—

स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा
तपश्चचारातुलमुग्रविक्रमः।
अतोषयच्चापि पितामहं विभुं
ददौ स तुष्टश्च पराञ्जयावहान्॥

(वाल्मीकीय रामायण उत्तर. १०।४८)

भगवान् ब्रह्माजी ने रावण की तपस्या से प्रसन्न होकर वर माँगने के लिये कहा, तब रावण ने कहा—

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम्।
अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत॥
न हि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित।
तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः॥

(वाल्मीकीय रामायण उत्तर का. १०।१९-२०)

'सनातन! प्रजापते! मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिये अवध्य हो जाऊँ। देववन्द्य पितामह! अन्य प्राणियों से मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। मनुष्यादि अन्य जीवों को तो मैं तिनके के समान समझता हूँ।'

ब्रह्माजी ने कहा—

भविष्यत्येवमेतत् ते वचो राक्षसपुङ्गव।

(वाल्मीकीय रामा. उ. १०।२२।१)

'राक्षस प्रवर! तुम्हारा यह वचन सत्य होगा।' तदनन्तर लोकपितामह ब्रह्मा विभीषण से बोले—बेटा विभीषण! तुम्हारी बुद्धि सर्वदा धर्म में लगी रहने वाली है, अतः मैं तुम से बहुत संतुष्ट हूँ। धर्मात्मन! तुम भी अपनी रुचि के अनुसार कोई वर मांगो। विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा— भगवन्! आप साक्षात्

लोकगुरु मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं कृतार्थ हूँ । मुझे कुछ पाना शेष नहीं रहा । यदि आप मुझ पर प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो भगवन् ! बड़ी से बड़ी आपत्ति पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म में लगी रहे उससे विचलित न हो और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाय । जिस-जिस आश्रम के विषय में मेरा जो-जो विचार हो वह धर्म के अनुकूल ही हो और उस-उस धर्म का मैं पालन करूँ, यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अभीष्ट वरदान है । क्योंकि धर्म में अनुरक्त रहने वाले के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी पुनः प्रसन्न होकर विभीषण से बोले—

धर्ष्ठिस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद् भविष्यति ।
यस्माद् राक्षस योनौ ते जातस्यामित्रनाशन ।।
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ।

(वाल्मीकि रामायण उ. १०।३४ ३५)

'वत्स ! तुम धर्म में स्थित रहने वाले हो, अतः जो कुछ चाहते हो, वह सब पूर्ण होगा । शत्रुनाशन ! राक्षस योनि में उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्म में नहीं लगती है, इसलिये मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ ।'

इसके पश्चात् ब्रह्माजी कुम्भकर्ण को वर देने के लिये उद्यत हुए, तब सब ही देवताओं ने हाथ जोड़कर कहा 'प्रभो ! आप कुम्भकर्ण को वरदान न दें क्यों कि यह दुर्बुद्धि निशाचर किस प्रकार समस्त लोकों को त्रास देता है । ब्रह्मन् ! इसने नन्दन वन की सात अप्सराओं, देवराज के दस अनुचरों तथा बहुत-से ऋषियों, मनुष्यों को भी खा लिया है । बिना वर प्राप्त किये ही इस राक्षस ने इस प्रकार अनेक प्राणियों के भक्षण का क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है । तब यदि इसे वर भी प्राप्त हो जाये, उस दशा में तो यह तीनों लोकों को खा जायगा । अमित तेजस्वी देव ! आप वर देने के बहाने इसको मोह प्रदान करदें । इससे समस्त लोकों का कल्याण होगा और इसका भी सम्मान हो जायेगा । देवताओं की यह बात सुनकर ब्रह्माजी ने सरस्वती को बुलाकर कहा – 'वाणि ! तुम राक्षसराज कुम्भकर्ण की जिह्वा पर विराजमान होओ और देवताओं के अनुकूल वाणी के रूप में प्रकट होओ ।' ब्रह्माजी की आज्ञा से सरस्वती कुम्भकर्ण के मुख में समा गयीं । तदनन्तर प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा—'महाबाहु कुम्भकर्ण ! तुम भी अपने मन के अनुकूल कोई वर माँगो ।'

कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ।।
स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देव देव ममेप्सितम् ।
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद् ब्रह्मा सुरैः समम् ।।

(वाल्मीकीय रामायण उ. १०।४४-४)

'ब्रह्माजी की यह बात सुनकर कुम्भकर्ण बोला-देवदेव ! मैं अनेकानेक वर्षों तक सोता रहूँ । यही मेरी इच्छा है ।' 'तब 'एवमस्तु, (ऐसा ही हो)' यह कह कर ब्रह्माजी देवताओं के साथ चले गये ।'

ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करने के पश्चात् राक्षसराज रावरण, कुम्भकर्ण ने कितने अनाचार, क्रूर, नृशंस कर्मों द्वारा तीनों लोकों को त्रस्त कर दिया। रामायरण के पढ़ने सुनने वाले तथा हिन्दूमात्र प्राणी सभी परिचित हैं। भगवान् विष्णु को राजा दशरथ के पुत्र रूप में अवतार लेकर उनका वध करना पड़ा।

सर्वतो युध्यमानांश्च रक्षोनाथान् रणेऽधिकान्।
राघवो घातयित्वा तु वानरेन्द्रैः समन्ततः।।
चकर्त विशिखैस्तीक्ष्णैः कुम्भकर्णस्य कन्धराम्।

(नृसिंहपुराण अध्याय ५२।६१ ६२)

'श्रीरामचन्द्रजी ने रणमें सब ओर युद्ध करते हुए बहु संख्यक राक्षसाधिपतियों को चारों ओर से वानरों द्वारा मरवाकर, अपने तीखे बाणों से कुम्भकर्ण का भी गला काट दिया।'

रामस्तं रथमारुह्य पूज्यमानः सुरोत्तमैः।
मातल्युक्तोपदेशस्तु रामचन्द्रः प्रतापवान्।।
ब्रह्मदत्तवरं दुष्टं ब्रह्मास्त्रेण दशाननम्।
जघान वैरिणं क्रूरं रामदेवः प्रतापवान्।।

(नरसिंह पुराण अध्या. ५२।१०५-१०६)

'प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ देवों द्वारा प्रशंसित होकर उस रथपर आरूढ़ हुए और मातलि के उपदेश से उस दुष्ट दशानन का, जिसको ब्रह्माजी ने वरदान दिया था, ब्रह्मास्त्र द्वारा वध किया। इस प्रकार प्रतापी भगवान् श्रीराम ने अपने क्रूर वैरी रावरण का संहार किया।'

लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरंतं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये।।

(रामरक्षास्तोत्र)

'मैं लोकसुखदाता सुन्दर, रणरङ्गधीर, कमलनेत्र, रघुवंश शिरोमणि, करुणास्वरूप, करुणाकी खान श्रीरामजी की शरण हूँ।'

* *

कंस को ब्रह्माजी का वरदान

सोपान १३

राजा बहुलाश्व ने कहा—देवर्षि शिरोमणे! यह महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न कंस पहले किस दैत्य के नाम से विख्यात था? आप इसके पूर्व जन्मों और कर्मों का विवरण मुझे सुनाइये।

नारदजी ने कहा—राजन् ! पूर्वकाल में समुद्र मन्थन के अवसर पर महान् असुर कालनेमि ने भगवान् विष्णु के साथ युद्ध किया । उस युद्ध में भगवान् विष्णु ने उसे मार डाला । उस समय शुक्राचार्यजी ने अपनी संजीवनी-विद्या के बल से उसे पुनः जीवित कर दिया । तब वह पुनः भगवान् विष्णु से युद्ध करने के लिये मन-ही-मन उद्योग करने लगा । उस समय उसने मन्दराचल पर्वत के समीप देवेश्वर ब्रह्मा की अत्यन्त कठिन घोर तपस्या आराधना की । देवताओं के कालमान से सौ वर्ष तक तपस्या होने पर भगवान् ब्रह्माजी उसके पास गये । उस समय कालनेमि के शरीर में केवल हड्डियाँ ही रह गयीं थी और उस पर दीमकें चढ़ गयीं थीं । ब्रह्माजी ने उससे कहा—'वर माँगो ।'

कालनेमि ने कहा इस ब्रह्माण्ड में जो-जो महाबली देवता स्थित हैं, उन सब के मूल भगवान् विष्णु हैं । उन सम्पूर्ण देवताओं के हाथ से मेरी मृत्यु न हो ।

ब्रह्माजी ने कहा दैत्य ! तुमने जो उत्कृष्ट वर माँगा है, वह तो अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि किसी दूसरे समय तुम्हें यह प्राप्त हो सकता है । मेरी वाणी कभी झूठी नहीं हो सकती ।

श्री नारदजी कहते हैं—राजन् फिर वही कालनेमि नामक असुर दूसरे जन्म में पृथ्वी पर उग्रसेन की स्त्री (पद्मावती) के गर्भ से उत्पन्न कंस नाम से विख्यात हुआ । कुमारावस्था में वह बड़े-बड़े पहलवानों के साथ कुश्ती लड़ा करता था । एक समय मगधराज जरासंध दिग्विजय के लिये निकला । यमुना नदी के निकट उसकी छावनी पड़ गयीं । उसके पास 'कुवलयापीड' नाम का हाथी था । जिसमें हजार हाथियों के समान शक्ति थी । उसके गण्डस्थल से मद चू रहा था । एक दिन उसने बहुत-सी-साँकलों के बन्धन तोड़ डाले और शिविर से बाहर की ओर दौड़ चला । शिविरों, गृहों और पर्वतीय तटों को तोड़ता-फोड़ता हुआ वह उस रङ्गभूमि (अखाड़े) में आ धमका, जहाँ कंस भी कुस्ती लड़ रहा था । उसके आने पर सभी शूरवीर भाग चले । उसे आया देख कर कंस ने उसकी सूँड पकड़ी और दोनों हाथों से उसे पकड़ कर घुमाया और जरासंध की सेना में जो वहाँ से बहुत दूर थी, फेंक दिया । मगध नरेश जरासंध कंस के इस अद्भुत बल पराक्रम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने 'अस्ति' तथा 'प्राप्ति' नाम की अपनी दो परम सुन्दरी कन्याओं का विवाह उसके साथ कर दिया । उस जरापुत्र ने एक अरब घोड़े, एक लाख हाथी, तीन लाख रथ और दस हजार दासियाँ कंस को दहेज में दी ।

कंस अपने बाहुबल के मद से अकेला ही द्वन्द्व युद्ध के लिये उन्मत्त रहता था । वह प्रचण्ड पराक्रमी वीर एक समय माहिष्मती पुरी में गया । वहाँ के नरेश के पाँच पुत्र चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, और तोशल नाम वाले प्रख्यात मल्ल थे । कंस ने सामनीति का आश्रय ले प्रेमपूर्वक उनसे कहा—'तुम लोग मेरे साथ मल्लयुद्ध करो । यदि तुम्हारी विजय हुई तो मैं तुम्हारा सेवक रहूँगा और कदाचित् मेरी विजय हो गयी तो तुम सबको मैं अपना सेवक बना लूँगा ।' वहाँ कितने ही नागरिक महान् पुरुषों के सामने यह प्रतिज्ञा की गई । विजय पाने की इच्छा रखने वाले उन

वीरों के साथ मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया । अनेक प्रकार के बल पराक्रमी उन पांचों वीर मल्लों ने बारी-बारी से कंस के साथ मल्लयुद्ध किया, किन्तु उस महान् बलशाली कंस के सामने किसी की कुछ न चली सब ही को कंस ने पछाड़ दिया और वे सब वीर कंस के सेवक बन गये ।

इसके पश्चात् शीघ्र ही वह कंस उन मल्ल योद्धाओं को लेकर प्रवर्षणगिरि पर जा पहुँचा । वहाँ एक द्विविद नामक महाबली वानर रहता था उसको भी अपना यही अभिप्राय बतला कर उसके साथ बीस दिनों तक अविराम युद्ध कर उसको पृथ्वी पर पटक दिया, वह भी कंस का सेवक बन गया । तदनन्तर कंस द्विविद के साथ वहां से ऋष्यमूक वन में गया । वहां 'केशी' नाम से विख्यात एक महादैत्य जिसकी आकृति घोड़े के समान थी । वह बादल के समान गर्जता था । उसको कंस ने मुक्कों से मारकर अपने वश में कर लिया । इसके पश्चात् वह दानवराज कंस महेन्द्रगिरि पर्वत पर जहां मुनिवर परशुराम तपस्या करते थे, जा पहुँचा । और पर्वत समेत परशुरामजी को सौ बार उखाड़-उखाड़ कर फिराने लगा । परशुरामजी बहुत क्रोधित हो उठे, तब कंस उनके चरणों में लौट गया, बहुत अनुनय विनय कर प्रार्थना और उनकी प्रदक्षिणा की तब परशुरामजी का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने एक धनुष जिसका भार तीन लाख मन का था, कंस को दिखा कर कहा कि यदि तू इसे चढ़ा सका तो ठीक है नहीं तो तुझे मौत के घाट उतार दूँगा । यह धनुष त्रिपुरासुर के युद्ध के समय भगवान् विष्णु ने शंकर को दिया था और क्षत्रियों के विनाश के लिये भगवान् शिव ने मुझे दिया था । परशुरामजी की यह बात सुनकर कंस ने वह धनुष उठा लिया जो सात ताड़ के वृक्षों के बराबर था, परशुरामजी के देखते-देखते उसे लीलापूर्वक चढ़ा दिया और कंस ने उस धनुष को नीचे रख दिया और प्रणाम करके कहा कि महाराज मैं क्षत्रिय नहीं हूँ । मैं तो आपका सेवक दैत्य हूँ । आप के दासों का भी दास हूँ । पुरुषोत्तम आप मेरी रक्षा कीजिये । इस प्रकार कंस की प्रार्थना सुनकर परशुरामजी प्रसन्न हो गये । फिर वह धनुष उन्होंने कंस को दे दिया ।

'परशुरामजी ने कहा—यह भगवान् विष्णु का धनुष है । जो इसे तोड़ देगा, वही यहाँ साक्षात् परिपूर्णतम पुरुष है ऐसा जान लेना और उसी के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी । नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर बल के मद से उन्मत्त रहने वाला वह कंस मुनिवर परशुरामजी को प्रणाम करके भूतल पर विचरने लगा । इसके पश्चात् किन्हीं राजाओं ने उसके साथ युद्ध नहीं किया—सबने उसे कर देना स्वीकार कर लिया । अब कंस समुद्र के तट पर गया । वहाँ एक सर्प के आकार का 'अघासुर' नाम का दानव रहता था वह सर्वदा फुफकारता और लपलपाती जीभ से चाटता-सा दिखाई देता था । वह कंस को निगल जाने के लिये डँसने लगा । किन्तु कंस ने उसे निडरतापूर्वक पकड़कर खूब घुमाया और पृथ्वी पर दे पटका और अपने गले में माला की भाँति पहन लिया । वहाँ से कंस पूर्ववर्ती वंगदेश को गया । वहाँ एक

दैत्य बैल की आकृति का 'अरिष्ट' नामक रहता था। कंस ने जाते ही उससे युद्ध करना आरम्भ कर दिया और मौका पाकर उसके सिर पर मुक्के से प्रहार किया जिससे वह मूच्छित हो गया। और मूर्च्छा दूर होने पर कंस के अधीन हो गया। वहाँ से वह कंस प्राग्ज्योतिषपुर के स्वामी भूमिपुत्र 'नरक' के पास जाकर युद्ध करने का प्रस्ताव किया कि यदि तुम हारे तो मेरे सेवक होंगे मैं हारा तो मैं तुम्हारा सेवक होऊँगा। अन्त में युद्ध में नरक भी हार गया और कंस का सेवक होना स्वीकार कर लिया। तदनन्तर कंस 'धेनुक' नामक दानव के पास गया और दारुण बल के प्रयोग से उसे भी सुदृढ़ घूसों से मार-मार कर अपनी अधीनता स्वीकार करा ली। तदनन्तर भौमासुर की आज्ञा से 'तृणावर्त' नामक एक राक्षस कंस को पकड़ कर लाख योजन ऊपर आकाश में ले गया और वहीं युद्ध करने लगा। तब कंस ने अपनी अनन्त शक्ति लगाकर बलपूर्वक उस दैत्य को खींचकर पृथ्वीपर पटक दिया। उस समय तृणावर्त के मुँह से खून की धार वह चली। इसके बाद महाबली 'बकासुर' आया और कंस को निगलने की चेष्टा करने लगा। कंसने वज्र के समान कठोर मुक्के से प्रहार करके उसे धराशायी कर दिया। बकासुर फिर उठा और क्रोधपूर्वक शीघ्रता करके कंस को निगल गया। कंस का शरीर वज्र की भाँति कठोर था। निगल जाने से उस दानव के गले को रूँध दिया। उसकी सांस बन्द हो गयी। तब बकासुर ने उसको मुँह से बाहर उगल दिया। तदनन्तर कंसने उस दैत्य को जमीन पर पटक दिया और पुनः उठाकर उसे दोनों हाथों से घुमाया और युद्ध भूमि में घसीटने लगा। तभी बकासुर की एक बहिन 'पूतना' आयी और युद्ध करने को तैयार हुई। तब कंस ने हँसकर कहा तुम स्त्री हो, मैं तुम से लड़ नहीं सकता। अब यह बकासुर मेरा भाई और तुम मेरी बहिन होकर रहो। तदनन्तर महापराक्रमी भौमासुर आया और उसने भी कंस से पराजय स्वीकार करली। फिर देवताओं से युद्ध करने के समय सहायता प्रदान करने के लिये कंस के साथ सौहार्दपूर्ण वर्ताव करने लगा।

इसके पश्चात् अपने अधीन किये हुए दैत्य राक्षसों को लेकर क्रमशः शम्बासुर व्योमासुर, बाणासुर, वत्सासुर और कालयवन आदि दैत्यों, असुरों तथा यवनों को जो अमित बल पराक्रम से प्रख्यात थे सभी को युद्ध में पराजित करके अपनी अधीनता स्वीकार करा ली।

तदनन्तर प्रख्यात-प्रख्यात महाबलशाली दैत्यों को लेकर इन्द्र की अमरावतीपुरी पर चढ़ाई कर दी और परशुरामजी द्वारा प्राप्त किए हुए धनुष से सब देवताओं को परास्त कर दिया। सब देवताओं ने ऊँचे हाथ कर दिये और अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल दिये और अधोवस्त्र की लाँग खोल दी और हाथ जोड़ लिये, देवता लोग भाग खड़े हुये। तब कंस ने उनको छोड़ दिया और वहाँ से इन्द्र के छत्रयुक्त सिंहासन को अपने साथ लेकर अपने सभी साथी दैत्यों के साथ अपनी राजधानी मथुरापुरी को लौट आया।

ऐसे महाबलशाली पराक्रमी कंस को मारने के लिये भगवान् विष्णु ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार धारण किया और कंस द्वारा पराजित करके लाये सभी महाबली असुरों को काल के मुँह में पहुँचा दिया।

(गर्ग संहिता, गोलोक खण्ड, अध्याय ६, ७ के आधार से)

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात्।
मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसि चर्मणी॥
प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं
निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात्।
तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः
पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः॥
तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ
हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः।
हा हेति शब्दः सुमहांस्तदाभू-
दुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र॥

(श्रीमद् भागवत १०।४४।३५,३७-३८)

'जब मनस्वी कंस ने देखा कि मेरे मृत्युरूप भगवान् श्रीकृष्ण सामने आ गये तब वह सहसा अपने सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और हाथ में ढाल तथा तलवार उठा ली। इसी समय कंस का मुकुट गिर गया और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके केश पकड़कर उसे भी उस ऊँचे मंच से रंगभूमि में गिरा दिया। फिर परम स्वतन्त्र और विश्व के आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े। उनके कूदते ही कंस की मृत्यु हो गयी। सब के देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्ण कंस की लाश को धरती पर उसी प्रकार घसीटने लगे, जैसे सिंह हाथी को घसीटे। नरेन्द्र! उस समय सबके मुँह से हाय! हाय! की बड़ी ऊँची आवाज सुनायी पड़ी।

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च।
असंख्य ब्रह्माण्डभूते गोलोकपतये नमः॥

(गर्ग संहिता, माधु. २२।५)

श्री कृष्णचन्द्र को नमस्कार है। परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डों का भरण-पोषण करने वाले गोलोकपति को नमस्कार है।

नोट—इसी भाँति तपस्या द्वारा भगवान् ब्रह्माजी के प्रसन्न होकर वरदान प्रदान करने के कथाएँ, वज्राङ्ग को वरदान देने से दूसरे जन्म में 'तारकासुर' होने का वर्णन पद्मपुराण में, शुम्भ, निशुम्भ को वरदान देने का वर्णन देवी भागवत में, राजा भगीरथ की गोकर्ण क्षेत्र में जाकर तपस्या करने पर प्रसन्न होकर गङ्गाजी को भूतल पर आकर भगीरथ के पूर्वजों को अक्षय स्वर्गलोक प्राप्त होने का वरदान प्रदान करने की कथा वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड में प्राप्त होती हैं।

भक्तराज नारदजी का भगवान् ब्रह्माजी को शाप और उनके मन्त्र, कवच, स्तोत्र और पूजाविधि का लोप होना

सोपान १४

ब्रह्माजी ने अनेक ब्रह्माण्ड लोका-लोक, मेदनी, पर्वत, समुद्र, द्वीप, मर्यादा-पर्वत, पाताल और स्वर्ग आदि का निर्माण कर दिया। तदनन्तर सावित्री ने चार मनोहर वेदों को प्रकट किया। साथ ही न्याय और व्याकरण आदि नाना प्रकार के शास्त्र-समूह तथा परम मनोहर छत्तीस रागिनियाँ उत्पन्न कीं। नाना प्रकार के तालों से युक्त छह सुन्दर राग प्रकट किये। सत्ययुगादि चारोयुग, वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण आदि, दिन, रात, वार, सन्ध्या, उषा, पुष्टि, मेधा, विजया, जया, छह कृत्तिका, योग, करण, कार्तिकेयप्रिया, सती महाषष्ठी, देवसेना,—जो मातृकाओं में प्रधान और बालकों की इष्ट देवी हैं, इन सब को सावित्री ने ही उत्पन्न किया। ब्राह्म, पाद्म और वाराह-ये तीन कल्प माने गये हैं। नित्य, नैमित्तिक द्विपरार्ध और प्राकृत-ये चार प्रकार के प्रलय हैं। इन कल्पों और प्रलयों को तथा काल, मृत्युकन्या एवं समस्त व्याधिगणों को उत्पन्न किया।

तदनन्तर ब्रह्माजी के पृष्ठदेश से अधर्म उत्पन्न हुआ। अधर्म के वामपार्श्व से अलक्ष्मी उत्पन्न हुई, जो उसकी पत्नी थी। ब्रह्माजी के नाभिदेश से शिल्पियों के गुरु विश्वकर्मा हुए। साथ आठ वसुओं की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् विधाता के मन से चार कुमार आविर्भूत हुए, जो पाँच वर्ष की अवस्था के-से जान पड़ते थे और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित हो रहे थे। उनमें से प्रथम सनक थे, दूसरे का नाम सनन्दन था, तीसरे सनातन, चौथे ज्ञानियों में श्रेष्ठ सनत्कुमार थे। इसके बाद में ब्रह्माजी के मुख से सुवर्ण के समान कान्तिमान कुमार उत्पन्न हुआ, जो दिव्यरूप-धारी था। उसके साथ उसकी पत्नी भी थी। वह श्रीमान्, सुन्दर और क्षत्रियों का बीजस्वरूप था। उसका नाम था स्वायम्भुव मनु। जो स्त्री थी, उसका नाम शतरूपा था। वह बड़ी रूपवती थी और लक्ष्मी की कला स्वरूपा थी। पत्नी सहित मनु विधाता की आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत रहते थे। स्वयं विधाता ने हर्ष भरे अन्य पुत्रों से, जो बड़े भगवद्भक्त थे, सृष्टि करने के लिये कहा। परन्तु वे श्रीकृष्ण परायण होने के कारण 'नहीं' करके तपस्या करने के लिये चले गये। इससे जगत्पति विधाता को बड़ा क्रोध हुआ। कोपासक्त ब्रह्मा ब्रह्म तेज से जलने लगे। उसी समय उनके ललाट से ग्यारह रुद्र प्रकट हुए। उन्हीं में से एक को संहारकारी 'कालाग्निरुद्र' कहा गया है। समस्त लोकों में केवल वे ही तामस या

तमोगुणी माने गये हैं। स्वयं ब्रह्मा राजस हैं और शिव तथा विष्णु सात्त्विक कहे गये हैं। गोलोकनाथ श्रीकृष्ण निर्गुण हैं, क्योंकि वे प्रकृति से परे हैं। जो परम अज्ञानी और मूर्ख हैं, वे ही शिव को तामस (तमोगुणी) कहते हैं। वे शुद्ध सत्त्वस्वरूप, निर्मल तथा वैष्णवों में अग्रगण्य हैं। रुद्रों के वेदोक्त नाम हैं—महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयंकर, ऋतुध्वज, ऊर्ध्वकेश, पिङ्गलाक्ष, शुचि, सुचि तथा कालाग्निरुद्र। ब्रह्माजी के दायें कान से पुलस्त्य, बायें कान से पुलह, दाहिने नेत्र से अत्रि, वाम नेत्र से क्रतु, नासिका छिद्र से अरणि, मुख से अङ्गिरा एवं रुचि, वामपार्श्व से भृगु, दक्षिण पार्श्व से दक्ष, छाया से कर्दम, नाभिसे पञ्चशिख, वक्षःस्थल से वोढु, कण्ठदेश से नारद, स्कन्धदेश से मरीचि, गले से अपान्तरतमा, रसना से वसिष्ठ, अधरोष्ठ से प्रचेता, वाम कुक्षि से हंस और दक्षिण कुक्षि से यति प्रकट हुए। विधाता ब्रह्मा ने अपने इन पुत्रों को भी सृष्टि करने की आज्ञा दी पिता की यह बात सुनकर नारदजी ने उनसे कहा—

नारदजी बोले—जगत्पते ! पितामह ! पहले आप सनक, सनन्दन, आदि ज्येष्ठ पुत्रों को बुलाइये और उनका विवाह कीजिये। तत्पश्चात् हम लोगों से ऐसा करने के लिये कहिये। जब पिताजी ! आपने उन्हें तपस्या में लग जाने पर कोई बात की रोक नहीं लगायी, तब हमें ही क्यों संसार-बन्धन में डाल रहे हैं ? अहो ! कितने दुःख की बात है कि प्रभु आपकी बुद्धि विपरीत भाव को प्राप्त हो रही है। भगवान् ! आपने किसी पुत्र को अमृत से भी बढ़कर तपस्या का कार्य दिया है और किसी को आप विष से भी अधिक विषम विषय-भोग दे रहे हैं। पिताजी ! जो अत्यन्त निम्न कोटि के भयानक भवसागर में गिरता है, उसका करोड़ों कल्प बीतने पर भी उद्धार नहीं होता। भगवान् पुरुषोत्तम ही सब के आदि कारण तथा निस्तार के बीज हैं। वे ही सब कुछ देने वाले, भक्ति प्रदान करने वाले, दास्यसुख देने वाले, सत्य तथा कृपामय हैं। वे ही भक्तों को एकमात्र शरण देने वाले, भक्तवत्सल और स्वच्छ हैं। भक्तों के प्रिय, रक्षक और उन पर अनुग्रह करने वाले भी वे ही हैं। भक्तों के आराध्य तथा प्राप्य उन परमेश्वर श्रीकृष्ण को छोड़कर कौन मूढ़ विनाशकारी विषय में मन लगायेगा ? अमृत से भी अधिक प्रिय श्रीकृष्ण-सेवा छोड़कर कौन मूर्ख विषय नामक विषम विष का भक्षण (आस्वादन) करेगा ? विषय तो स्वप्न के समान नश्वर, तुच्छ, मिथ्या तथा विनाशकारी है।

यथा दीपशिखाग्रं च कीटानां सुमनोहरम्।
यथा वडिशमांसं च मत्स्यापातसुखप्रदम्।
तथा विषयिणां तात विषयं मृत्युकारणम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्ड ८।३७-३८)

'पिताजी ! जैसे दीप शिखा का अग्रभाग पतङ्गों को बड़ा मनोहर प्रतीत होता है, जैसे बंसी में गुंथा हुआ मांस मछलियों को आपाततः सुखद जान पड़ता है, उसी प्रकार विषयी पुरुषों को विषय में सुख की प्रतीति होती है, परन्तु वास्तव में वह मृत्यु का कारण है।'

ब्रह्माजी के सामने इस प्रकार की अनेक बातें निवेदन करके नारदजी चुप हो गये। वे अग्निशिखा के समान तेज से प्रकाशित हो रहे थे। पिता को प्रणाम करके चुपचाप खड़े रहे। उनकी यह बातें सुनकर ब्रह्माजी रोष से आगबबूला हो उठे। उनका मुँह लाल हो गया। ओठ फड़कने लगे और क्रोध के मारे सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। वे नारदजी को शाप देते हुए बोले—

ब्रह्माजी ने कहा—नारद ! मेरे शाप से तुम्हारे ज्ञान का लोप हो जायगा। तुम कामिनियों के क्रीड़ामृग बन जाओगे। उनके वशीभूत होओगे, तुम पचास कामिनियों के पति बनो। शृङ्गार-शास्त्र के ज्ञाता, शृङ्गार-रसास्वादन के लिये अत्यन्त लोलुप तथा नाना प्रकार के शृङ्गार में निपुण लोगों के गुरु के भी गुरु हो जाओगे। गन्धर्वों में श्रेष्ठ पुरुष होओगे। सुमधुर स्वर से युक्त उत्तम गायक बनोगे। वीणा-वादन-संदर्भ में पारंगत तथा सुस्थिर यौवन से युक्त होओगे। विद्वान्, मधुरभाषी, शांत, सुशील, सुन्दर और सुबुद्धि होओगे, इसमें संशय नहीं है। उस समय 'उपबर्हण' नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। उन कामिनियों के साथ युगों तक निर्जन वन में विहार करके फिर मेरे शाप से दासी पुत्र होओगे। बेटा ! तदनन्तर वैष्णवों के संसर्ग से और उनकी जूँठन खाने से तुम पुनः श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करके मेरे पुत्ररूप में प्रतिष्ठित होओगे। उस समय मैं पुनः तुम्हें दिव्य एवं पुरातन ज्ञान प्रदान करूँगा। इस समय तुम मेरी आँखों से ओझल हो जाओ और जाओ अवश्य ही नीचे गिरो।

नारदजी को इस प्रकार कहकर जगत्पति ब्रह्माजी चुप हो गये और नारदजी रोने लगे। नारदजी ने दोनों हाथ जोड़कर पिताजी से कहा।

नारदजी बोले—तात ! तात ! जगद्गुरो ! आप अपने क्रोध को रोकिये। आप स्रष्टा हैं। तपस्वियों के स्वामी हैं। अहो ! मुझ पर आपका यह क्रोध अकारण ही हुआ है। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि कुमार्गगामी पुत्र को शाप दे अथवा उसका त्याग कर दे। आप पण्डित होकर अपने तपस्वी पुत्र को शाप देना कैसे उचित मानते हैं ? ब्रह्मन् ! जिन-जिन योनियों में मेरा जन्म हो भगवान् की भक्ति मुझे कदापि न छोड़े, ऐसा वर प्रदान कीजिये। जगत् स्रष्टा का ही पुत्र क्यों न हो, यदि भगवान् श्रीहरि के चरणों में उसकी भक्ति नहीं है तो वह भारत भूमि में सूअर से भी बढ़कर अधम है। जो अपने पूर्वजन्म का स्मरण रखते हुए श्रीहरि की भक्ति से युक्त होता है, वह सुअर की योनियों में जन्म ले तो श्रेष्ठ है, क्योंकि उस भजनरूपी कर्म से वह गोलोक में चला जाता है। जो गोविन्द के चरणारविन्दों की भक्तिरूप मनोवाञ्छित मकरन्द का पान करते हैं, उन वैष्णव आदि के स्पर्श से सारी पृथ्वी पवित्र हो जाती है। पितामह ! पापी लोग स्नान करके तीर्थों को जो पाप दे देते हैं, अपने उन पापों का भी प्रक्षालन करने के लिये सब तीर्थ वैष्णव महात्माओं का स्पर्श प्राप्त करना चाहते हैं।

अहो ! भारतवर्ष में श्रीहरि के मन्त्र का उपदेश देने और लेने मात्र से

कितने ही मनुष्य अपने करोड़ों पूर्वजों के साथ मुक्त हो गये हैं। मन्त्र ग्रहण करने मात्र से मनुष्य करोड़ों जन्मों के पाप से मुक्त एवं शुद्ध हो जाते हैं और पहले के कर्म को समूल नष्ट कर देते हैं। जो गुरुपुत्रों, पत्नियों, शिष्यों, सेवकों और भाई-बन्धुओं को उपदेश दे उन्हें सन्मार्ग का दर्शन कराता है, उसे निश्चय ही उत्तम गति प्राप्त होती है; परन्तु जो गुरु शिष्यों का विश्वासपात्र होकर असन्मार्ग का दर्शन कराता है—कुमार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता है, वह तब तक कुम्भीपाक नरक में निवास करता है, जब तक सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है।

स किं गुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः।
यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखण्ड ८।६१)

'वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा स्वामी और कैसा पुत्र है, जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों की भक्ति देने में समर्थ न हो।'

चतुरानन! आपने बिना किसी अपराध के ही मुझे शाप दे दिया है। अतः बदले में मैं भी आपको शाप दूँ तो अनुचित न होगा, मेरे शाप से सम्पूर्ण लोकों में कवच, स्तोत्र और पूजा सहित आपके मन्त्रों का निश्चय ही लोप हो जाय। पिताजी! जब तक तीन कल्प न बीत जाएँ, तब तक तीनों लोकों में आप अपूज्य बने रहें। तीन कल्प बीत जाने पर आप पूजनीयों के भी पूजनीय होंगे। सुव्रत! इस समय आपका यज्ञ भाग बन्द हो जाय। व्रत आदि में भी आपका पूजन न हो। केवल एक ही बात रहे—आप देवता आदि के वन्दनीय बने रहें।

पिता के सामने ऐसा कहकर नारदजी चुप हो गये और जगत् पिता ब्रह्माजी संतप्त हृदय से सभा में सुस्थिर भाव से बैठे रहे। पितामह के दिये हुए उस शाप के ही कारण नारदजी उपबर्हण नामक गन्धर्व तथा दासी पुत्र हुए। तदनन्तर पिता से ज्ञान प्राप्त करके वे फिर महर्षि नारद हो गये।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड, अध्याय ८ के आधार से)

नोट—उपवर्हण नाम से नारदजी के जन्म होने की कथा ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड अध्याय १२ से ३० में बृहत्रूप में प्राप्त है और नारदजी के दासी पुत्र होने की कथा श्रीमद्भागवत स्कन्ध प्रथम, अध्याय पाँच और छः में प्राप्त है। जो पाठक पढ़ना चाहें, इन ग्रन्थों में पढ़ सकते हैं।

उपर्युक्त कथा के अतिरिक्त सावित्रीजी द्वारा ब्रह्माजी को शाप देने के कारण ब्रह्माजी की पूजा न होने के विषय में और भी कथा प्राप्त होती है। वह भी पाठकों को जानकारी कराने हेतु लिखी जा रही है।

ब्रह्माजी के विख्यात तीर्थ पुष्कर में जब ब्रह्माजी के द्वारा महान् यज्ञ का आयोजन किया गया था, उस यज्ञ में वेदों को जानने वाले विद्वान् ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया गया क्योंकि यज्ञ ही शाश्वत प्रभु है। ब्रह्माजी ने देवताओं और मनुष्यों के हित के लिए तथा लोक कल्याणार्थ ही यह यज्ञ किया था। उस यज्ञ

में कपिल, सप्तऋषि, त्र्यम्बक, सनत्कुमार आदि महानुभाव, प्रजापति मनु तथा पुराण पुरुषोत्तम भगवान् भी आये। ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की—प्रभो! आप ही मेरे परमदेव, परमगुरु तथा परमधाम हैं। अतः मेरे यज्ञ की दानवों से रक्षा करें, आपको नमस्कार है—भगवान् ने कहा - भद्र ! निर्भय रहो, मैं दानवों से यज्ञ की रक्षा करूँगा। विघ्न करने वालों को नष्ट कर दूँगा—

त्वं हि मे परमो देवस्त्वं हि मे परमो गुरुः।
त्वं हि मे परमं धाम शक्रादीनां सुरोत्तम ।।
उत्फुल्लामलपद्माक्ष शत्रुपक्षक्षयावह।
यथायज्ञेन मेध्वंसोदानवैश्च विधीयते ।।
तथात्वयाविधातव्यं प्रणतस्यनमोऽस्तु ते।
भय त्यजस्व देवशक्षयं नेष्यामि दानवान् ।।

(पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, अध्याय १६ श्लोक ६९-७१)

इस प्रकार कहकर भगवान् यज्ञ की सहायतार्थ वहीं स्थित हो गये। तदनन्तर कल्याणप्रद शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु बहने लगी एव सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। महर्षिगण निर्भय हो वेद ध्वनि करने लगे। सम्पूर्ण देव, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच आदि गन्धर्व, अप्सरागण, नाग, विद्याधरगण, वनस्पति, ओषध्यादिक भी आ गये। उस यज्ञ को देखने मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी आये। ब्रह्मकृत यज्ञ के लिए वरुण ने रत्न, प्रजापति दक्ष ने सभी प्रकार के अन्न दिये। इस प्रकार उस यज्ञ में नद, नदी, कूप, तालाब एव लवणक्षु, सुरासपि आदि सप्तसमुद्र तथा वेद, भाष्य, सूत्र एवं धर्मशास्त्रादि मूर्तिरूप धारण करके वहां आ गये। ब्रह्माजी के दक्षिण पार्श्व में सनातन विष्णु, वामपार्श्व में भगवान् शंकर स्थित हुए। वहां ब्रह्माजी ने ऋत्विजों का वरण किया, जिसमें भृगुजी को होता, पुलस्त्यजी को अध्वर्यु, मरीचि को उद्गाता एवं नारदजी को ब्रह्मा का आसन दिया एवं सनत्कुमारादिकों को सदस्य बनाया। इस प्रकार उनकी कल्पनानुसार कुबेरजी ने उनको वस्त्राभूषणादिकों से युक्त किया। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने उन सबकी नमस्कारपूर्वक पूजा की। विश्वकर्मा को आवाहित कर क्षौर कर्म करवाया गया। उस यज्ञ की शोभा व प्रबन्ध को देखकर ब्रह्माजी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। क्षत्रिय लोग रक्षार्थ, वैश्य विविध प्रकार के रसबाहुल्ययुक्त विविध प्रकार के भक्ष्य देने वाले एवं शूद्र सभी प्रकार की सेवा कर्मों के लिये नियुक्त हुए। द्वार के अध्यक्ष इन्द्र, रस को देने वाले वरुण, धनदाता कुबेर, गन्ध देने वाला पवन, प्रकाश देने वाला सूर्य तथा प्रभुत्व में भगवान् माधव स्थित हुए।

वराङ्गनाओं सहित भली प्रकार से वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हुई सावित्री जी को अध्वर्यु ने शीघ्र ही यज्ञ-मण्डप में पधार आने के लिये बुलाया; किन्तु स्त्री स्वभाव से गृहकार्य में व्यग्र हुई, सावित्रीजी ने कहलवाया की अभी तक तो भगवान् नारायण की पत्नी लक्ष्मी, अग्नि की पत्नी स्वाहा, वरुणानी, गौरी, अरुन्धती एवं

अनसूयादि भी नहीं आई हैं, मैं अकेली नहीं उनके साथ आऊँगी। वे आएँ तब तक ठहरो।

अध्वर्यु ने कहा—अतिकाल हो रहा है, जैसा आपको जँचे वैसा करें। इस प्रकार कहने पर क्रोधयुक्त हो ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा—मेरे लिए शीघ्र ही अन्य पत्नी की व्यवस्था करो, जिससे यज्ञ में काल लोप न हो। ब्रह्माजी के ऐसा कहते ही इन्द्र पृथ्वी पर कन्या खोजने के लिये गये। कुछ ही समय पश्चात् एक रूपलावण्ययुक्त आभीर कन्या को देखकर इन्द्र ने कहा कि इसके सदृश और कन्या नहीं है। यह स्त्रियों में रत्न रूप है, ऐसा विचार कर इन्द्र ने उस कन्या से पूछा—तुम कौन हो? कहां से आई हो और अकेली यहां क्यों फिर रही हो? उस आभीर कन्या ने कहा—मैं गोप कन्या हूँ तथा रस बेचने को घूम रही हूँ। यदि आप दूध, दही अथवा मक्खन की इच्छा रखते हो तो यथेच्छ ग्रहण कर सकते हो। ऐसा कहती हुई कन्या को हाथ से पकड़कर इन्द्र जहां ब्रह्म-यज्ञ हो रहा था वहां ले गये। उस कन्या को शक्र ने ब्रह्माजी के सामने उपस्थित कर दिया।

गोपकन्या ने भी देदीप्यमान गौर वर्ण ब्रह्माजी को देख अपने आपको धन्य माना। ब्रह्माजी ने भी उनका गायत्री नामकरण कर भगवान् विष्णु से यथार्थ अनुमति मांगी। तब भगवान् विष्णु ने कहा—अभी गन्धर्व विधि से इसके साथ पाणिग्रहण कीजिये। तदनन्तर ब्रह्माजी ने गायत्री से विवाह किया और अध्वर्यु से कहा कि मैंने इसको पत्नीरूप में स्वीकार कर लिया है। मुझे यज्ञस्थल में ले चलो। तत्पश्चात् ब्रह्माजी औदुम्बरदण्ड और मृगचर्म से युक्त हो, यज्ञ-मण्डप में शोभित हुए। वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ का शुभारम्भ हुआ। उसी समय सम्पूर्ण देवियों के साथ सावित्रीजी भी उस यज्ञ-मण्डप स्थल में पहुँची। सावित्री को आती हुई देखकर इन्द्र भयभीत हो गया और ब्रह्माजी भी लज्जा से नतमस्तक हो सोचने लगे कि अब यह क्या कहेंगी और क्या करेंगी? इसी प्रकार से विष्णु, रुद्र आदि अनेक देवगण तथा ब्राह्मण भी भयभीत हो गये। सावित्रीजी के यज्ञ-स्थल में पहुँचते ही ब्रह्माजी ने सावित्रीजी से कहा—दीक्षाकाल उपस्थित होने पर ऋत्विजों ने शीघ्रता की, विना पत्नी के यज्ञ नहीं होगा। अतः शीघ्र ही पत्नी को लाओ। तब इन्द्र द्वारा यह लाई गई एवं विष्णु ने मुझे सौंप दी। हे सुव्रते! ऐसा कार्य फिर नहीं होगा।

सावित्रीजी ने जब यज्ञ-मण्डप में ब्रह्माजी के साथ गायत्री को भी बैठी हुई देखा तो आगबबूला हो गयीं और बहुत रुष्ट हुईं। सावित्री जी ने ब्रह्माजी को अत्यन्त कठोर शब्दों में झिड़का और उसी समय ब्रह्माजी को शाप दिया कि तुम्हारी इस कार्त्तिकी पूजा के अतिरिक्त पूजा नहीं होगी। इसी प्रकार से विष्णु, रुद्र, इन्द्रादि देवों को तथा ब्राह्मणों को भी कुपित हुई सावित्रीजी ने पृथक्-पृथक् शाप दिये। तदनन्तर सब ही देवताओं ने विभिन्न प्रकार से सावित्रीजी की स्तुति की, तब वह प्रसन्न हो सकीं और यज्ञ पूर्ण हो सका।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय १३-१८ के आधार पर)

भगवान् ब्रह्माजी के मुख्य क्षेत्र पुष्कर का परिचय, माहात्म्य तथा भारत में ब्रह्माजी के अन्य मन्दिरों एवं मूर्तियों का परिचय

सोपान १५

(१) ब्रह्मा-मन्दिर तथा पुष्कर परिचय—

पश्चिमी रेलवे की अहमदाबाद - दिल्ली लाइन पर अजमेर जंक्शन स्टेशन है। अजमेर राजस्थान के बड़े नगरों की गणना में आता है। अजमेर से पुष्कर सात मील दूर है। पक्की सड़क है। अजमेर से पुष्कर के लिये बसें मिलती हैं। अजमेर में अनेक धर्मशाला तथा होटल हैं। पुष्कर में भी कई धर्मशालाएँ हैं। पुष्कर सरोवर के किनारों पर अनेक पक्के घाट बने हुए हैं।

पुष्कर सरोवर तीन हैं, ज्येष्ठ (प्रधान) पुष्कर, मध्य बूढ़ा पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर। ज्येष्ठ पुष्कर के देवता ब्रह्माजी हैं, मध्य पुष्कर के देवता भगवान् विष्णु है और कनिष्ठ पुष्कर के देवता रुद्र हैं।

ज्येष्ठ (मुख्य) पुष्कर से दो मील दूर मध्य (बूढ़ा) तथा कनिष्ठ पुष्कर हैं। बूढ़ा पुष्कर का सरोवर विशाल है।

पुष्कर में सरस्वती नदी के स्नान का सर्वाधिक महत्त्व है। यहाँ सरस्वती का नाम प्राची सरस्वती है। यहाँ यह पांच नामों में बहती हैं—१—सुप्रभा, २—काञ्चना, ३—प्राची, ४—नन्दा और ५—विशालिका। पुष्कर का स्नान कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को सर्वाधिक पुण्यप्रद माना गया है। कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक मेला रहता है।

पुष्कर सरोवर से एक ओर पर्वत की चोटी पर सावित्री देवी का मन्दिर है। जिसमें तेजोमयी सावित्री देवी की प्रतिमा (मूर्ति) है। दूसरी ओर दूसरी पहाड़ी की चोटी पर गायत्री मन्दिर है। यह गायत्री मन्दिर ५१ शक्तिपीठों में से एक हैं। यहाँ सती का मणिबन्ध गिरा था।

पुष्कर तीर्थ से कुछ दूर यज्ञ पर्वत है। यज्ञ पर्वत के पास अगस्त्य ऋषि का आश्रम है और अगस्त्य-कुण्ड है। पुष्कर में स्नान करके अगस्त्य कुण्ड में स्नान करने से ही पुष्कर की यात्रा पूर्ण मानी जाती है। यज्ञ पर्वत के ऊपर से निकलते जल स्रोत का उद्गम परम पवित्र माना जाता है। उसका दर्शन ही पापनाशक माना गया है। यहाँ गोमुख से पानी गिरता है। यज्ञ पर्वत के नीचे एक स्थान पर नाग तीर्थ है, वहाँ नागकुण्ड है। नागपञ्चमी को नाग कुण्ड में स्नान करके दूध

चढ़ाने का माहात्म्य है। यहाँ नागकुण्ड, चक्रकुण्ड, सूर्यकुण्ड, पद्मकुण्ड तथा गङ्गा-कुण्ड है।

पुष्कर नगर में तथा पुष्कर सरोवर के किनारे अनेक मन्दिर हैं। पुष्कर में मुख्य मन्दिर श्री ब्रह्माजी का है, यह सरोवर से थोड़ी ही दूरी पर है। मन्दिर में चतुर्मुख ब्रह्माजी की मूर्ति विराजमान है। पास में ही सावित्री-गायत्री भी हैं। मन्दिर में ही एक ओर सनकादि की मूर्त्तियां हैं। एक मण्डप में वहाँ नारदजी की मूर्ति है। एक ओर हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र की तथा दूसरी ओर हाथी पर चढ़े हुए कुबेर की मूर्तियां हैं। दो मण्डपों में शिवजी की मूर्तियां भी वहां स्थापित हैं, इनमें एक मण्डप में जाने के लिये कुछ सीढ़ियों द्वारा गुफा के रूप में नीचे जाना होता है। पुष्कर सरोवर से ब्रह्माजी के मन्दिर जाते हुए रास्ते में ही श्री गणेशजी महाराज का मन्दिर भी आता है। पुष्कर में एक मन्दिर श्रीबद्रीनारायणजी का है। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर वाराह भगवान् का था, जो मुसलमान बादशाहों के समय में नष्ट कर दिया गया था। अब वहाँ दूसरा वाराह भगवान् का मन्दिर बाद का बनाया हुआ है। यहाँ बस्ती के बाहर आत्मेश्वर महादेव का मन्दिर भी मुख्य मन्दिरों में है, इसको यहाँ के लोग कपालेश्वर तथा अटपटेश्वर महादेव भी कहते हैं। इस मन्दिर में जाने के लिये गुफा के समान रास्ते से होकर जाना पड़ता है। इन मन्दिरों के अतिरिक्त श्रीरमावैकुण्ठनाथ का मन्दिर उत्तम कलापूर्ण बना हुआ है। इसको श्रीरङ्गजी का मन्दिर भी कहते हैं। पुष्कर के पास शुद्ध वापी नाम का गया-कुण्ड है। यहाँ पर लोग श्राद्ध करते हैं।

पुष्कर माहात्म्य

दुष्करं पुष्करं गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः।
दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम्॥
त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च।
पुष्कराण्यादि सिद्धानि न विद्मस्तत्र कारणम्॥
(पद्मपुराण, आदि खं. ११।३४-३५, महाभारत; वन. ८२।८३,३७)

'पुष्कर में जाना बड़ा कठिन है (बड़े सौभाग्य से ही प्राप्त होता है।) पुष्कर में तपस्या करना दुष्कर है। पुष्कर में दान करना भी दुष्कर है और पुष्कर में वास करना तो और भी दुष्कर है। पापों को नाश करने वाले तीन देदीप्यमान तीन पुष्कर क्षेत्र हैं। इनमें सरस्वती बहती है। ये आदि काल से सिद्धतीर्थ हैं। इनके तीर्थ होने का कोई (लौकिक) कारण ज्ञात नहीं होता।'

पुष्कर समस्त तीर्थों के गुरु माने जाते हैं अर्थात् प्रयाग समस्त तीर्थों के राजा हैं और पुष्कर समस्त तीर्थों के गुरु हैं। पुष्कर की गणना पञ्चतीर्थों में व पञ्च सरोवरों में की जाती है।

यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु पुरोषोत्तमः।
तथैव पुष्करं राजंस्तीर्थानामादिरुच्यते॥

यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रमुपाचरेत् ।
कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव तत् ।।
(पद्मपुराण-आदि. ११ महाभारत, तीर्थ पा. ८२)

'जिस प्रकार देवताओं में मधुसूदन सर्वश्रेष्ठ—हैं, वैसे ही तीर्थों में पुष्कर आदि तीर्थ हैं। चाहे कोई सौ वर्षों तक नियमित रूप से अग्निहोत्र की उपासना करे या कार्त्तिक की पूर्णिमा को एक रात पुष्कर में वास करे, दोनों का समान ही फल है।'

महाभारत और पुराण शास्त्रों में अनेक तीर्थों के माहात्म्य फल का वर्णन प्राप्त होता है। पुष्कर तीर्थ के लिये लिखा है—

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो ! प्राचीन काल में राजा युधिष्ठिर के साथ जो देवर्षि नारद का संवाद हुआ था, उसका वर्णन करता हूँ, आप लोग श्रवण करें। महारथी पाण्डवों के राज्य का अपहरण हो चुका था। वे द्रोपदी के साथ वन में निवास करते थे। एक दिन उन्हें परम महात्मा देवर्षि नारदजी ने दर्शन दिया। पाण्डवों ने उनका स्वागत-सत्कार किया। नारदजी ने उनकी की हुई पूजा स्वीकार करके युधिष्ठिर से कहा—धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ! तुम क्या चाहते हो ? यह सुनकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर ने भाइयों सहित हाथ जोड़कर देवतुल्य नारदजी को प्रणाम किया और कहा—'महाभाग ! आप सम्पूर्ण लोकों द्वारा पूजित हैं। आपके सन्तुष्ट हो जाने पर मैं अपने को कृतार्थ मानता हूँ—मुझे किसी बात की आवश्यकता नहीं है। मुनिश्रेष्ठ ! जो तीर्थयात्रा में प्रवृत्त होकर समूची पृथ्वी की परिक्रमा करता है, उसको क्या फल मिलता है ? ब्रह्मन् ! इस बात को आप पूर्णरूप से बतलाने की कृपा करें।'

नारदजी ने कहा—राजन् ! पहले की बात है, राजाओं में श्रेष्ठ दिलीप धर्मानुकूल व्रत का नियम लेकर गङ्गाजी के तटपर मुनियों की भाँति निवास करते थे। कुछ काल के बाद एक दिन जब महामना दिलीप जप कर रहे थे, उसी समय उन्हें ऋषियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी का दर्शन हुआ। महर्षि को उपस्थित देख राजा ने उनका विधिवत् पूजन किया और कहा—'उत्तम व्रत का पालन करने वाले मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपका दास दिलीप हूँ। आज आपका दर्शन पाकर मैं सब पापों से मुक्त हो गया।'

वसिष्ठजी ने कहा—महाभाग ! तुम धर्म के ज्ञाता हो। तुम्हारे विनय, इन्द्रिय संयम तथा सत्य आदि गुणों से मैं सर्वथा संतुष्ट हूँ। बोलो तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूँ ?

दिलीप बोले—मुने ! आप प्रसन्न हैं, इतने से ही मैं अपने को कृतकृत्य समझता हूँ। तपोधन ! जो (तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से) सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है, उसको क्या फल मिलता है ? यह मुझे बतलाइये।

वसिष्ठजी ने कहा—तात ! तीर्थों का सेवन करने से जो फल मिलता है,

उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। तीर्थ ऋषियों के परम आश्रय हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ। वास्तव में तीर्थसेवन का फल उसे ही मिलता है, जिसके हाथ, पैर और मन अच्छी तरह अपने वश में हों, जो विद्वान् तपस्वी और कीर्तिमान् हो तथा जिसने दान लेना छोड़ दिया हो। जो सन्तोषी, नियमपरायण, पवित्र, अहंकार शून्य और उपवास (व्रत) करने वाला हो, जो अपने आहार और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका हो, जो सब दोषों से मुक्त हो तथा जिसमें क्रोध का अभाव हो, जो सत्यवादी, दृढ़प्रतिज्ञ तथा सम्पूर्ण भूतों के प्रति अपने-जैसा भाव रखने वाला हो, उसी को तीर्थ का पूर्ण फल प्राप्त होता है। राजन् ! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते, क्यों कि उसमें नाना प्रकार के साधन और सामग्री की आवश्यकता होती है। कहीं कोई राजा या धनवान् पुरुष ही यज्ञ का अनुष्ठान कर पाते हैं। इसलिए मैं तुम्हें वह शास्त्रोक्त कर्म बतला रहा हूँ, जिसे दरिद्र मनुष्य भी कर सकते हैं तथा जो पुण्य की दृष्टि से यज्ञ फलों की समानता करने वाला है, उसे तुम ध्यान देकर सुनो। पुष्कर तीर्थ में जाकर मनुष्य देवाधिदेव के समान हो जाता है। महाराज ! दिव्य शक्ति से सम्पन्न देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षिगण वहां तपस्या करके महान् पुण्य के भागी हुए हैं, जो मनीषी पुरुष मन से भी पुष्कर तीर्थ के सेवन की इच्छा करता है, उसके सब पाप धुल जाते हैं तथा वह स्वर्गलोक में पूजित होता है। इस तीर्थ में पितामह ब्रह्माजी सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। महाभाग ! पुष्कर में आकर देवता और ऋषि भी महान् पुण्ययुक्त हो परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। जो वहां स्नान करके पितरों और देवताओं के पूजन में प्रवृत्त होता है, उसके लिये मनीषो विद्वान् अश्वमेध से दस गुने पुण्य की प्राप्ति बतलाते हैं। पुष्कर के वन में जाकर एक ब्राह्मण को भी भोजन कराता है, वह उसके पुण्य से ब्रह्मधाम में स्थित अजित लोकों को प्राप्त होता है। जो सायंकाल और प्रातः काल में हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थ का चिन्तन करता है, वह सब तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त करता है। पुष्कर में जाने मात्र से, स्त्री हो चाहे पुरुष हो, उसके जन्म भर के किये हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओं के आदि हैं, उसी प्रकार पुष्कर भी समस्त तीर्थों के आदि बतलाये गये हैं। पुष्कर में नियम और पवित्रतापूर्वक बारह वर्ष तक निवास करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है और अन्त में ब्रह्मलोक में जाता है। कहा है –

यथा महोदधेस्तुल्यो न चान्योऽस्ति जलाशयः।
तथा वै पुष्करस्यापि समं तीर्थं न विद्यते॥

(पद्मपुराण, १२।२७३।७४)

'जैसे समुद्र के समान कोई जलाशय नहीं है, वैसे ही पुष्कर के समान कोई तीर्थ नहीं है।

जो पुरुष अपनी धर्मपत्नी सहित पुष्कर तीर्थ में जाता है और उसकी पत्नी सन्ध्या करने के लिये पूजन का जलपात्र पुष्कर के जल से भरकर अपने पतिदेव को समर्पण करती है, उस जल के द्वारा जो मनुष्य सन्ध्या करके गायत्री जप कर लेता है, उसको सम्पूर्ण वेदों के अध्ययन का फल प्राप्त हो जाता है।

पुष्कर तीर्थ के पवित्र जल को झारी, पात्र अथवा मिट्टी के करवे (पात्र) में लेकर सायंकाल में एकाग्र मन से प्राणायामपूर्वक सन्ध्योपासन करना चाहिये। इस प्रकार से जो सन्ध्या करने का फल है, उसको अब आगे श्रवण करो। इस प्रकार के जल के द्वारा सन्ध्या करने वाले पुरुष को एक ही दिन की सन्ध्या करने से बारह वर्षों तक सन्ध्योपासन करने का फल प्राप्त हो जाता है। पुष्कर में स्नान करने पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। दान करने से उसके दस गुने और उपवास करने पर अनन्तगुने फल की प्राप्ति होती है। यह बात मैंने बहुत सोच-विचार कर कही है। पुष्कर तीर्थ में स्नान करने के पश्चात् अपने ठहरने के स्थान (डेरे) पर आकर शास्त्रीय विधि के अनुसार पिण्डदानपूर्वक पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करने से उसके पितर ब्रह्मा के एक दिन (एक कल्प) तक तृप्त रहते हैं। अपने ठहरने के स्थान (डेरे) पर आकर पिण्डदान करने वाले को तीर्थ की अपेक्षा आठ गुना अधिक पुण्य होता है, क्योंकि वहां द्विजातियों द्वारा दिये जाते हुए पिण्डदान पर नीच पुरुषों की दृष्टि नहीं पड़ती। एकान्त और सुरक्षित गृह में ही पितरों का श्राद्ध करने का विधान है, क्योंकि बाहर नीच पुरुषों की दृष्टि से दूषित हो जाने पर वह पिण्डदान पितरों को नही पहुँचता है। आत्म कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरुष को गुप्तरूप से ही पिण्डदान श्राद्ध करना चाहिये। मनुजी का यह भी कथन है—

तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कथंचन।
अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तु मनुरब्रवीत।। (मनुस्मृति)

'तीर्थों में श्राद्ध के लिये ब्राह्मण की परीक्षा नहीं करना चाहिये। जो भी अन्न की इच्छा से अपने पास आ जाय, उसे भोजन करा देना चाहिये।

श्राद्ध के योग्य समय हो या न हो—तीर्थ में पहुँचते ही मनुष्य को सर्वदा ही स्नान, तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये। पिण्डदान करना तो बहुत ही उत्तम होता है, उसके द्वारा पितर अधिक प्रसन्न होते हैं। जब कोई अपने वंश का व्यक्ति तीर्थ में जाता है, तब पितर बड़ी आशा से उसकी ओर देखते हैं, उससे जल पाने की अभिलाषा रखते हैं, अतः इस कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये और यदि दूसरा कोई इस कार्य को करना चाहता हो तो उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। ऐसे काम में विघ्न करने वाले को पाप लगता है। कहा भी है—

कृते युगे पुष्कराणि त्रैतायां नैमिषं स्मृतम्।
द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा समाश्रयेत्।।

....

यदन्यत्रकृतं पापं तीर्थे तद्याति लाघवम् ।
न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित् पापं व्यपोहति ।।

(पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, २९।२२८-२२९)

'सत्ययुग में पुष्कर का, त्रेता में नैमिषारण्य का, द्वापर में कुरुक्षेत्र तथा कलियुग में गङ्गाजी का आश्रय लेना चाहिये । अन्य स्थानों में किया हुआ पाप तीर्थ में जाने पर कम हो जाता है, किन्तु तीर्थ स्थानों में किया हुआ पाप अन्यत्र कहीं भी दूर नहीं हो सकता है ।'

जो सवेरे और शाम को हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थों में आचमन करने का फल प्राप्त हो जाता है । जो पुष्कर में इन्द्रिय-संयमपूर्वक रहकर प्रातः काल और सन्ध्या के समय आचमन करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त होता है तथा वह ब्रह्मलोक को जाता है । जो बारह वर्ष, बारह दिन, एक मास अथवा पक्ष भर भी पुष्कर में निवास करता है, वह परमगति को प्राप्त करता है ।

इस पृथ्वी पर करोड़ों तीर्थ हैं । वे तीनों सध्याओं के समय पुष्कर में उपस्थित होते हैं । पिछले हजारों जन्मों के तथा जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त वर्तमान जीवन के जितने भी पाप हैं, उन सबको पुष्कर में एक बार स्नान करके ही मनुष्य भस्म कर डालता है । पूर्व जन्मों के अथवा इस जन्म के किसी विशिष्ट पुण्य के प्रभाव से ही मनुष्य पुष्कर तीर्थ में पहुँचता है और अवशेष पुण्य के प्रभाव से ही पुष्कर तीर्थ में स्नान, पुष्कर सरोवर के जल से सन्ध्या, गायत्री जप, वेदपाठ, तपस्या, देवदर्शन, दान, धर्मपुण्य, ब्राह्मण भोजन पितरों का श्राद्ध, पिण्डदान, भूखों को भोजन कराने के फल को प्राप्त करता है ।

समस्त तीर्थ गुरु पुष्कर महाराज को बारम्बार प्रणाम ।

(पद्मपुराण-सृष्टिखण्ड, आदि खण्ड; नारदपुराण-उत्तभाग; महाभारत वन, तीर्थ यात्रा पर्व के आधार से)

ब्रह्माजी के मुख्य तीर्थ पुष्कर के अतिरिक्त ब्रह्माजी के मन्दिरों तथा ब्रह्माजी की स्थापित मूर्तियों के स्थानों का परिचय

(२) **भीमगोडा** – हरिद्वार में हरकी पैडी से पहाड़ के नीचे होकर एक सड़क ऋषिकेश को जाती है, उसी पर भीमगोडा नामक तीर्थ है । पहाड़ी के नीचे एक मन्दिर है । उसके आगे एक चबूतरा तथा कुण्ड है । कुण्ड में पहाड़ी सोते का जल आता है । यहाँ के लोगों का कहना है कि भीमसेन ने यहाँ तपस्या की थी । उनके गोडा (पैरों के घुटने) टेकने से यह कुण्ड बन गया था और इसी कारण इसका नाम भीमगोडा पड़ गया । यहाँ स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है । यहाँ पर ब्रह्माजी का मन्दिर है ।

३) **कुरुक्षेत्र**—कुरुक्षेत्र की जो शास्त्रवर्णित सीमा निर्धारित है, उसी क्षेत्र में थाने-

सर शहर के पास नाभि-कमल-तीर्थ है। कहा जाता है, इसी स्थान पर भगवान् विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुए कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। यहाँ पर यात्री स्नान, जप, तप तथा भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी का पूजन करके अनन्त फल के भागी होते हैं। सरोवर पक्का बना हुआ है, वहाँ ही ब्रह्माजी सहित भगवान् विष्णु का मन्दिर है।

४) **मथुरा-वृन्दावन**—मथुरा-वृन्दावन की ब्रज क्षेत्र की परिक्रमा ८४ कोस की मानी जाती है। प्रति वर्ष वर्षा-शरद में यह परिक्रमा अनेक यात्रियों की परिक्रमा मण्डलियाँ बन कर की जाती है। इस परिक्रमा में ब्रज के ९३ तीर्थस्थल आ जाते हैं। इन ९३ तीर्थों में एक स्थान कामवन नाम का भी आता है। इस कामवन के आस-पास ८४ तीर्थ और बतलाये गये हैं। इन चौरासी तीर्थों में एक ब्रह्माजी का मन्दिर भी हैं। उसके पास एक ब्रह्मकुण्ड भी है।

५) **रुनकता**--आगरा से मथुरा जाने वाली पक्की सड़क पर मथुरा से दस मील दूर 'रुनकता' ग्राम है। यहां एक त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) का प्राचीन मन्दिर है।

६) **वागरमऊ**—कानपुर सेण्ट्रल से जो लाइन बाला मऊ जाती है। इसी लाइन पर वागरमऊ स्टेशन आता है। यहां तन्त्रशास्त्र की विधि से निर्मित अद्‌भुत मंदिर है। इस मन्दिर का नाम राजराजेश्वरी श्रीविद्या-मन्दिर है। मुख्य मन्दिर के बरामदे से लगे नीचे दोनों ओर दो शिव मन्दिर हैं। पूर्व की ओर वाले मन्दिर में लिङ्ग मूर्ति में श्वेत, रक्त, पीत तथा चन्द्र बिन्दु आदि के चिह्न हैं। पश्चिम की ओर वाले मन्दिर में रक्तवर्ण पञ्चमुख चतुर्भुज शिवमूर्ति है। मुख्य मन्दिर में अष्ट धातु निर्मित जगदम्बा की मनोहर मूर्ति है। आसन के नीचे चतुर्दल कमल पर ब्रह्माजी स्थित हैं। कमल की चारों पंखुड़ियों पर क्रमशः 'वं शं षं सं' यह बीजाक्षर अङ्कित हैं। इसके पश्चात् षड्‌दल कमल पर विष्णु भगवान् स्थित हैं। इसके कमल की छह पंखुड़ियों पर—'वं भं मं यं रं लं' ये छह अक्षर उत्कीर्ण हैं। बीच में षोडशदल कमल पर सदाशिव विराजमान है। इसके कमल पत्रों पर 'अ' से 'अः' तक सोलह स्वर-वर्ण अङ्कित हैं। इसके बायीं ओर नीलवर्ण दशदल कमलपत्रो पर 'डं' से 'फं' तक के वर्णों के साथ रुद्र की मूर्ति है। आगे वाम पार्श्व में द्वादशदल कमल पर 'कं' से 'ठं' पर्यन्त वर्ण तथा ईश्वर मूर्ति है। इन पञ्च देवताओं के ऊपर श्वेत कमल है। उसमें 'हं क्षं' बीजाक्षर हैं। तथा सदाशिव की नाभि से निकले हुए कमल पर जगदम्बा की मूर्ति विराजमान है। कुण्डलिनी योग के आधार पर यह अपने प्रकार का बना हुआ एक ही मन्दिर है।

७) **बक्सर** - पूर्वी रेलवे की मुगलसराय-पटना लाइन पर बक्सर स्टेशन है। यह बक्सर अच्छा नगर व बाजार है। इसके पास ही चरित्रवन महर्षि विश्वामित्र का यज्ञस्थल है। यहां कई एक यज्ञकुण्ड देखे जाते हैं, कई एक यज्ञकुण्ड पृथ्वी

में दबे हुए भी कई बार निकल आते हैं। चरित्रवन के पूर्व में ताडका-नाला है। इसके आगे यहाँ गंगाराम रेखा घाट है। घाट के ऊपर रामेश्वरम् मन्दिर है। और इसके पास ही दूसरा श्रीराममन्दिर है, जिसके घेरे में एक भूगर्भ स्थान में ब्रह्माजी की मूर्ति स्थापित है। बक्सर की पञ्चकोशी परिक्रमा होती है, उस परिक्रमा में कई देव-दर्शन, तीर्थ तथा अनेक ऋषियों के प्राचीन आश्रम स्थान आ जाते हैं।

८) **गया** दिल्ली से कलकत्ता जाने वाली रेलवे लाइन पर गया स्टेशन है। गयाजी में विष्णु पद मन्दिर से कुछ दूर पर फल्गु नदी के किनारे पर गदाधर भगवान् का मन्दिर है। इसमें गदाधर भगवान् की चतुर्भुज मूर्ति है। इसके जगमोहन में श्रीराम, लक्ष्मण, सीताजी की तथा ब्रह्माजी की मूर्तियां हैं। विष्णु पद मन्दिर से आधी मील दूर उत्तर फल्गु के किनारे पर गायत्री घाट तथा गायत्री मन्दिर हैं।

९) **ब्रह्मयोनि (गया)** -गयाजी से दो मील दूर बुद्ध गया की ओर ब्रह्मयोनि नाम का पर्वत है। इस पर्वत पर ४०० सीढियां चढ़ने पर ब्रह्माजी का मन्दिर मिलता है। इस पर्वत पर दो पत्थर गुफा के ढंग से पड़े हैं। इन्हें ब्रह्मयोनि और मातृयोनि कहा जाता है। पर्वत की चोटी से कुछ दूर नीचे एक ब्रह्म-कुण्ड नामक सरोवर है। ब्रह्मयोनि पर्वत के नीचे दो कुण्ड और भी हैं। एक सावित्री कुण्ड दूसरा सरस्वती कुण्ड है। यहाँ पर सावित्री मन्दिर है। इसके पास एक कर्मनाशा सरोवर है। गया से तीन-चार मील दूर सरस्वती नदी है। वहाँ सरस्वती मन्दिर भी है।

१०) **वैद्यनाथ धाम (बिहार प्रान्त)** पूर्वी रेलवे की हवड़ा-पटना लाइन पर जसीडीह स्टेशन है। जसीडीह से एक रेलवे लाइन वैद्यनाथधाम स्टेशन तक जाती है। स्टेशन से वैद्यनाथधाम एक मील दूर है। रिक्शा तांगा सवारी मिलती हैं। वैद्यनाथ मुख्य मन्दिर के घेरे में ही इक्कीस मन्दिर हैं। इन इक्कीस मन्दिरों की गणना में एक ब्रह्माजी का मन्दिर भी है।

११) **भुवनेश्वर (उड़ीसा)**—हवड़ा - वाल्टेयर लाइन पर भुवनेश्वर स्टेशन है। भुवनेश्वर (उड़ीसा की) राजधानी है। तांगा रिक्शा सवारी मिलती हैं। यह काशी के समान ही शिव मन्दिरों की महानगरी है। इस क्षेत्र का पुराणों में एकाग्रक्षेत्र के नाम से वर्णन आता है। किसी-किसी ग्रन्थ में शाम्भव क्षेत्र के नाम से भी वर्णन मिलता है। यहां का मुख्य मन्दिर लिङ्गराज मन्दिर है, वैसे यहां सैकड़ों ही मन्दिर हैं। यहाँ विन्दु सरोवर तीर्थ पर अनन्त वासुदेव मन्दिर है। ये यहाँ के अधिष्ठातृ-देवता बतलाये गये हैं। इस विन्दु सरोवर के चारों ओर बहुत से मन्दिर हैं। उनमें पश्चिम तट पर ब्रह्माजी का मन्दिर है।

१२) **केशवराय पाटण**—यह नगर राजस्थान के कोटा डिवीजन में है। पश्चिमी

रेलवे की बम्बई-दिल्ली लाइन पर बूंदी रोड़ स्टेशन है। वहाँ से केशवराय पाटण ३ मील दूर है। मोटर बस मिलती है। यहाँ पर केशवराय विष्णु तीर्थ है। नदी पर पक्के घाट बने हुये हैं। यहाँ नदी से ८० सीढ़ी चढ़ने पर केशवराय मन्दिर पहुँचते हैं। यहाँ पर केशवराय चतुर्भुज रूप में स्थित हैं। मुख्य मन्दिर के चारों ओर गणेश, शेष, अष्टभुजा, सूर्य, गङ्गाजी आदि अनेक देवी-देवता छोटे मण्डपों में विराजमान हैं। यहां पाण्डव अज्ञातवास में रहे थे। यहाँ पाण्डव यज्ञशाला के पास, एक पाण्डव गुफा तथा दो मन्दिर हैं। पाँचों पाण्डवों द्वारा पाँच शिव-लिङ्ग इन्हीं दोनों मन्दिरों में स्थापित हैं। इन्हीं मन्दिरों में ब्रह्मा, गणेश, दुर्गा तथा शनि की मूर्तियां भी स्थापित हैं। केशवराय मन्दिर के पास ही प्राचीन जम्बूमार्गेश्वर शङ्कर का मन्दिर भी है तथा इनके पास एक मण्डप में हनुमानजी और दूसरे मण्डप में अञ्जनी माता की प्रतिमा है। प्राचीन ग्रन्थों में इस क्षेत्र का नाम जम्बू अरण्य क्षेत्र है। यह चर्मण्वती (चम्बल) नदी के तट पर है।

१३) **ओसियाँ**—राजस्थान में जोधपुर-पोकरण रेलवे लाइन पर ओसियां स्टेशन है। स्टेशन से ओसियाँ ग्राम आधा मील दूर है। यहां प्राचीन समय में बहुत मन्दिर थे। अब वहां अच्छी हालत में सचिया माता का मन्दिर है। यहां के मन्दिरों में प्रमुख सूर्य मन्दिर तथा पिप्पलाद माता के मन्दिर माने जाते हैं, जो उत्तम कला में निर्मित हैं। प्राचीन मन्दिरों के अनेक भग्नावशेष हैं। यहां शिव, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, अर्द्धनारीश्वर, हरिहर, दिक्पाल, श्रीकृष्ण तथा अनेक देवी-देवताओं की बहुत सी कलापूर्ण मूर्तियाँ हैं। ओसियाँ से जोधपुर जाने वाली सड़क के दोनों ओर बहुत से प्राचीन मन्दिर हैं। इनमें अत्यन्त कला पूर्ण अनेक मूर्तियाँ हैं।

१४) **खेड़-जोधपुर**—राजस्थान में उत्तर रेलवे लूनी-मुनाबाब लाइन पर बालोतरा स्टेशन से ५ मील दूर पश्चिम लूनी नदी के किनारे पर है। बालोतरा से खेड़ तक पक्की सड़क है। किसी समय यह खेड़ एक विशाल नगर तथा तीर्थ था। अनेक प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेष इसके प्रमाण है। अब वहाँ रणछोड़-रायजी का विशाल मन्दिर है। उसमें भगवान् श्रीकृष्ण की चतुर्भुज संगमरमर की सुन्दर मूर्ति है। मन्दिर के गर्भगृह के परिक्रमा मार्ग में आठों दिक्पाल, वाराह, नृसिंह, गणेश, दत्तात्रेय, सूर्य एवं चन्द्रमा की मूर्तियाँ हैं। गवाक्षों के स्तम्भों पर अष्ट सिद्धियों की कलापूर्ण मूर्तियां थीं, उनमें से कई मूर्तियाँ टूट गयी हैं। सभामण्डप से बाहर ब्रह्माजी तथा शंकरजी के मन्दिर है। सामने दीवार पर शेषशायी भगवान् विष्णु की मूर्ति है। उत्तर में एक मन्दिर में श्री हनुमानजी की विशाल मूर्ति है। दक्षिण में एक टूटे हुए मन्दिर में पंचमुख शिव-लिङ्ग है। मन्दिर के चौक में देवी मूर्तियाँ है।

१५) **निम्बेश्वर**—अहमदाबाद-दिल्ली लाइन पर मारवाड़ जंकशन से ४१ मील पहले फालना स्टेशन है। फालना स्टेशन से निम्बेश्वर ३ मील दूर पक्की सड़क का

मार्ग है। यहाँ पर भगवान् शंकर का मन्दिर है। इन शंकरजी को ही निम्बेश्वर कहते हैं। यहाँ धर्मशाला भी है। शिवरात्रि को मेला लगता है। इस मन्दिर में ब्रह्माजी की भी मूर्ति है।

१६) **शियाली**——दक्षिणी रेलवे की एक लाइन मद्रास से चिदम्बरम् जाती है। चिदम्बरम् दक्षिण भारत के प्रमुख तीर्थों की गणना में है। शंकरजी का पञ्च-तत्त्व लिङ्गों में आकाश-तत्त्व-लिङ्ग चिदम्बरम् में ही माना गया है। मन्दिर स्टेशन से १ मील दूर है। यह मन्दिर बहुत बड़ा तथा अत्यन्त कलापूर्ण है। यह मन्दिर लगभग एक सौ बीघा भूमि में है। इस मन्दिर में अनेक देवी - देवताओं के मन्दिर हैं। इस चिदम्बरम् से बारह मील दूर शियाली स्टेशन है। स्टेशन से थोड़ी दूर पर 'ताडारम्' नामक भगवान् विष्णु का सुन्दर मन्दिर है तथा स्टेशन से १ मील दूर पर ब्रह्मपुरीश्वर शिव मन्दिर है। यह मन्दिर भी विशाल है। इसमें मन्दिर के घेरे में भी कई एक छोटे-बड़े मन्दिर हैं। इस में एक घेरे के आगे बहुत बड़ा मन्दिर है, जिस में ब्रह्मपुरीश्वरम् शिवलिङ्ग है। परिक्रमा में भूकलासनाथ, परमेश्वरम्, विष्णु, सरस्वती, लक्ष्मी, सत्यनारायण तथा ब्रह्माजी की भी मूर्तियाँ हैं।

१७) **नागपत्तनम् नेग्गपटम्)** - तंजोर-नागोर रेलवे लाइन पर नेग्गपटम् स्टेशन है। यह बन्दरगाह तथा अच्छा नगर है। नगर में एक विशाल शिव-मन्दिर और एक सुन्दरराज भगवान् (विष्णु) का मन्दिर है और एक नीलायताक्षी देवी का भी मन्दिर है। यहाँ से रामेश्वरम् जहाज जाता है। यह समुद्र तट पर ब्रह्माजी का मन्दिर है। यहाँ पर ब्रह्माजी को 'पेरुमल स्वामी' कहते हैं।

१८) **मदुरा**—त्रिचनापल्ली-तूतीकोरिन लाइन (दक्षिण भारत) में त्रिचनापल्ली से ९६ मील दूर मदुरा (मधुरै नगर है। यहाँ मदुरा का मीनाक्षी मन्दिर २२ बीघा भूमि पर वृहत्कलापूर्ण भारत विख्यात मन्दिर है। पूर्ण मन्दिर, मण्डप तथा गोपुरों का वर्णन अनेक पृष्ठों में किया जा सकता है; किन्तु यहाँ लेखक का मंतव्य केवल ब्रह्माजी की प्रतिमा (मूर्ति) का परिचय ही दिखलाना है। इस मन्दिर में प्रवेश करने पर पहले एक मण्डप मिलता है। जिसमें फल, फूल की दूकानें हैं। उसको यहाँ नगर मण्डप कहते हैं। उसके आगे अष्ट शक्ति मण्डप है। वहां द्वार के दाहिने सुब्रह्मण्यम् तथा बायें गणेशजी की मूर्ति है। इससे आगे मीनाक्षीनायकम्-मण्डप है। इस मण्डप में भी अनेक प्रकार के सामान की दूकानें हैं। इस मण्डप के पीछे एक 'अंधेरा मण्डप' मिलता है। उसमें भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप, शिव, ब्रह्मा, विष्णु तथा अनसूयाजी की कलापूर्ण मूर्तियाँ हैं।

१९) **शुचीन्द्रम्** कन्याकुमारी (दक्षिण भारत) से त्रिवेन्द्रम् आने के रास्ते में ही कन्याकुमारी से ८ मील दूर पर शुचीन्द्रम् आता है। यहां भगवान् शिव का विशाल मन्दिर है। गौतम के शाप से इन्द्र को यहाँ मुक्ति मिली थी। इस

लिये इस स्थान का नाम शुचीन्द्रम् हुआ। मन्दिर के पास सुविस्तृत सरोवर है। इस शुचीन्द्रम् मन्दिर के घेरे में ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों के अलग-अलग मन्दिर हैं। तीनों मन्दिरों की परिक्रमा में अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। गोपुर के भीतर भगवान् शङ्कर तथा विष्णु के मन्दिर समान विशाल हैं। इनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है। शिव-मन्दिर में शिवलिङ्ग स्थापित है। इन्हें यहां स्थाणु कहते हैं। शिवलिङ्ग पर मुखाकृति बनी है। मन्दिर के सामने नन्दी की मूर्ति है। विष्णु मन्दिर में श्री देवी तथा भू देवी के साथ भगवान् विष्णु की चतुर्भुज मनोहर मूर्ति है। सामने गरुड़जी की मूर्ति है। इस मन्दिर में ही एक स्थान पर श्री हनुमानजी की बहुत बड़ी मूर्ति स्थापित है। इनके अतिरिक्त शिव मन्दिर में पार्वती, नटराज, सुब्रह्मण्यम् तथा गणेश और विष्णुमन्दिर में लक्ष्मीजी एवं भगवान् विष्णु की चल प्रतिमाएँ हैं। इस मन्दिर के घेरे में ही भगवान् ब्रह्माजी का पृथक् मन्दिर है। वह भी प्रमुख मन्दिर है।

२०) **त्रिवेन्द्रम् दक्षिण भारत)**—त्रिवेन्द्रम् से ३ मील पर 'तिरुतलम्' गाँव है। इस स्थान पर एक घेरे के भीतर कई मन्दिर हैं। यहाँ मत्स्य तीर्थ नामक सरोवर है। एक मन्दिर में भगवान् के मुखारविन्द के दर्शन हैं। अन्य मन्दिरों में मत्स्यावतार, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा परशुरामजी की मूर्तियाँ विराजमान हैं।

२१) **भृगु आश्रम आबू पर्वत** - —पश्चिम रेलवे की अहमदाबाद-दिल्ली लाइन पर आबूरोड़ स्टेशन से आबू पर्वत १७ मील दूर है। पक्की सड़क हैं, मोटर बस चलती है। आबू पर्वत १४ मील लम्बा और दो से चार मील चौड़ा है। इस पर्वत पर अनेक तीर्थ, अनेक आश्रम, अनेक मन्दिर हैं और महान् कलापूर्ण भारत विख्यात पाँच जैन मन्दिर भी हैं जो देलवाड़ा जैन मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस पर्वत में एक भृगु आश्रम व गोमती कुण्ड है। यह स्थान रेवती कुण्ड से १ मील दूर है। यहां शंकरजी का मन्दिर है तथा ब्रह्माजी की मूर्ति भी स्थापित है।

२२) **पिण्डारा**—द्वारकाधाम (गुजरात) द्वारका की मोक्षप्रदा सात पुरियों में गणना है। चारधामों में यह एक धाम है। द्वारकाधाम में रणछोड़राय का मन्दिर है। द्वारका दो हैं। एक गोमती द्वारका, दूसरी बेट द्वारका है। गोमती द्वारका समुद्र के किनारे पर है। बेट द्वारका समुद्र में गोमती द्वारका से २० मील दूर कच्छ की खाड़ी में है। यह बेट (द्वीप) होने से इसको बेट द्वारका कहते हैं। द्वारका से २० मील दूर पिण्डारा स्थान है। इस क्षेत्र का प्राचीन नाम पिण्डारक या पिण्डतारक है। द्वारका-जामनगर रेलवे लाइन पर जाम नगर से ५४ मील दूर भोपाल का स्टेशन है। वहाँ से पिण्डारा १२ मील दूर है। मोटर बस चलती है। यहाँ एक सरोवर है। इस सरोवर के तट पर

यात्री श्राद्ध करके पिण्ड सरोवर में डालते हैं। वे पिण्ड सरोवर में डूबते नहीं, जल पर तैरते रहते हैं। यहाँ कपाल मोचन महादेव, मोटेश्वर महादेव तथा ब्रह्माजी के मन्दिर हैं।

२३) **खेड़ब्रह्मा**—ग्रहमदाबाद से एक रेलवे लाइन खेड़ब्रह्मा तक जाती है। इस खेड़ब्रह्मा में हिरण्याक्षी नदी बहती है। नदी के पास ब्रह्माजी का मन्दिर है। उसमें चतुर्मुख ब्रह्माजी की मूर्ति है। पास में ही एक कुण्ड भी है। इसके पास ही हिरण्याक्षी, कोसाम्बी ग्रौर भीमाक्षी नदियों का संगम है। इसको यहां त्रिवेणी कहते हैं। नदी के पार सामने के तट पर भृगु ग्राश्रम है। ब्रह्माजी के मन्दिर से ग्राधी मील दूर देवी मन्दिर है। वहां मानसरोवर तालाव व एक धर्मशाला है। वहां के लोगों का कहना है कि यह प्राचीन ब्रह्मक्षेत्र है इसी का ग्रपभ्रंस खेड़ब्रह्म हो गया। यह ग्राम ब्रह्माजी का ही बसाया हुग्रा है। यहां ब्रह्माजी ने यज्ञ भी किया था।

२४) **शुक्लतीर्थ**—पश्चिमी रेलवे की बम्बई-वड़ौदा लाइन पर भरुंच स्टेशन है। भरुंच प्रसिद्ध नगर है। यहां नर्मदा के किनारे-किनारे बहुत से मन्दिर हैं। भरुंच से १० मील दूर शुक्ल-तीर्थ है। भरुंच से यहां तक पक्की सड़क है। मोटर-बस चलती हैं। 'नर्मदा रिवर साइड' स्टेशन से पुल द्वारा नर्मदा पार करके यहां पहुंच सकते हैं। नर्मदा का यह श्रेष्ठ तीर्थ है। यहां का प्रधान मन्दिर शुक्लनारायण मन्दिर है। नारायण की श्वेत चतुर्भुज सुन्दर मूर्ति है। उनके दोनों ग्रोर ब्रह्मा ग्रौर शंकर की मूर्तियां हैं।

२५) **हलवद**—हलवद ग्राम जिला सुरेन्द्रनगर (गुजरात प्रान्त) में है। बम्बई-गांधीधाम रेलवे लाइन पर हलवद स्टेशन है। स्टेशन से हलवद ग्राम कुछ ही दूर पर है। स्टेशन पर तांगा, रिक्शा, टैक्सी सवारी मिलती है। ग्रहमदाबाद, विरमग्राम, सुरेन्द्रनगर से बस-सेवा भी प्राप्त है। यहां स्टेशन के पास ही एक ब्रह्माजी का मन्दिर है। दूसरा ब्रह्माजी का मन्दिर शरणेश्वर महादेव के प्राचीन मन्दिर में है। दोनों ही देवालयों में संगमरमर पाषाण की सुन्दर कलात्मक ब्रह्माजी की मूर्तियां हैं। हलवद में ग्रौर भी देवी-देवताग्रों के कई मन्दिर हैं।

(सूचना प्रेषक—महामहोपाध्याय ग्राचार्य हरिशंकर वेणीरामजी शास्त्री)

२६) **वाराणसी**—इसको काशी तथा बनारस भी कहते हैं। यह उत्तर प्रदेश के मुख्य शहरों की गणना में ग्राता है। इसकी सप्तमोक्षदा पुरियों में भी गणना की जाती है। पूर्वोत्तर रेलवे का बनारस छावनी मुख्य स्टेशन है। यहां यात्रियों के ठहरने के लिए ग्रनेक होटल व धर्मशालाएं हैं। सब प्रकार की सवारी भी मिलती हैं। वाराणसी के ब्रह्मा घाट पर ब्रह्माजी के मन्दिर में ब्रह्माजी की प्रतिष्ठित मूर्ति स्थापित है। नियमित पूजा होती है।

(सूचना प्रेषक—श्री रंजन सूरिदेव)

२७) **विरलाग्राम (नागदा) मध्यप्रदेश**—नागदा चम्बल (चर्मवण्ती) के तट के पास ही इतिहास प्रसिद्ध बहुत प्राचीन नगर है। नागदा, दिल्ली से बम्बई जाने वाली लाइन पर एक प्रमुख स्टेशन है। नागदा से एक दूसरी लाइन उज्जैन जाती है। नागदा से बस द्वारा यात्रा करने पर उज्जैन ५५ किलोमीटर और इन्दौर १२० किलोमीटर दूर है। नागदा जंकशन से एक ओर नागदा मण्डी नगर है तथा दूसरी ओर मिल क्षेत्र है। इसका नाम विरलाग्राम है। नागदा मण्डी में कई देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। जिनमें बद्री विशाल मन्दिर दर्शनीय है।

विरलाग्राम में मिल कॉलोनियों के पास एक छोटा मन्दिर सत्यनारायण भगवान् का है, इसमें भगवान् सत्यनारायण की चतुर्भुज मूर्ति है। उनके पास लक्ष्मीजी की मूर्ति है, शिव-पार्वती तथा जगदम्बा की मूर्ति भी हैं। मुख्य मण्डप के अतिरिक्त बाहर एक मण्डप में शिव परिवार की मूर्तियां तथा दूसरे मण्डप में श्री हनुमानजी की मूर्ति है। इसके पास ही एक मन्दिर भगवान् अप्पा का है तथा दूसरा मन्दिर शिवजी का है जिसमें शिव-पार्वती की अत्यन्त सुन्दर मनोहारी दर्शनीय मूर्तियां हैं। इसी मन्दिर में ईंट-सीमेंट द्वारा निर्मित ऋद्धि-सिद्धि की १५ फुट ऊँची तथा भगवान् गणेशजी की २० फुट ऊँची एवं बारह महिने के बछड़े के बराबर (गणेशजी के वाहन) मूषक की प्रतिमाएँ अत्यन्त सुन्दर, भव्य, आकर्षक व दर्शनीय हैं। इस मन्दिर क्षेत्र में ही साईं बाबा का मन्दिर भी है।

नागदा स्टेशन से थोड़ी दूर पर एक नवनिर्मित विशाल, अत्युत्तम, सुन्दर, कलापूर्ण केवल पाषाणमय शेषशायी भगवान् का मन्दिर अपनी वास्तुकला एवं शिल्प-सौन्दर्य तथा अपनी शोभा के लिए अनुपमेय है। उक्त मन्दिर के प्रासाद की रचना ग्वालियर दुर्ग पर स्थित इतिहास प्रसिद्ध सहस्र-बाहु के मन्दिर के देवालयीय भवनों के वास्तु एवं शिल्प को इस मन्दिर में रूपायित करने के लिए प्रख्यात उद्योगपति बाबू घनश्यामदासजी विरला की प्रेरणा रही है।

इस मन्दिर का आसन भूमितल से १२ फुट ऊँचा है, मन्दिर की ऊँचाई धरातल से स्वर्ण-कलश तक ८१ फुट है। आसन की लम्बाई २०० फुट तथा चौड़ाई १२५ फुट है।

मुख्य मण्डप में आनन्दकन्द भगवान् विष्णु शेषनाग पर लेटे हुए चतुर्भुज रूप में स्थापित हैं। भगवान् विष्णु के मस्तक पर शेषनाग अपने फनों से छत्र किये हुए हैं। भगवान् विष्णु के नाभि-कमल पर ब्रह्माजी विराजमान हैं तथा लक्ष्मीजी भगवान् विष्णु की चरण-सेवारत हैं। यह समग्र प्रतिमा (मूर्ति) ६ फुट लम्बी, २ फुट चौड़ी तथा ४ फुट ऊँची एक ही संग-मरमर पत्थर पर निर्मित है। निज मण्डप के आगे अन्तराल में गङ्गा-यमुना

की प्रतिमाएँ हैं। निज मन्दिर के ईशान कोण में सीता-राम, अग्निकोण में राधा-कृष्ण, नैर्ऋत्य कोण में, गणपति, वायव्य कोण में श्री हनुमानजी तथा विष्णु भगवान् के निज मण्डप के समक्ष हाथ जोड़े हुए गरुड़जी की प्रतिमा स्थापित है। बाहर के मण्डपों में बायीं ओर शिव परिवार तथा दायीं ओर जगदम्बा भगवती की मूर्ति स्थापित है।

मन्दिर के नीचे सभागृह १८८ फुट लम्बा तथा १३२ फुट चौड़ा है। सभागृह में एक ओर सूर्य, एक ओर ब्रह्मा की सुन्दर मूर्तियाँ तथा बीच में भगवान् की चरण पादुकाएँ स्थापित हैं। इन मूर्तियों व चरण चिह्नों से सटा हुआ प्रवचन मंच (पीठ) है। उस पर धर्मगुरुओं तथा विद्वानों द्वारा धर्मोपदेश, प्रवचन, कथाएँ होती हैं।

मन्दिर के बाहरी-भीतरी भित्तियों पर भी छोटी-बड़ी अनेक देव.-देवाङ्गना, अप्सरा, यक्ष, किन्नर, द्वारपाल तथा तपस्या में लीन ऋषि-महर्षियों की अत्युत्तम, कलापूर्ण, दिव्य भावमयी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मन्दिर का प्रथम प्रवेश द्वार तथा मन्दिर मण्डप के मुख्य आसन पर चढ़ने के मुख्य द्वार के सामने ५१ फुट व्यास वाला फव्वारा है जिसकी ऊँचाई १७ फुट है अपनी उत्कीर्ण सुन्दर कलाओं द्वारा यह मन्दिर दर्शकों को आकर्षित करता है।

२८) **धारापुरी (एलिफेंटा)** — यह स्थान समुद्र के मध्य में एक द्वीप है। बम्बई में 'भाऊचा धक्का' नामक बंदरगाह से प्रति रविवार को यहां स्टीमर जाता है। यहां गुफा मन्दिर के द्वार के बाहर एक हाथी की मूर्ति थी। (उस मूर्ति का धड़ अब बम्बई संग्रहालय में है) इसी के कारण इसका नाम एलिफेण्टा (हाथी गुफा) रख दिया गया। वस्तुतः यह प्राचीन धारापुरी है। यह द्वीप चार मील के घेरे में है। यहां शिव रात्रि को मेला लगता है। जिस स्थान पर स्टीमर लगता है। उससे एक मील दूर पर्वत काटकर कई गुफा मन्दिर बने हैं। इनमें त्रिमूर्ति - गुफा मुख्य है। यह विशाल गुफा है। इसमें पास-पास ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की मूर्तियाँ हैं। तेरह-तेरह फुट ऊँची द्वारपाल मूर्तियाँ हैं। एक कमरे में सोलह फुट ऊँची अर्द्धनारीश्वर शिव की मूर्ति है। उसके दाहिने कमलासन पर बैठे हुए ब्रह्माजी की मूर्ति है। अन्य कमरों में और भी अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं।

❊ ❊

ब्रह्मा की वाक् शक्ति सरस्वती तथा उनकी मूर्ति (प्रतीक) का निदान

सोपान १६

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ।।
सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम् ।
देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः ।।

'शरत्काल में उत्पन्न कमल के समान मुखवाली और सब मनोरथों को देने वाली शारदा सब सम्पत्तियों के साथ मेरे मुख में सर्वदा निवास करें । उन वचन की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से मनुष्य देवता बन जाता है ।'

सरस्वती शब्द का अर्थ है—

सरस्वती—'सृ' धातु के असुन् प्रत्यय लगाने से 'सरस्' पद सिद्ध होता है । 'सरस्' जिनका है, 'सरस' की अधिष्ठात्री हैं, वही सरस्वती हैं । 'सृ' धातु का अर्थ है गति । जहाँ कोई बाधा उपस्थित होकर रुकावट करती है, वहाँ गति प्रवर्तित नहीं हो सकती, गति होने के लिए वहाँ बाधा होना उचित नहीं । हमारी गति का जहाँ अवरोध होता है, वहाँ अन्धकार होता है । जो गति की अधिष्ठात्री देवी हैं, जिससे समस्त गतियाँ प्रवर्तित होती हैं, सब आलोक प्रकाशित होता है, अज्ञान दूर होता है, ज्ञान प्राप्त होता है, वही सरस्वती हैं (गद्य-पद्यादिरूप में) जगत् में जिसका (अर्थात् वाक वा शब्द का) प्रसारण (सृ-धातु) होता है, वही सरस्वती हैं ।

वाग्देवता अथवा सरस्वती, आध्यात्मिक पक्ष में निष्क्रिय ब्रह्म का ही सक्रिय रूप है । इसलिये यह ब्रह्माविष्णुशिवादि सभी को गति प्रदान करने वाली शक्ति है । इसलिए इसे ब्राह्मी, हरिहरदयिते इत्यादि कहा जाता है । ध्यान के श्लोकों में सरस्वती को, ब्रह्मविचारसारपरमा, आद्या, जगद्व्यापिनी इत्यादि कहा गया है—

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ।।

'शुक्लवर्ण वाली, ब्रह्मविद्या का अन्तिम सार, आद्या शक्ति, जगत् में व्याप्त, वीणा और पुस्तक धारण करने वाली, अभय देने वाली, जड़ता रूपी अन्धकार का नाश करने वाली, हाथ में स्फटिक की माला धारण करने वाली पद्मासन पर बैठी हुई, बुद्धि देने वाली उस परमेश्वरी भगवती शारदा की मैं वन्दना करता हूँ ।' यहाँ

आद्या, जगद्व्यापिनी, ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी आदि शब्दों से सरस्वती को ब्रह्मस्वरूपिणी कहा गया है। दूसरा प्रचलित ध्यान श्लोक इस प्रकार है—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

'कुन्द, चन्द्रमा, हिमपंक्ति—जैसा जिनका उज्ज्वल वर्ण है, जो उजले वस्त्रों से आवृत है, सुन्दर वीणा से जिनका हाथ अलंकृत है, जो श्वेत कमल पर बैठी हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवगण सर्वदा जिनकी स्तुति करते हैं, जो सभी प्रकार की जड़ताओं का विनाश करने वाली हैं, वही सरस्वती देवी मेरी रक्षा करें।'

सरस्वती का उज्ज्वल वर्ण ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रतीक है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूज्या होना भी यही सिद्ध करता है। (भारतीय प्रतीक विद्या)

दुर्गा सप्तशती के प्राधानिक रहस्य में इनके नाम इस प्रकार आये हैं—

महाविद्या, महावाणी भारती वाक् सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी॥१६॥

'महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धि की स्वामिनी), सुरेश्वरी इत्यादि नाम हैं।'

उपनिषद् में महाधेनु का वर्णन इस प्रकार से किया गया है—

वाचं धेनुमुपासीत। तस्याश्चत्वारस्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्या द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च। हन्तकार मनुष्याः स्वधाकारं पितरः। तस्याः प्राण ऋषभो मनोवत्सः॥ (बृहदारण्यकोपनिषत् ५।८।१)

'वाग्धेनु की उपासना करें। उसके चार स्तन हैं—स्वाहाकार, वषट्कार, हन्तकार, स्वधाकार। स्वाहाकार और वषट्कार—ये दो स्तन देवताओं के उपजीव्य हैं। हन्तकार मनुष्यों के और स्वधाकार पितरों के। प्राण उसका वृषभ है और मन बछड़ा है।' उपनिषद्वाक्यों में भी सरस्वती के ब्रह्मरूप का विशद् वर्णन प्राप्त होता है—

या वेदान्तार्थतत्त्वैकस्वरूपा परमार्थतः।
नामरूपात्मनाव्यक्ता सा मां पातु सरस्वती॥
या साङ्गोपाङ्गवेदेषु चतुर्ष्वेकैव गीयते।
अद्वैता ब्रह्मणः शक्तिः सा मां पातु सरस्वती॥
या वर्णपदवाक्यार्थस्वरूपेणैव वर्त्तते।
अनादिनिधनानन्ता सा मां पातु सरस्वती॥
अन्तर्याम्यात्मना विश्वं त्रैलोक्यं या नियच्छति।
रुद्रादित्यादिरूपस्था यस्यामावेश्य तां पुनः।
ध्यायन्ति सर्वरूपैका सा मां पातु सरस्वती॥

या प्रत्यग्दृष्टिभिर्जीवैर्व्यज्यमानानुभूयते ।
व्यापिनी ज्ञप्तिरूपैका सा मां पातु सरस्वती ।।
नामजात्यादिभिर्भेदैरष्टधा या विकल्पिता ।
निर्विकल्पात्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती ।।
नामरूपात्मकं सर्वं यस्यामावेश्य तां पुन. ।
ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मां पातु सरस्वती ।।

(सरस्वती रहस्योपनिषत्)

'जिनमें वास्तव में वेदान्त के विषय के तात्त्विक नाम रूप प्रकट हैं, वे सरस्वती हमारी रक्षा करें। साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों में जिनका गान होता है, जो ब्रह्म की अभिन्न शक्ति हैं, वे सरस्वती हमारी रक्षा करें। जो आदि और अन्तरहित अनन्ता, वर्ण, पद, वाक्य और अर्थ के रूप में वर्तमान हैं, अन्तर्यामी आत्मा द्वारा सम्पूर्ण त्रैलोक्य का नियन्त्रण करती हैं, जो रुद्र आदित्य इत्यादि के रूप में वर्तमान हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षा करें। जिसमें प्रवेश कर लोग उस एक और सर्वरूपिणी का ध्यान करते हैं, वह सरस्वती हमारी रक्षा करें। जिसको अन्तर्दृष्टि वाले जीव अनुभव और प्रकट करते हैं, जो व्यापिनी, एक और ज्ञानरूपिणी है, वह सरस्वती हमारी रक्षा करें। नाम जाति आदि भेदों द्वारा आठ प्रकारों में जिनकी कल्पना की जाती है और कल्पनारहित होने से ही अपने आप ही प्रकट होती हैं, वह सरस्वती हमारी रक्षा करें। नामरूपात्मक सब कुछ जिसके भीतर रहता है उनका ध्यान करते हैं, वह सरस्वती हमारी रक्षा करें।'

इनके स्थूल और सूक्ष्म रूप को स्तोत्रों में और भी सुस्पष्ट किया गया है—

सरस्वतीं नमस्यामि चैतन्यां हृदि संस्थिताम् ।
कण्ठस्थां पद्मयोनेश्च ह्रीं ह्रींकारप्रियां सदा ।।
मतिदां वरदां चैव सर्वकामफलप्रदाम् ।
केशवस्य प्रियां देवीं वीणाहस्तां वरप्रदाम् ।।
ऐं एं मन्त्रप्रियां देवीं कुमतिध्वंसकारिकाम् ।
स्वप्रकाशां निरालम्बामज्ञानतिमिरापहाम् ।।
मोक्षप्रदां शुभां नित्यां शुभाङ्गी शोभनप्रियाम् ।
पद्मसंस्थां कुण्डलिनीं शुक्लवस्त्रां मनोहराम् ।।
आदित्यमण्डले लीनां प्रणमामि जनप्रियाम् ।
ज्ञानाकारां जगद्दीपां भक्तजाड्यविनाशिनीम् ।।
इति सा संस्तुता देवी वागीशेन महात्मना ।
आत्मानं दर्शयामास रविविम्वसमप्रभाम् ।।

(बृहस्पतिकृतं सरस्वतीस्तोत्रम्)

'सरस्वतीजी को मैं नमस्कार करता हूँ। वे हृदय में रहने वाली चेतना है। पद्मयोनि (ब्रह्मा) के कण्ठ में सर्वदा रहती हैं और ह्रीं ह्रींकार उनको प्रिय है।

मति, वर और सभी उद्यमों के फल देने वाली हैं। यह देवी केशव की प्रिया हैं, हाथ में वीणा है और वरद (मुद्रा में) हैं। इन देवीजी को ऐं-ऐं मन्त्र प्रिय है, यह दुर्बुद्धि का नाश करने वाली हैं। स्वतः प्रकाशवाली हैं, अवलम्बविहीन (अशेष कारण स्वरूपा) हैं। मोक्षप्रदा, शुभस्वरूपा, नित्या, शुभाङ्गी और शोभन (उत्तम विचार वालों) को प्रिय है। पद्मों में निवास करने वाली कुण्डलिनी हैं और इनका मनोहर शुक्ल वर्ण है। सबको प्रिय हैं और आदित्य-मण्डल में लीन हैं मैं इनको प्रणाम करता हूँ। ज्ञान स्वरूप संसार (को दृष्टि प्रदान करने वाला) दीपक हैं। भक्त की जड़ता का नाश करने वाली हैं। महात्मा बृहस्पति ने जब इस प्रकार स्तुति की, तब देवी ने रविबिम्ब की प्रभा की तरह अपना दर्शन प्रदान किया।'

सरस्वती की मूर्ति (प्रतीक) का विधान

इन सरस्वती का गौर उज्ज्वल वर्ण है। इनके वस्त्राभूषणादि सभी उज्ज्वल वर्ण हैं—'सर्वशुक्ला सरस्वती।' ज्ञान की देवी होने के कारण इनका परमोज्ज्वल शुभ्रवर्ण है। अध्यात्म-पक्ष में यह 'ज्ञानं ब्रह्म' का ही ज्योतिर्मय रूप है। इनके चार भुजाएँ हैं। ये चारों दिशाओं की प्रतीक हैं, जो सर्वव्यापित्व का लक्षण है। एक हाथ में पुस्तक है, यह स्थूल रूप में ज्ञान प्राप्ति का प्रधान साधन है और अध्यात्म पक्ष में सर्वज्ञानमय वेद का लक्षण है। दूसरे हाथ में माला है। यह स्थूल रूप में एकाग्रता का चिह्न है। अध्यात्म पक्ष में यह विष्णु की वैजयन्ती है। इनके दो हाथों में वीणा है। यह स्थूलरूप में जीवन-संगीत का प्रतीक है। हमारी जितनी क्रियाएँ और विचार हैं, उनका सर्जनात्मक नादरूप पुञ्जीभूत होकर महाविश्वसंगीत के रूप में काम करता है। यही इनकी वीणा है। अध्यात्मपक्ष में ऐं और ह्रीं बीज इनके सूक्ष्मरूप हैं और इनका नाद सरस्वती का पर, अर्थात् कारण रूप है। इन बीजाक्षरों की अभिव्यक्ति वीणा के नाद में होती है, जो साधकों को सिद्धि और निर्वाण प्रदान करते हैं। सरस्वती श्वेत कमल पर ज्ञान-मुद्रा में बैठी रहती हैं। कमल सृष्टि का प्रतीक माना गया है। इस रूप का यही तात्पर्य है कि यह शक्ति समग्र सृष्टि में सर्वव्यापिनी है।

(भारतीय प्रतीक विद्या से संग्रहीत)

ॐ सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्र्यै धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।

'हम श्री सरस्वती देवी जी को जानते हैं, उन श्री ब्रह्माजी की पुत्री का ध्यान करते हैं। वे श्री सरस्वती देवी हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में लगावें।'

* *

ब्रह्माजी की ब्रह्म शक्ति सावित्री-गायत्री तथा उनका मूर्ति (प्रतीक निदान

सोपान १७

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

'उस परमेश्वर (विज्ञानानन्दस्वरूप) सवितृदेव के सर्वोपास्य परब्रह्मस्वरूप तेज का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को, धर्मादि विषयक उत्तम बुद्धियों को शुभ कार्यों में प्रेरित करते हैं।'

देवी भागवत में लिखा है—

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मी सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ।। (९।४।४)

सावित्री ब्रह्माजी की पत्नी हैं। ये आद्याशक्ति परा प्रकृति के पांच स्वरूपों में से एक मानी गई हैं। इनका विग्रह तपाये हुए स्वर्ण के समान है। यह मध्याह्न में सहस्रों सूर्यों के समान तेजस्वी मानी गई हैं। सम्पूर्ण शक्तियां इन्हीं की स्वरूपभूता हैं। इनको वेदमाता गायत्री भी कहा गया है। पुराणों में इनकी उत्पत्ति-कथाएँ विभिन्न प्रकार से प्राप्त होती हैं। वास्तव में ये नित्य सिद्ध परमेश्वरी हैं। इनका जन्म-कर्म लीला मात्र है, जो लोक कल्याण हेतु ही होते हैं। किसी समय में ये सविता (सूर्य) की पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुई थी, इसलिए इनका नाम सावित्री हुआ। भगवान् सूर्य ने इनका विवाह ब्रह्माजी के साथ कर दिया तब से इनकी ब्रह्माणी संज्ञा हुई। कही-कहीं सावित्री और गायत्री का एक ही स्वरूप माना गया है; किन्तु कहीं-कहीं पृथक्-पृथक् स्वरूपों का वर्णन भी मिलता है।

वस्तुतः सावित्री-गायत्री ब्रह्माजी की एक ही ब्रह्म शक्ति के नाम हैं। इनके ब्राह्मी आदि और भी नाम हैं। उपनिषदों में इनकी अभिन्नता का स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता है—

'गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयात।'

वेद, उपनिषद्, पुराण सभी शास्त्रों में गायत्री मन्त्र और उसकी उपासना का वर्णन प्राप्त होता है। सावित्री-गायत्री की उपासना प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों काल में की जाती है। इनकी उपासना से सभी प्रकार की शुभ सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

सावित्री-गायत्री की मूर्ति (प्रतीक) का निदान

सावित्री-गायत्री के रक्त, श्वेत, पीत, नील और धवल पांच प्रकार के मुख बतलाये गये हैं। जो सृष्टि का निर्माण करने वाली प्रकृति स्वरूपा दुर्गा, राधा,

सरस्वती और सावित्री इन पांचों महादेवियों का यह एक ही स्वरूप है। इनकी उपासना करने से पांचों महाशक्तियों की उपाससा हो जाती है। इनके मन्त्र जाप द्वारा पञ्चतत्त्वों पर अधिकार प्राप्त करने का संकेत है। इनका रक्त वर्ण होना रजोगुण का संकेत है। यह रजोगुणाभिमानी ब्रह्माजी की शक्ति का प्रतीक है और रजोगुण की अधीश्वरी विश्व का निर्माण करने वाली है। कमल सृष्टि एवं रत्न-गर्भा पृथ्वी, महालक्ष्मी, धन ऐश्वर्य और विद्या का प्रतीक है। इनका कमलों की माला धारण करना और कमल के आसन पर विराजमान होना, यह सृष्टि निर्माण करने वाली शक्ति, धन, ऐश्वर्य, विद्या प्रदायिनी हैं। अनेक मणिरत्नों से अलंकृत होना अनेक प्रकार की उत्तम विद्याओं का भण्डार होने का प्रतीक है। इनके एक हाथ में कमल होना, विद्या धन ऐश्वर्य, प्रदान करने का और एक हाथ में यज्ञ-कुण्ड होना यज्ञ (शुद्ध-पवित्र) कार्य का फल प्रदान करने वाली होने का प्रतीक है। एक हाथ में वरद मुद्रा तथा अक्षमाला धारण करना, शुभ मनोवाञ्छित वरदायिनी तथा एकाग्रतापूर्वक ध्यान, जप करने का प्रतीक है। चार भुजाएँ होना चारों दिशाओं में सर्वव्यापकता का प्रतीक है।

(साभार 'भारतीय प्रतीक विद्या' से संगृहीत)

* *

भगवान् ब्रह्माजी एवं उनकी वाक् शक्ति सरस्वती, ब्रह्म शक्ति सावित्री-गायत्री का वाहन राजहंस

सोपान १८

यह राजहंस शान्ति, पवित्रता उज्ज्वल प्रकाश इत्यादि का प्रतीक है। यह 'हंसः सोऽहं' अजपाजय करने वाले और प्राण शक्ति का भी प्रतीक है, जिसके द्वारा ब्रह्मा सृष्टि - संचालन करते हैं। राजहंस का उज्ज्वल वर्ण और नीरक्षीरविवेक, ब्रह्माजी एवं सरस्वती तथा सावित्री - गायत्री में श्रद्धा रखने वाले उपासकों के निष्कलंक चरित्र और गुण-दोष को जानकर उत्तम गुण को ग्रहण करने का प्रतीक है।

अध्यात्म-पक्ष में हंस जीव का प्रतीक है। जीवन का प्रतीक है। जीव प्राणशक्ति के द्वारा काम करता है, जिसका लक्षण निःश्वास और प्रश्वास की क्रिया है। निःश्वास से 'हं' और प्रश्वास से 'सः' ध्वनि निकलती है। यही निःश्वास-प्रश्वास का आवागमन 'हंसः' है, जिसके द्वारा चिद्रूपिणी सरस्वती क्रिया निष्पादन

करती है। यह हंस निर्विकल्पक समाधि में अवशेष कारण की जलराशि में तैरता रहता है।

उपनिषत् में आत्मा का नाम हंस है—

स्वप्नेन शरीरमभिप्रहृत्यासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति।
शुक्रमादाय पुनरोति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एक हंसः॥
प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतं चरित्वा।
स ईयतेऽमृतो यत्रकामं हिरण्मयः पुरुष एक हंसः॥

(बृहदारण्यकोपनिषत्, ४,३।११-१२)

'स्वयं असुप्त है, किन्तु निद्रावस्था में शरीर को छोड़कर भी निद्रितों को जीवित्त रखता है, और तेजको ग्रहण कर फिर अपने स्थान (शरीर) में आ जाता है, वही हिरण्मय पुरुष एक हंस है। प्राण (निःश्वास-प्रश्वास से लक्षित) द्वारा अवर कुलाय (घोंसला—शरीर) की रक्षा करता हुआ कुलाय (शरीर) के बाहर इच्छापूर्ण अमृत-पानकर जो पुनः आ जाता है, वह हिरण्मय पुरुष एक हंस कहा गया है।'

सरस्वती का वाहन हंस के अतिरिक्त मयूर (मोर) भी बतलाया गया है। मयूर को धर्म का स्वरूप माना गया है, जिसको काल से भी प्रबल कहा गया है, जो काल रूपी सर्प को भी भक्षण करने वाला है। मयूर (मोर) के लिये लिखा है—

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि मयूरस्य यथोचितम्।
नाना चित्रविचित्राङ्ग गरुडाज्जननं तवः॥
अनन्तशक्तिसंयुक्त कालाहेर्भक्षणं ततः।

'सुनो! मयूर के उचित रहस्य को बतलाता हूँ नाना प्रकार के चित्र विचित्र अङ्गों वाले आप हैं और गरुड़ से आपका जन्म हुआ है। आप अनन्त शक्ति वाले हैं, इस काल सर्प का भक्षण करते रहते हैं।   ('भारतीय प्रतीक विद्या' से संगृहीत)

* *

ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) की आवश्यकता एवं उसका महत्त्व विवेचन तथा उसके नाप-मान के अनुसार निर्माण विधि

सोपान १९

यज्ञोपवीत को ब्रह्मतत्त्व अथवा वेदतत्त्व का सूचक बतलाया गया है—

सूचनाद् ब्रह्मतत्त्वस्य वेदतत्त्वस्य सूचनात्।
तत्सूत्रमुपवीतं स्याद् ब्रह्मसूत्रमिति स्मृतम्॥

(ब्रह्मसूत्र, स्मृ. प्र.)

'ब्रह्म निराकार परमेश्वर का और उनका परिचायक वेद का बोधक है। इसलिये चाहे यज्ञोपवीत कहें, चाहे यज्ञसूत्र या ब्रह्मसूत्र - सब का मतलब एक ही होता है।' गायत्री मन्त्र का अधिकार प्रदान करने वाला होने से इसको 'सावित्री-सूत्र' भी कहते हैं।

इसको ब्रह्मसूत्र, यज्ञसूत्रादि किसी नाम से कहें, यह ब्रह्म से सम्बन्ध कराने वाला सूत्र है। इस क्रिया के द्वारा ब्रह्म के निकट पहुँचा दिया जाता है। इसलिये इसको उपनयन (निकट ले जाने वाला) कर्म भी कहा जाता है।

यज्ञसूत्र का तीन सूत्र वाला गोल आकार त्रिगुणात्मिका प्रकृति और ॐकार का प्रतीक भी है। ॐकार का नाम वर्तुल अर्थात् गोल है—

ॐकारो वर्तुलस्तारो मन्त्राद्यः प्रणवो ध्रुवः। (मातृकाकोष)

'ॐकार का नाम वर्तुल (गोल) तार, मन्त्र के आरम्भ में रहने वाला, प्रणव और ध्रुव है।'

ॐकार का प्रतीक होने के कारण यह अ-उ-म, सत्त्व-रज-तम, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, ऋक्-यजुः-साम इत्यादि का प्रतिरूप है और इसकी ग्रन्थि प्रणव के नादबिन्दु अर्थात् अर्द्धमात्रा का प्रतीक है। यह चतुर्थ (तुरीय, तुरीया, कूटस्थ, ऋतं बृहत्) तत्त्व है, जिससे त्रिगुण त्रिदेवादि प्रकट होते हैं। इस प्रकार यज्ञसूत्री त्रयी, त्रिदेव इत्यादि को गले में दिन-रात पहने रहकर इन्हें सोते-बैठते अपने कर्मों का साक्षी बनाये रहता है और सजग रहता है कि ब्रह्मचर्य-व्रत के विपरीत मुझसे कोई कार्य न हो जाय।

ब्रह्मचर्य का अर्थ यहां केवल वीर्यरक्षा ही नहीं है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है शरीर और मन की समस्त चर्या ब्रह्म की ओर ले चलने वाली होवे। इसमें सभी इन्द्रियों का पूर्ण संयम आ जाता है। यदि एक भी इन्द्रिय असंयत हो या किसी भी प्रकार के बुरे विचार बार-बार मनमें आते हों तो ब्रह्मचर्या में बाधा कर देंगे।

जिस प्रकार धर्म ही अर्थ, काम और मोक्ष का आधार है, उसी प्रकार गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास के साथ ब्रह्मचर्य क्रिया लगी हुई है। ब्रह्मचर्य-पूर्वक गार्हस्थ्यादि आश्रमों के कर्तव्यों को करते रहना ही धर्म है।

प्रथम तीन आश्रमों के साथ तीन ऋण भी लगे हुए हैं। अपने पूर्वज और ऋषियों ने अपनी तपस्या और परिश्रम द्वारा नाना प्रकार के विज्ञान को सीखकर उन्नत किया यह ऋषि-ऋण है। ब्रह्मचर्यपूर्वक उन ज्ञान-राशियों को प्राप्त कर उन्हें समुन्नत करने से ऋषि-ऋण से उद्धार होता है। यह ब्रह्मचर्य के प्रथम आश्रम का कर्त्तव्य है। फिर पिता सन्तान उत्पन्न कर उस सन्तान को ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा द्वारा योग्य बना कर वंश की स्थापना और सभ्यता की रक्षा करना है, यह युवक पर पिता का ऋण है। इसको इसी प्रकार से पूर्ण करने से ही पितृ-ऋण से मुक्ति होती है। तीसरे वानप्रस्थाश्रम का कर्तव्य है कि यज्ञ-यजन और देवोपासना करके देव-ऋण से छुटकारा प्राप्त करें। मनुष्य वानप्रस्थाश्रम तक इन तीनों आश्रमों

का भली भाँति पालन कर उद्धार पा लेवे, तब वह इस प्रतिज्ञा-सूत्र को तोड़कर विसर्जन कर देता है और संन्यास ग्रहण कर लेता है। यह उसके शुद्ध, बुद्ध और उन्मुक्त का स्वरूप है।

धर्मशास्त्र के कर्मकाण्ड ग्रन्थों में यज्ञसूत्र के स्वरूप का वर्णन किया गया है –

यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्यते चैव होतृभिः।
उपवीतं ततोऽस्येदं तस्माद्यज्ञोपवीतकम्॥

(कर्मकाण्ड प्रदीप, स्मृतिसार)

'होतागण परमात्मा को यज्ञ कहते हैं। यह उसके निकट ले जाने वाला है, इसलिये इसको यज्ञोपवीत कहते हैं।' यज्ञ परमेश्वर का स्वरूप माना गया है—

'यज्ञो वै विष्णुः।' (शतपथ ब्रा. १।१।१।२)

भारत की आर्य-संस्कृति में यज्ञ का अनुपमेय महत्त्व है। भगवद्गीता अध्या. ३ श्लोक १०-१२ में लिखा है—प्रजापति ने यज्ञ सहित प्रजा की सृष्टि करके 'कल्प के आदि में' ही कह दिया कि—इस यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित मनोरथ प्रदान करने वाला होवे और तुम लोग इस यज्ञ द्वारा देवताओं को सतुष्ट करना। वे देवता तुम लोगों का उत्कर्ष करेंगे। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से एक दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त होओगे। यज्ञ से संतुष्ट हुए देवता लोग तुम्हारे लिये निश्चय ही वाञ्छनीय भोग बिना माँगे ही प्रदान करते रहेंगे। भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक १४ में कहा गया है सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है। इसलिये यज्ञीय कर्म प्रत्येक आर्य-सन्तान का परम कर्तव्य है। यज्ञानुष्ठान करने की शास्त्राज्ञा है, किन्तु उसके करने का अधिकार द्विजाति, संस्कार होने पर ही प्राप्त होता है और संस्कारों में आठवाँ सस्कार 'उपनयन' है। यह द्विजाति का मुख्य प्रसिद्ध संस्कार है। विधिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करने वाला द्विज ही यज्ञानुष्ठान-श्रौत-स्मार्त कर्म (देव-पितृ-कर्म) करने का अधिकारी होता है। इसी प्रकार से बुद्धि प्रदाता सर्वश्रेष्ठ गायत्री मन्त्र की सिद्धि का अधिकार भी यज्ञोपवीत-ग्रहण करने के पश्चात् ही प्राप्त होता है। इसलिये शास्त्रविधि-विधान के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करना धार्मिक अनुष्ठान करने के लिये परमावश्यक है।

यज्ञोपवीत संस्कार होने पर पालक का दूसरा जन्म होना माना जाता है। इस लिये उसको 'द्विज' कहा जाता है। इस दूसरे जन्म की माता सावित्री (गायत्री) मानी गयी हैं और पिता आचार्य माने गये हैं मनु महाराज का कथन है—

'मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) संस्कार ब्रह्मत्वाधायक जन्म है, जिसमें गायत्री माता और आचार्य पितृ-स्थानीय होता है।' (मनुस्मृति २।१७०)

यज्ञ (भगवान् हरि) ने यज्ञसूत्र रूप में इसको स्वीकार करने से बुद्धिमानों ने इसको यज्ञसूत्र के रूप में जाना। उनकी आज्ञा से ब्रह्मा ने इसको स्वीकार किया, इसलिये इसका नाम ब्रह्मसूत्र हुआ। तीन वेद, तीन देव, तीन अग्नि, शिव के बनाये हुए तीन वर्ण, तीन लपेट वाले सूत्र को धारण करें। सुन्दर ग्रन्थि वाला यह नादयुक्त त्रिमात्र ॐ कार है। शिव की आज्ञा से वेदमाता गायत्री उसकी ग्रन्थि में निवास करती हैं। इस प्रकार द्विजों का ब्रह्मसूत्र बारह देवताओं वाला है। आदिकाल में वेदाधिकारियों के लिए ब्रह्म ने इस परमोत्तम वस्तु की रचना की। जब तक द्विजों के बायें कन्धे पर ब्रह्मसूत्र है, तब तक ब्राह्मण तीनों वेदों के अधिकारी होते है। यज्ञोपवीत (ब्रह्मसूत्र) की लम्बाई धारण करने पर कटि तक रहने का परिमाण है। अधिक छोटा होने से आयु और अधिक लम्बा (बड़ा) होने से तप का हरण करता है। इपवीत उजले सरसों के दाने के समान मोटा होना चाहिये। अत्यन्त मोटा यश का और अत्यन्त पतला धन का नाश करता है। ब्रह्मसूत्र परम पवित्रता, शुद्धि, आयु, सुख, ओज और ब्रह्मतेज का बढ़ाने वाला है। यज्ञोपवीत परम पवित्र है और द्विज की शोभा तथा लक्षण है। पद्मासन भगवान् ब्रह्मा ने इस मंगल सूत्र को उत्पन्न किया (ब्राह्मण) यदि यज्ञोपवीत की उत्पत्ति का ज्ञान न रखे तो वह पुस्तकों के भार को ढ़ोने वाले बैल के समान है। यह सब बतलाने का तात्पर्य है कि यज्ञोपवीत ब्रह्मज्ञान के व्रत का चिह्न है। (स्मृति प्रकाश ग्रन्थ)

यज्ञोपवीत संस्कार कैसे और कब करें?

ज्योतिषशास्त्र के योग्य विद्वान् द्वारा शुभ मुहूर्त निश्चय करवा कर, उस समय में संस्कार पद्धति के अनुसार योग्य कर्मकाण्ड निष्णात सदाचारी विद्वान् द्वारा सम्पन्न कराना चाहिये।

उपनयन धारण करने का समय—ब्राह्मण का जन्म के आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में होना चाहिये; किंतु ब्रह्मवर्चस्विता (ब्राह्मण तेजस्विता) चाहने वाले ब्राह्मण को पाँचवे वर्ष में बल चाहने वाले क्षत्रिय को सातवें वर्ष में और व्यापार, अर्थ (द्रव्य) चाहने वाले वैश्य को आठवें वर्ष में भी उपनयन संस्कार कराना विहित कहा गया है।

(मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति)

उपनयन ग्रहण करने की अन्तिम अवधि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत-संस्कार सोलह वर्षों की आयु तक, क्षत्रियों का बाईस वर्षों की और वैश्यों की चौबीस वर्षों की आयु तक न किया जा सके तो उनको सावित्री का अधिकार नही रहता है। अतः नियत समय पर यज्ञोपवीत संस्कार करा देना आवश्यक है। (मनुस्मृति)

शिखा (चोटी), ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) धारण करना क्यों अनिवार्य है?

सदोपवीतिना भाव्यं सदा वद्धशिखेन तु।
विशिखो व्यपवोतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

'सदैव शिखा (चोटी) में गाँठ लगाकर और यज्ञोपवीत धारण किये हुए ही

कर्तव्य कर्म करना चाहिये, क्योंकि बिना शिखा बाँधे और बिना यज्ञोपवीत धारण किये हुए का किया हुआ, पुण्य-कर्म निष्फल हो जाता है।'

यज्ञोपवीत कितनी संख्या में धारण करें ?

उपवीतं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृतेम् ।
एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निर्णयः ।। (पारिजात)

'वटु (ब्रह्मचारी) को एक, गृहस्थ और वानप्रस्थी को दो तथा यती (त्रिदण्डी संन्यासी) को एक यज्ञोपवीत धारण करने का शास्त्र का निर्णय है।'

हेमाद्रि का भी कथन है—

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये।'

वैखानस धर्मसूत्र (३।१।१) और वृहद्द हारीत स्मृति (८।४४) में भी यही समर्थन प्राप्त होता है।

यज्ञोपवीत दाहिने कान पर क्यों चढ़ाते हैं ?

ऊर्ध्वं नाभेर्मध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः ।
तस्मान्मध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयम्भुवा ।।

'मूत्र-पुरीषोत्सर्ग के समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर इस प्रकार से चढ़ा लेना चाहिये कि वह बैठने पर नाभि से नीचे न लटक सके। नाभि से ऊपर का अङ्ग पवित्रतर और मुख पवित्रतम कहा गया है।'

यज्ञोपवीतं शिरसि दक्षिणकर्णे वा कृत्वा... ....।'
(बोधायन ४६।१)

'यज्ञोपवीत को सिर पर अथवा दाहिने कान पर लपेट कर पुरीषोत्सर्ग (मल-मूत्र-त्याग) करे।'

इसी का समर्थन अग्निवेश्म गृह्य सूत्र (२।६।८) में प्राप्त है।

कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः कुर्यान्मूत्रपुरीषे...... ....'
(याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय १६)

'दाहिने कान पर ब्रह्मसूत्र को चढ़ा कर उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्र का त्याग करना चाहिये।'

वेद शास्त्रों की वैज्ञानिक दृष्टि से मरुत, सोम, इन्द्र, अग्नि, सूर्य और वरुण-ये सब देवता द्विजों के दाहिने कान में निवास करते हैं और दूसरे श्रोत्र (सुनना) आकाश तत्त्व की इन्द्रिय है, जो कभी अपवित्र नहीं होती। यद्यपि अन्य सभी भूत बाहर के प्रभाव से दूषित हो जाते हैं। आयुर्वेद शास्त्र के विज्ञान से भी पाया जाता है कि कर्णेन्द्रिय (कान की इन्द्रिय) और मूत्रेन्द्रिय की शिराओं (नसों) का सीधा सम्बन्ध है, इसलिये भी दाहिने कात पर यज्ञोपवीत का चढ़ाना उचित है। तीसरे यज्ञोपवीत द्विजों के बायें कन्धे पर रहता है, उसे दाहिने पार्श्व के कर्णेन्द्रिय (कान) पर चढ़ाकर रखने से ही वह ठीक टिक पाता है।

जीर्ण (पुराने) यज्ञोपवीत को कैसी-कैसी अवस्थाओं में त्याग कर, नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये ?

मलमूत्रं त्यजेद् विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृत् ।
उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ।।

(सायणस्मृति)

'मल-मूत्र-त्याग के समय यज्ञोपवीत कान पर न चढ़ाने की भूल हो जाने के कारण या अन्य किसी प्रकार से अशुद्ध हो जाने के कारण जीर्ण (पुराने) यज्ञोपवीत को त्याग कर नया (नूतन) यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये ।'

श्रावण शुक्ला १५ पूर्णिमा को श्रावणी कर्माङ्ग में तथा भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी को ऋषि पूजन कर्माङ्ग में, नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और जीर्ण (पुराने) यज्ञोपवीत का त्याग करना चाहिये ।

सूर्य-चन्द्र ग्रहण होने पर ग्रहण शुद्ध होने के पश्चात् स्नान करके यज्ञोपवीत बदल लेवें ।

तीन पक्ष अथवा तीन महीने हो जाने पर भी यज्ञोपवीत बदल लेवें ।

मरणाशौच अथवा जननाशौच होने पर आशौच शुद्ध होने के पश्चात् नूतन यज्ञोपवीत धारण करें ।

किसी के मृत्यु-संस्कार में सम्मिलित होवें तो स्नान करने के पश्चात् यज्ञोपवीत बदल लेना चाहिये ।

यज्ञोपवीत खण्डित हो जाने (टूट जाने) पर भी नवीन यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है ।

किसी भी कारणवश यज्ञोपवीत अशुद्ध हो जाने पर यज्ञोपवीत अवश्य बदल लेना चाहिये ।

नूतन यज्ञोपवीत धारण विधि

यदि किसी के पास श्रावणीकर्म में अथवा ऋषिपञ्चमी कर्म में अनुष्ठान किया हुआ और अभिमन्त्रित यज्ञोपवीत रखा हो तो यज्ञोपवीत पर केवल दस बार गायत्री मन्त्र का जप करके नीचे लिखे हुए मन्त्र का उच्चारण करते हुए धारण कर लेवे । यदि यज्ञोपवीत श्रावणी कर्म अथवा ऋषि पञ्चमी कर्मानुष्ठान में अभिमन्त्रित किया हुआ न हो तो नवीन (नूतन) यज्ञोपवीत को जल से शुद्ध करके दस बार गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके नीचे लिखे हुए मन्त्रों से सूत्रों में देवताओं का आवाहन करें ।

प्रथमतन्तौ ॐकारमावाहयामि । द्वितीयतन्तौ – ॐ अग्निमावाहयामि । तृतीयतन्तौ— ॐ सर्पानावाहयामि । चतुर्थतन्तौ ॐ सोममावाहयामि । पञ्चमतन्तौ – ॐ पितृनावाहयामि । षष्ठतन्तौ--ॐ प्रजापतिमावाहयामि । सप्तमतन्तौ —ॐ अनिलमावाहयामि । अष्टमतन्तौ – ॐ सूर्यमावाहयामि । नवमतन्तौ—ॐ विश्वान्देवानावाहयामि । ग्रन्थि में ॐ ब्रह्मणे नमः

ब्रह्माणमावाहयामि । ॐ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि । ॐ रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि । इसके पश्चात् निम्न मन्त्र का उच्चारण करें ।

यज्ञोपवीत-धारण-विनियोग

ॐ यज्ञोपवीतमितिमन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः लिंगोक्ता देवता त्रिष्टुप्छन्दः यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः ।।

यज्ञोपवीत को धोकर प्रत्येक बार मन्त्र उच्चारण करते हुए एक-एक को धारण करे ।

मन्त्र

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।।
(पाराशर गृह्य सूत्र २।२।११)

जीर्ण (पुराना) अथवा अशुद्ध यज्ञोपवीत त्यागने की विधि—

नूतन (नया) यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् प्राचीन (पुराने) यज्ञोपवीत को कण्ठी करके निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए सिर पर से पीठ की ओर से निकाल कर किसी जलाशय अथवा अन्य किसी पवित्र स्थान में छोड़ देवें ।

एतावद्दिनपर्यन्तं द्विजत्वं धारितं मया ।
जीर्णत्वात्परित्यक्तं गच्छ सूत्र यथा सुखम् ।।
'समुद्रं गच्छ स्वाहा ।' (नित्य प्रयोगमाला)

यज्ञोपवीत विषय के प्रायश्चित्त

यज्ञोपवीत धारण का निर्दिष्ट समय निकल जाने पर यज्ञोपवीत धारण कराया जाये तो शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त कराकर ही यज्ञोपवीत धारण कराया जायेगा ।

किसी कारण वश यज्ञोपवीत के बिना भोजन कर लिया जाय तो नक्त व्रत करना चाहिये ।

यज्ञोपवीत के बिना जल पी लेने पर प्राणायाम करना चाहिये ।

कान पर यज्ञोपवीत बिना चढ़ाये मल-मूत्र त्याग करने पर एक माला गायत्री मन्त्र जप करना चाहिये ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन त्रिवर्णों को विधिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य एवं पावन कर्त्तव्य है ।

यज्ञोपवीत के नाप-मान का शास्त्रानुसार महत्त्व तथा निर्माण विधि

यज्ञोपवीत धारण करने वाले यज्ञोपवीत तो पहनते हैं; किन्तु यह यज्ञोपवीत शास्त्रानुसार किस नाप-मान का होना चाहिये, यह तो बहुत ही कम मनुष्यों को

ज्ञात है। अतः इसकी जानकारी सर्वसाधारण यज्ञोपवीत धारण करने वालों के लिये प्रस्तुत करना आवश्यक है।

'आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः।' (वायुपुराण ६।७)

सनातन धर्म के मूल ग्रन्थ चार वेद हैं। वेदों की संकलित शाखाओं की— संख्या ११३१ है। इन शाखाओं में एक लाख मन्त्र या ऋचाएँ हैं। लिखा है—

'लक्षं तु वेदाश्चत्वारः' (चरण-व्यूह ५।१)

इन मन्त्रों में कर्मकाण्ड के मन्त्र ८०००० हैं।

उपासना के मन्त्र १६००० हैं।

इस प्रकार ८००००+१६०००=९६००० छियानवें हजार मन्त्रों को चरितार्थ करने वाली कर्त्तव्यपरायणता का प्रतीक चिह्न यह यज्ञोपवीत ९६ छियानवें चव्वे नाप-मान का होता है। इस प्रकार से उन लाख मन्त्रों में से ४००० मन्त्रों की संख्या शेष रहती है। यह चार हजार मन्त्र ज्ञानकाण्ड के कहे गये हैं। जो इसमें ग्रहण नहीं होते है क्योंकि ज्ञान होने के पश्चात् सभी कर्मानुष्ठान की समाप्ति हो जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतपः।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४।३३)

'परंतप अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान-यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्मज्ञान में पहुँचकर समाप्त हो जाते हैं।

यज्ञोपवीत तीन वर्णों के लिये है, अतः प्रथम त्रिवृत्त इसी का सूचक है। द्वितीय त्रिवृत्त ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम में यज्ञोपवीत की आवश्यकता और प्रयोगता का सूचक है और तीसरा त्रिवृत्त ऋषि, देव और पितृ ऋणों से मुक्त कराने का सूचक है। ग्रन्थि के बीच की ग्रन्थियां गोत्र-प्रवरों की सूचिका हैं. जिससे कर्त्तव्य-कर्मानुष्ठान की परम्परा का ज्ञान बना रहता है। ब्रह्म-ग्रन्थि सबका समन्वय कर 'ब्रह्म' (वेद और परमेश्वर) की प्राप्ति के अन्तिम लक्ष्य को संकेतित करती है। यज्ञोपवीत के नौ तन्तुओं में ॐकार, अग्नि, सर्प, सोम, पितर, प्रजापति, अनिल, सूर्य और विश्वेदेवों का आह्वान-स्थापन किया जाता है जिससे इन नौ देवताओं की शक्तियों का संगृहीत बल बना रहता है। ओज, तेज, विवेक, श्रद्धा, विश्वास, देवत्व, ब्रह्मज्ञान, कर्त्तव्यपरायणता, कार्य क्षमता आ जाती है। इसलिए यज्ञोपवीतधारी गायत्री जप करने वाले को भूत, प्रेत, पिशाच कोई बाधा नहीं पहुँचा सकते हैं। गायत्री (सावित्री) को वेदमाता कहा गया है। पूर्ण गायत्री मन्त्र में चौबीस अक्षर होते हैं। चारों वेदों के गायत्री मन्त्रों को मिला देने से पूर्ण अक्षरों का योग छियानवें हो जाता है। इन छियानवें अक्षरों का प्रतीक यज्ञोपवीत के छियानवें चव्वे होते हैं। गायत्री मन्त्र में तीन चरण हैं, अतः त्रिवृत्त करने का विधान भी उससे संगत होता है। इसी प्रसंग में एक श्लोक है—

चतुर्वेदेषु गायत्री चतुर्विंशतिकाक्षरी ।
तस्माच्चतुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत् ।।

किसी भी कर्म में देश, काल और पात्र तत्त्व का विचार सार्वभौम है । मूल-रूप से यज्ञोपवीत में भी इनके सभी स्वरूपों को पूर्ण करने की प्रक्रिया को अपनाया गया है । जैसे—

तिथिवारं च नक्षत्रं तत्त्ववेदगुणान्वितम् ।
कालत्रयश्च मासाश्च ब्रह्मसूत्र हि षण्णवम् ।।
(सा. वै. छा. परिशिष्ट)

'तिथि १५+वार ७+नक्षत्र २७+तत्त्व २५+वेद ४+ गुण ३+काल ३+ मास १२ कुल योग ९६ छियानवें चव्वे का यज्ञोपवीत होता है ।'

इसी प्रकार के अनेक अभिप्राय और विशेषताएँ ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) निर्माण-विधि में प्राप्त होती है ।

यज्ञोपवीत-निर्माण-विधि

बोधायन गृह्यसूत्र, कात्यायन गृह्यसूत्र तथा अन्य स्मृति ग्रन्थों में इसकी विधियाँ प्राप्त होती हैं । उनके सारांश के आधार पर ही बतलाने का प्रयास यहाँ किया जा रहा है ।

यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण को नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर—पवित्र होकर सन्ध्या वन्दनादि एवं कम से कम एक माला गायत्री जप करने के पश्चात् शुद्ध पवित्र स्थान देव मन्दिर, बगीचा आदि स्थान में किसी ब्राह्मण, ब्राह्मण कुमारी, अथवा सधवा धर्म-चारिणी ब्राह्मणी के हाथों द्वारा काता गया शुद्ध कपास के सूत की कुकड़ी के सूत को छानवे चव्वे नाप-मान में लेवे ।

चव्वे शब्द का अभिप्राय इस प्रकार समझें कि अपने दाहिने हाथ की चारों अंगुलियों को सटाकर उस पर सूत को लपेटें, एक बार लपेटने की संख्या को एक चव्वा समझें । इस प्रकार छानवे बार लपेटने से छानवें चव्वे होंगे ।

दाहिने हाथ की अंगुलियों को सटाकर उनके मूल (चव्वे) में तिगुने सूते को 'भूः' उच्चारण कर छानवे चव्वे लपेटें । फिर उसे चव्वे से उतार कर पलाश के पत्ते पर रख देवें । पलाश का पत्ता न होवे तो शुद्ध वस्त्र पर रख देवें । पुनः 'भुवः' उच्चारण कर दूसरी बार और वैसे ही 'स्व' उच्चारण कर तीसरी बार चव्वे में लपेटें; फिर पूर्ववत् पलाश के पत्ते पर रखकर 'आपो हिष्ठा.,' 'शन्नो देवी', और सावित्री 'तत्सवितुः'—इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए शुद्ध पवित्र जल में भिगोयें । फिर बायें हाथ में रखकर तीन बार ठोक कर (थप-थपा कर) जल निकाल देवें । इसके पश्चात् टिकुरी से तीनों व्याहृतियों का (ॐभूर्भुवः स्वः का) उच्चारण करते हुए ऊर्ध्ववृत्त (दक्षिणावर्त) ऐंठन (बल) देवे । फिर उन्हीं व्याहृतियों का उच्चारण करते हुए अधोमुख (वामावर्त) त्रिगुणित करें और ऐंठन (बल) देकर एक में मिला देंवे । फिर भीगे पवित्र चेफुए से (कपड़े से) माँजकर

(स्योंतकर) सुखा देवें। इसके पश्चात् दाहिने घुटने और बायें हाथ के गासे में लगाकर तीन लरछा बनावें तथा छोरों को (नोकों को) डेढ़ इञ्च के लगभग में अस्थायी (सरकवांसीं, कई स्थानों में इसको सरक फांसी भी कहते हैं।) गांठ देकर बराबर करें। तदनन्तर दोनों घुटनों में लरछों को दोहरा कर छोरों की (नोकों की) गांठ (सरक वांसी) खोलें तथा उनसे दोहरे लरछे को तीन बार लपेट कर तीन गांठ दे दें। फिर शेष छोरों (नोकों) के अंशों में अपने गोत्र के प्रवरों की संख्या के अनुसार २ से ५ तक गांठें देकर दोनों छोरों को (नोकों को) परस्पर ऐंठ देवें और अन्त में एक ग्रन्थि लगा दें। फिर घुटनों में से एक त्रिलरछे को खींचकर (तीन बार लपेटने के बाद में दी गयी) मूल ग्रन्थि को दृढ़ बना देवें। पुनः समेट कर बायें हाथ पर रखें और उसके ऊपर जलीय प्रोक्षण करते हुए (जल से धोते हुए) नौ वस्तुओं में ॐकार आदि नौ देवों का आह्वान और स्थापन करें।

त्रिवृत्त लरछे में 'ब्रह्माणं न्यसामि', विष्णुं न्यसामि' और 'महेश्वरं न्यसामि;' से त्रिदेवों को भी प्रतिष्ठापित करें।

इस भांति यज्ञोपवीत निर्माण कर रख लेवें। तदनन्तर यज्ञोपवीत को सूर्य के सम्मुख कर 'उद्वयं तमस्परि··· ·······' मन्त्र से अभिमन्त्रित करें और 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्' मन्त्र से यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

ये सब अभिमन्त्रित संस्कार विधियां श्रावणी कर्म, ऋषि पञ्चमी कर्म के दिन सम्पन्न की जाती हैं, अतः श्रावणी कर्म, ऋषि पञ्चमी कर्म में ये सब संस्कार विधियां पूर्ण किये हुए यज्ञोपवीत के धारण करने में संस्कार की आवश्यकता नहीं रहती है। केवल गायत्री मन्त्र से दस बार अभिमन्त्रित कर 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्' मन्त्र से ही धारण किया जा सकता है।

(साभार कल्याण में प्रकाशित पं. रामबलि त्रिपाठी के लेख से संगृहीत)

ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) की जय हो।

* *

हिन्दू होने का प्रतीक शिखा (चोटी) की आवश्यकता तथा महत्त्व

सोपान २०

ऋक् संहिता में शिखा (चोटी) शब्द का व्यवहार हुआ है और ब्राह्मण ग्रन्थों में भी शिखा-सूत्रवाले ऋषियों का वर्णन प्राप्त होता है।

वैदिक सोलह संस्कारों में उपनयन (यज्ञोपवीत) धारण के समान ही चूड़ाकरण-केश कटवाना-चोटी रखना एक संस्कार है, जो बच्चा होने के पश्चात् केश बढ़ जाने

पर अपने पूर्वजों से चले आये इष्टदेव-देवी का पूजा-अर्चना करके उस देवी-देवता के सामने गीत- वाद्य के साथ बालक का मुण्डन कराकर शिखा (चोटी) रखने के रूप में किया जाता है (जिसको मारवाड़ी भाषा में जड़ूला उतारना भी कहते हैं)। यह शास्त्राधार के सोलह संस्कारों की गणना में आता है इससे सिद्ध होता है कि इसका निश्चित और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी अवश्य है। यह संस्कार अत्यन्त प्राचीन है।

दैनिक कर्त्तव्यों (नित्य-कर्मों) में स्नान के पश्चात् अथवा जब कभी शिखा (चोटी) खुली हुई हो तो गायत्री मन्त्र उच्चारण द्वारा इसमें ग्रन्थि लगा देना चाहिये अथवा यज्ञोपवीतधारी न हो तो अपने इष्टदेव का नामोच्चारण करते हुए इसमें ग्रन्थि (गांठ) लगा देना चाहिये। शिखा (चोटी) खुली रखना अच्छा नहीं माना गया है।

सन्ध्या, पूजन, उपासनादि सभी कर्मों में शिखा (चोटी) के ग्रन्थि (गांठ) लगाकर ही कर्म करना बतलाया गया है। आजकल कतिपय हिन्दुओं ने शिखा (चोटी) रखना ही बन्द कर दिया (छोड़ दिया) है। वस्तुत: चोटी (शिखा) रखना (हिन्दू) जाति का एक प्रतीक (चिह्न) है। शिखा (चोटी) बाँधने का एक मन्त्र भी है—

चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेज: समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये तेजो वृद्धिं कुरुष्व मे॥

'हे महामाया! चिद्रूपिणी! आप अपने दिव्यतेज सहित मेरे तेज की वृद्धि करने के लिए मेरी शिखा (चोटी) के मध्य में विराजमान होवें।'

यदि किसी के शिखा (चोटी) न हो तो सन्ध्या, पूजा कर्मादि करते समय इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिखा (चोटी) के स्थान को स्पर्श तो अवश्य कर लेना चाहिये।

आध्यात्मिक साधनाओं में शिखा बंधन एक प्रधान अङ्ग है। इसके बिना साधनाएँ साङ्गोपाङ्ग नहीं हो सकती हैं। जिस प्रकार प्रासाद पुरुष (देव मन्दिर) के शिखर पर पताका परमात्मा के अनन्त रूप का निर्देशक है, उसी प्रकार शिखा (चोटी) मानव शरीर को सब ओर से पूर्णत: आवृत करने वाले परमात्मा के सर्वव्यापी तेज का निर्देशक है। शरीर का नाम पुर भी है। इस शरीर (नगर) की साधना के लिये दृढ़ता प्रदान करने में शिखा क्रिया मूलस्तम्भ का काम करती है। प्राचीन परिपाटी के अनुसार गुरुकुलों में विद्याध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को चूड़ाकर्म चोटी रखे हुए, यज्ञोपवीत धारण किये हुए, पीतवस्त्र (पीले रंग की धोती) आदि धारण करके ही रहना पड़ता था। वर्तमान समय में भी कतिपय ब्रह्मचर्याश्रमों (गुरुकुलों) में इस नियम संस्कार का पालन किया जाता है।

('भारतीय प्रतीक विद्या' के आधार से)

* *

ब्रह्माजी की वाक् शक्ति सरस्वती की पूजा का विधान तथा कवच, स्तोत्र

सोपान २१

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रभो ! आप भगवती सरस्वती की पूजा का विधान, ध्यान, उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प तथा चन्दन आदि का परिचय कराने की कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण ने कहा—नारदजी ! सुनो, काण्वशाखा में कही हुई पूजापद्धति बतलाता हूँ। इसमें जगन्माता सरस्वती के पूजाविधि का वर्णन है। माघ शुक्ला पञ्चमी विद्यारम्भ की मुख्य तिथि बतलायी गई है। उस दिन पूर्वाह्न-काल में ही प्रतिज्ञा करके संयमशील हो जाना चाहिये। पवित्र होकर रहे। स्नान और नित्य क्रिया के पश्चात् भक्तिपूर्वक कलश स्थापन करे। फिर काण्वशाखा में कही हुई विधि से अथवा तान्त्रिक विधि के अनुसार पहले गणेश पूजन करे। इसके पश्चात् इष्ट देवता सरस्वती का पूजन करना उचित है। पूजा से पहले इष्ट देवी सरस्वती का हाथ जोड़कर ध्यान करे। फिर देवी का आवाहन करे। उस दिन पूजा से पहले व्रती रहकर षोडशोपचार से भगवती सरस्वती का पूजन करे। सौम्य ! पूजा के लिये कुछ उपयोगी आवश्यक नैवेद्य वेद में बतलाये गये हैं। ताजा मक्खन, दही, दूध, धान का लावा, सफेद तिल के लड्डु, सफेद गन्ना, गुड़ में बनाया हुआ पक्वान्न, मिश्री, सफेद रंग की मिठाई, मैदा से बनाया हुआ सफेद नमकीन पदार्थ, बढ़िया सात्त्विक सफेद चिउड़ा, शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँ के आटे से घृत में तले हुए पदार्थ, पके हुए स्वच्छ केले का पिष्टक, उत्तम अन्न का घृत में पकाकर उससे बना हुआ अमृत के समान मधुर मिष्टान्न, नारियल तथा उसका पानी, कसेरू, मूली, अदरख, पका हुआ केला, बढ़िया बेल का फल, बेर का फल, देश और काल के अनुसार जो भी ऋतुफल तथा और भी पवित्र स्वच्छ वर्ण के फल-ये सब नैवेद्य के समान हैं।

महामुने ! सुगन्धित उत्तम सफेद पुष्प और सफेद स्वच्छ चन्दन सरस्वती देवी को अर्पण करना चाहिये। नवीन श्वेत वस्त्र और आभूषण श्वेत पुष्पों की माला, श्वेत सुन्दर शङ्ख भगवती सरस्वती को अवश्य समर्पण करना चाहिये। महाभाग मुने ! भगवती सरस्वती का श्रेष्ठ ध्यान परमसुख प्रदान करने वाला है, बुद्धि के भ्रम का उच्छेद करने वाला तथा उत्तम बुद्धि और परम ज्ञान विद्या का प्रदान करने वाला है। वह वेदोक्त ध्यान यह है—

'सरस्वती का श्रीविग्रह शुक्ल वर्ण है। ये परम सुन्दरी देवी सर्वदा हँसती रहती हैं। इनके परिपुष्ट विग्रह के सामने करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा भी तुच्छ है।

ये विशुद्ध चिन्मय रेशमी श्वेत आभायुक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथ में वीणा दूसरे में पुस्तक है । ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति प्रधान देवताओं तथा सुरगणों से ये सुपूजित हैं । श्रेष्ठ मुनि, मनु तथा मानव इनके चरणों में मस्तक झुकाते हैं । ऐसी भगवती सरस्वतीजी को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ।'

इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष को पूजन के समग्र पदार्थ मूलमन्त्र को उच्चारण करते हुए विधिवत् सरस्वती देवी को अर्पण करना चाहिये । फिर कवच का पाठ करने के पश्चात् दण्ड की भाँति भूमि पर पड़कर साष्टांग प्रणाम करे । मुने ! जो पुरुष भगवती सरस्वती को अपना इष्ट देवता मानते हैं, उनके लिये यह नित्य क्रिया है । 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' यह वैदिक अष्टाक्षर मूलमन्त्र परम श्रेष्ठ एवं सबके लिये उपयोगी है अथवा जिनको जिसने जिस मन्त्र का उपदेश दिया है, उनके लिये वही मूलमन्त्र है । 'सरस्वती' इस शब्द के साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़कर अन्त में स्वाहा शब्द लगा लेना चाहिए । लक्ष्मी और योग माया की आराधना में भी इसी मन्त्र का प्रयोग किया जाता है । इस मन्त्र को कल्पवृक्ष कहते हैं प्राचीन काल में कृपा के समुद्र भगवान नारायण ने वाल्मीकि मुनि को इसी का उपदेश दिया था । भारतवर्ष में गङ्गा के पावन तट पर यह कार्य सम्पन्न हुआ था । फिर सूर्य ग्रहण के अवसर पर पुष्कर क्षेत्र में परशुरामजी ने शुक्र को इसका उपदेश किया था। मरीचिनन्दन ने चन्द्रग्रहण के समय प्रसन्न होकर वृहस्पति को बतलाया था । बदरी आश्रम में परम प्रसन्न ब्रह्मा की कृपा से भृगुजी इसे जान सके थे । उन्होंने आस्तीक को यह मन्त्र पढ़ाया था । बुद्धिमान् ऋषिशृङ्ग ने मेरुपर्वत पर विभाण्डक मुनि से इसकी शिक्षा प्राप्त की थी । शिव ने आनन्द में आकर गोतम गोत्र में उत्पन्न कण्वमुनि को इसका उपदेश किया था । महाभाग शेष पाताल में बलि के सभाभवन पर विराजमान थे । वहीं उन्होंने पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज और शाकटायन को इसका अभ्यास कराया था । चार लाख जप करने पर मनुष्य के लिये यह मन्त्र सिद्ध हो सकता है । इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर अवश्य ही मनुष्य को वृहस्पति के समान योग्यता प्राप्त हो सकती है । विप्रेन्द्र ! सरस्वती का कवच विश्व पर विजय प्राप्त कराने वाला है । जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने गन्धमादन पर्वत पर भृगु के आग्रह से उन्हें बतलाया था । वही मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ।

भृगुजी ने कहा ब्रह्मन् ! आप ब्रह्मज्ञानी जनों में प्रमुख, पूर्णज्ञान सम्पन्न, सर्वज्ञ, सब के पिता, सब के स्वामी एवं सबके परम आराध्य है । प्रभो आप मुझे सरस्वती का 'विश्वजय' नामक कवच बतलाने की कृपा करें । मन्त्रों का समूह यह कवच परम पवित्र है ।

ब्रह्माजी बोले—वत्स ! मैं सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाला कवच बतलाता हूँ, सुनो । यह श्रुतियों का सार, कानों के लिये सुखप्रद, वेदों में प्रतिपादित एवं उनसे अनुमोदित है । रासेश्वर भगवान् श्री कृष्ण गोलोक में विराजमान थे । वहीं

वृन्दावन में रासमण्डल था। उसी समय उन प्रभु ने मुझे यह कवच सुनाया था। कल्पवृक्ष की तुलना करने वाला यह कवच परम गोपनीय है। जिन्हें किसी ने नहीं सुना है, वे अद्भुत मन्त्र इसमें सम्मिलित हैं। इसे धारण करने के प्रभाव से ही भगवान् शुक्राचार्य सम्पूर्ण दैत्यों के पूज्य बन सके। ब्रह्मन्! बृहस्पति में इतनी बुद्धि का समावेश इस कवच की महिमा से ही हुआ था। वाल्मीकि मुनि सदा इसका पाठ और सरस्वती का ध्यान किया करते थे। अतः उन्हें कवीन्द्र कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे भाषण करने में परम चतुर हो गये। इसे धारण करके स्वायम्भुव मनु ने सब से पूजा प्राप्त की। कणाद, गोतम, कण्व, पाणिनि शाकटायन, दक्ष और कात्यायन-इस कवच को धारण करके ही ग्रन्थों की रचना में सफल हुए। इसे धारण करके स्वयं कृष्ण द्वैपायन व्यासदेव ने वेदों का विभाग कर खेल-ही-खेल में अखिल पुराणों का प्रणयन किया। शातातप, संवर्त, वसिष्ठ, पराशर, याज्ञवल्क्य, ऋषिश्रृङ्ग, भारद्वाज, देवल, आस्तीक, जैगीषव्य और ययाति ने इस कवच के साथ ही पूरे ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इसी से सर्वत्र उनका सम्मान होने लगा।

विप्रेन्द्र! इस कवच के ऋषि प्रजापति हैं। स्वयं बृहती छन्द है। माता शारदा अधिष्ठात्री देवी हैं। अखिल तत्त्व-परिज्ञानपूर्वक सम्पूर्ण अर्थ के साधन तथा समस्त कविताओं के विवेचन में इसका प्रयोग किया जाता है।

श्रीं ह्रीं-स्वरूपिणी भगवती सब ओर से मेरे सिर की रक्षा करें। श्रीमयी वाग्देवता सदा मेरे ललाट की रक्षा करें। ॐ ह्रीं भगवती सरस्वती निरन्तर कानों की रक्षा करें। ॐ श्रीं-ह्रीं भगवती सरस्वतीदेवी दोनों नेत्रों की रक्षा करें। ऐं-ह्रीं-स्वरूपिणी वाणी की अधिष्ठात्री देवी सदा मेरी नासिका की रक्षा करें। ॐ ह्रींमयी विद्या की अधिष्ठात्री देवी होठों की रक्षा करें। ॐ श्रीं ह्रीं भगवती ब्राह्मी दन्त-पङ्क्ति की निरन्तर रक्षा करें। 'ऐं' यह देवी सरस्वती का एकाक्षर मन्त्र मेरे कण्ठ की रक्षा करें। ॐ श्रीं-ह्रीं मेरे गले की तथा श्रीं मेरे कंधों की रक्षा करें। विद्या की अधिष्ठात्री देवी ॐ ह्रीं-स्वरूपिणी सरस्वती सदा वक्षःस्थल की रक्षा करें। विद्याधिस्वरूपा ॐ ह्रींमयी देवी मेरी नाभि की रक्षा करें। ॐ ह्रीं-क्लीं-स्वरूपिणी देवी मेरी वाणी और मेरे हाथों की सदा रक्षा करें। ॐ स्वरूपिणी भगवती सर्व-वर्णात्मिका मेरे दोनों पैरों को सुरक्षित रखें। ॐ वाग् अधिष्ठात्री-देवी के द्वारा मैं सब प्रकार से सदा सुरक्षित रहूँ। सबके कण्ठ में निवास करने वाली ॐ स्वरूपा देवी पूर्व दिशा में सदा मेरी रक्षा करें। सब की जीभ के अग्र-भाग पर विराजने वाली ॐ स्वरूपिणी देवी अग्निकोण में रक्षा करें।

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।' इसको मन्त्रराज कहते हैं। यह इसी रूप में सदा विराजमान रहता है। यह निरन्तर मेरे दक्षिण भाग की रक्षा करें। ऐं ह्रीं श्रीं—यह अक्षर नैर्ऋत्य कोण में सदा रक्षा करें। जिह्वा के अग्रभाग में रहने वाली ॐ ऐं—स्वरूपिणी देवी पश्चिम दिशा में मेरी

रक्षा करें। ॐ स्वरूपिणी भगवती सर्वाम्बिका वायव्य कोण में सदा मेरी रक्षा करें। गद्य में निवास करने वाली ॐ ऐं-श्रीं-क्लींमयी देवी उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें। सम्पूर्ण शास्त्रों में विराजने वाली ऐं-स्वरूपिणी देवी ईशान कोण में सदा रक्षा करें। पुस्तक में निवास करने वाली ह्रीं स्वरूपिणी देवी मेरे निम्न भाग की रक्षा करें। ॐ स्वरूपिणी ग्रन्थ बीजस्वरूपा देवी सब ओर से मेरी रक्षा करें।

विप्र ! यह सरस्वती-कवच तुम्हें सुना दिया। असंख्य ब्रह्ममन्त्रों का यह मूर्तिमान् विग्रह है। ब्रह्मस्वरूप इस कवच को 'विश्वजय' कहते हैं।

प्राचीन समय की बात है—गन्धमादन पर्वत पर धर्म देव के मुख से मुझे इसे सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। तुम मेरे परम प्रिय हो। अत एव तुम से मैंने यह कह दिया है। तुम्हें अन्य किसी के सामने इसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वस्त्र, चन्दन और अलंकार आदि सामानों (सामग्रियों) से विधिपूर्वक गुरु की पूजा करके दण्ड की भाँति जमीन पर पड़कर उन्हें प्रणाम करें। तत्पश्चात् उनसे इस कवच का अध्ययन करें। पाँच लाख जप करने के पश्चात् यह कवच सिद्ध हो सकता है। इस कवच के सिद्ध हो जाने पर पुरुष को वृहस्पति के समान पूर्ण योग्यता प्राप्त हो सकती है। इस कवच के प्रसाद से पुरुष भाषण करने में चतुर, कवियों का सम्राट और त्रैलोक्यविजयी हो सकता है। उसमें सब कुछ जीतने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।* मुने ! यह कवच काण्व-शाखा के अन्तर्गत है।

(देवी भागवत, नवम स्कन्ध, अध्याय ४ के आधार से)

काण्व-शाखान्तर्गत-सरस्वती-कवच

* ब्रह्मोवाच

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्।
श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम्।।
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने।
रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले।।
अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्।
अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम्।।
यद् धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः।
यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः।।
पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मीको मुनिः।
स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद् धृत्वा सर्वपूजितः।।
कणादौ गोतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः।
ग्रन्थं चकार यद् धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम्।।
धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च।
चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।।

शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः ।
यद् धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ।।
ऋष्यश्रृङ्गो भरद्वाजश्चास्तिकोदेवलस्तथा ।
जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजिताः ।।
कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः ।
स्वयं छन्दश्च बृहती देवता शारदाम्बिका ।।
सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च ।
कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ।।
श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः ।
श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदावतु ।।
ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम् ।
ॐश्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु ।।
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदावतु ।
ॐ श्रीं ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदावतु ।।
ॐ ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्ति सदावतु ।
ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठ सदावतु ।।
ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदावतु ।
ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु ।।
ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपाव्यै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।
ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तो सदावतु ।।
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु ।
ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदावतु ।।
ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु ।
ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु ।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा ।
सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु ।।
ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां सर्वदावतु ।
ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ।।
ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदावतु ।
ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु ।।
ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहेशान्यां सदावतु ।
ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदावतु ।।
ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाधो मां सदावतु ।
ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ।।

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ।
इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ।।
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने ।
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।।
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत् सुधीः ।।
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् ।
यदि स्यात् सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत् ।।
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ।।

(देवी भागवत स्कन्ध ९ अध्याय ४ श्लोक ६२-९०)

।। इति श्री काण्व-शाखान्तर्गत सरस्वती-कवचं समाप्तम् ।।

याज्ञवल्क्य द्वारा भगवती सरस्वती की स्तुति

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सरस्वती देवी का स्तोत्र सुनो, जिससे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। प्राचीन समय की बात है - याज्ञवल्क्य नामक प्रसिद्ध एक प्रधान मुनि थे। उन्होंने भगवती सरस्वती की स्तुति की थी। जब गुरु ने शाप देकर उनकी श्रेष्ठ विद्या को नष्ट कर दिया, तब वे अत्यन्त दुःखी होकर लोलार्क कुण्ड पर, जो उत्तम पुण्य प्रदान करने वाला है, गये। उन्होंने तपस्या के साथ ही शोक विह्वल होकर भगवान् सूर्य की स्तुति की, तब शक्तिशाली सूर्य ने याज्ञवल्क्य को वेद और वेदाङ्ग का अध्ययन कराया और साथ ही कहा-'मुने ! तुम स्मरण-शक्ति प्राप्त करने के लिये भक्तिपूर्वक भगवती सरस्वती की स्तुति करो।' इस प्रकार कहकर दीन जनों पर दया करने वाले सूर्य अन्तर्धान हो गये। तब याज्ञवल्क्य मुनि ने स्नान किया और नम्रता के कारण सिर झुकाकर वे भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

याज्ञवल्क्य बोले—जगन्माता ! मुझ पर कृपा करो। मैं बड़ा निस्तेज हो गया हूँ। गुरु के शाप से मेरी स्मरण-शक्ति नष्ट हो गयी है। मैं विद्या से वञ्चित हो बैठा हूँ। मुझे दुःख सता रहा है। तुम मुझे ज्ञान, स्मृति, शिष्यों को समझाने की शक्ति, विद्या तथा ग्रन्थ-रचना की कुशलता देने के साथ ही अपना उत्तम एवं सुप्रतिष्ठत शिष्य बना लो। माता ! तुम्हारी कृपा से मैं प्रतिभाशाली बनकर सज्जनों की सभा में जाऊँ और वहां विचार करने में मुझे उत्तम क्षमता प्राप्त हो सके। दुर्भाग्य-वश मेरा जो सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो गया है, वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय। जिस प्रकार देवता धूल में छिपे हुए बीज को समयानुसार अंकुरित कर देते हैं, वैसे ही तुम भी मेरे लुप्त ज्ञान को पुनः प्रकाशित कर दो। तुम ब्रह्मस्वरूपा, परमा, ज्योतिरूपा, सनातनी, सम्पूर्ण विद्याओं की अधिष्ठात्री एवं भगवती सरस्वती हो। आपको बार-बार प्रणाम है। विसर्ग, बिन्दु एवं मात्रा—तीनों में जो अधिष्ठान रूप से

विद्यमान है, उसकी भी अधिष्ठात्री भगवती नीति को बारंबार नमस्कार है। वे देवी व्याख्या - स्वरूपिणी है तथा व्याख्या की अधिष्ठात्री भी हैं। जिनके बिना सुप्रसिद्ध गणक भी संख्या के परिगणन में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता, उन कालसंख्या-स्वरूपिणी भगवती को बार-बार नमस्कार है। जो भ्रम सिद्धान्त रूपा तथा स्मृतिशक्ति, ज्ञानशक्ति और बुद्धिस्वरूपा हैं, उन देवी को बार-बार प्रणाम है। एक बार सनत्कुमार ने ब्रह्माजी से ज्ञान पूछा था। उस समय ब्रह्मा भी मूक जैसे हो गये थे। वे ब्रह्म सिद्धान्त के विषय में कुछ भी नहीं कह सके। उस समय स्वयं भगवान् श्री कृष्ण वहाँ पधारे। उन्होंने आते ही कहा—'प्रजापते! तुम भगवती सरस्वती को इष्ट देवता मानकर उनकी स्तुति करो।' परम प्रभु श्री कृष्ण की आज्ञा पाकर ब्रह्मा ने तुरंत ही सरस्वती की स्तुति आरम्भ करदी। फिर तो देवी की कृपा से उत्तम सिद्धान्त के विवेचन में वे सफलीभूत हो गये।

ऐसे ही एक समय की बात है—पृथ्वी ने अनन्त से ज्ञान का रहस्य पूछा था। शेष की मूकवत स्थिति हो गयी। वे सिद्धान्त नहीं बता सके। उनके हृदय में घबराहट उत्पन्न हो गयी। तब कश्यप के आज्ञानुसार उन्होंने भी सरस्वती की स्तुति की। इससे वे ऐसे सुयोग्य बन गये कि उनके मुख से भ्रम को दूर करने वाले निर्मल सिद्धान्त का विशद विवेचन हो सका। जब व्यास ने वाल्मीकि से पुराण सूत्र के विषय में प्रश्न किया, तब वे चुप हो गये। ऐसी स्थिति में वाल्मीकि ने भगवती जगदम्बा का स्मरण किया। तब भगवती ने उन्हें वर दिया, जिसके प्रभाव से मुनिवर वाल्मीकि सिद्धान्त का प्रतिपादन कर सके। उस समय उन्हें भ्रमरूपी अन्धकार को मिटाने वाला प्रकाशमान ज्योति के सदृश निर्मल ज्ञान प्राप्त हो गया। भगवान् श्री कृष्ण के अंश व्यास जी वाल्मीकि मुनि के मुख से पुराण सूत्र सुनकर उसका अर्थ कविता के रूप में स्पष्ट करने के लिये कल्याणमयी देवी का ध्यान करने लगे। पुष्कर क्षेत्र में रहकर सौ वर्षों तक उपासना की। माता तब तुमसे वर पाकर व्यास जी कवीश्वर बन सके। उसी समय उन्होंने वेदों का विभाजन तथा पुराणों की रचना की। जब देवराज इन्द्र ने भगवान् शंकर से तत्व ज्ञान के विषय में प्रश्न किया, तब क्षण भर भगवती का ध्यान करके वे उन्हें ज्ञानोपदेश करने लगे। फिर इन्द्र ने बृहस्पति से शब्दशास्त्र के विषय में पूछा। जगदम्बे! उस समय बृहस्पति पुष्कर क्षेत्र में जाकर देवताओं के वर्ष से एक हजार वर्ष तक तुम्हारे ध्यान में संलग्न रहे। इतने वर्षों के बाद तुम ने उन्हें वर प्रदान किया। तब वे इन्द्र को शब्दशास्त्र और उसका अर्थ समझा सके। बृहस्पति ने जितने शिष्यों को पढ़ाया है और जितने सुप्रसिद्ध मुनि उनसे अध्ययन कर चुके हैं, वे सब-के-सब भगवती सुरेश्वरी का चिन्तन करने के पश्चात् ही सफलीभूत हुए हैं। माता! वह देवी तुम्हीं हो। मुनिश्वर, मनु और मानव—सभी तुम्हारी पूजा और स्तुति कर चुके हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता और दानवेश्वर प्रभृति-सबने तुम्हारी उपासना की है। जब हजार मुखवाले शेष, पाँच मुखवाले शंकर तथा चार मुखवाले

ब्रह्मा तुम्हारा यशोगान करने में जड़वत् हो गये, तब एक मुखवाला मैं मानव तुम्हारी स्तुति कर ही कैसे सकता हूँ ॥

नारद ! इस प्रकार स्तुति करके मुनिवर याज्ञवल्क्य भगवती सरस्वती को प्रणाम करने लगे उस समय भगवती के सामने भक्ति के कारण उनका कंधा झुक गया था । उनकी आंखों से जल की धाराएं निरन्तर गिर रही थीं । इतने में ज्योतिः स्वरूपा महामाया का उन्हें दर्शन प्राप्त हुआ । देवी ने उनसे कहा-'मुने ! तुम सुप्रख्यात कवि हो जाओ ।' यों कहकर भगवती महामाया वैकुण्ठ पधार गयीं । जो पुरुष याज्ञवल्क्य-रचित इस स्तोत्र को पढ़ता है, उसे कवीन्द्र पद की प्राप्ति हो जाती है । भाषण करने में वह बृहस्पति की तुलना कर सकता है । कोई महान् मूर्ख अथवा दुर्बुद्धि ही क्यों न हो, यदि वह एक वर्ष तक नियमपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करता है, तो वह निश्चय ही पण्डित, परम बुद्धिमान एवं सुकवि हो जाता है ।* (देवी भागवत, नवम स्कन्ध, अध्याय ५, के आधार से)

याज्ञवल्क्य-रचित-सरस्वती-स्तोत्रम्

* याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम् ।
गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥
ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम् ।
ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ॥
प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् ।
लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु ॥
यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ।
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतिरूपा सनातनी ॥
सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः ।
विसर्गबिन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ॥
तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नीत्यै नमो नमः ।
व्याख्यास्वरूपा सा देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी ॥
यया विना प्रसंख्यावान् संख्यां कर्तुं न शक्यते ।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥
भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ।
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥
प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः ।
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ॥
बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ।
तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ॥
उवाच स तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते ।
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ॥

चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम् ।
यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा ॥
बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ।
तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया ॥
ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम् ।
व्यास पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मीकिं यदा ॥
मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदम्बिकाम् ।
तदा चकार सिद्धान्तं तद्वरेण मुनीश्वरः ॥
सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्ध्यध्वंसदीपकम् ।
पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकुलोद्भवः ॥
तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवीन्द्रो बभूव ह ॥
तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः ।
यदा महेन्द्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवाम् ॥
क्षणं तामेव संचिन्त्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः ।
पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम् ॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥
उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् ।
अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥
ते च तां परिसंचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम् ।
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः ॥
दैत्येन्द्रश्च सुरैश्चापि ब्रह्माविष्णुशिवादिभिः ।
जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः ॥
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ।
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥
प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ।
ज्योतिरूपा महामाया तेन दृष्टाप्युवाच तम् ॥
सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह ।
याज्ञवल्क्य कृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ॥
स कवीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पति समो भवेत् ।
महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत् ॥
स पण्डितश्च मेधावी सुकवीन्द्रो भवेद् ध्रुवम् ॥

(देवी भागवत, नवम् स्कन्ध, अध्याय ५, श्लोक ६-३३)

शारदा शारदाम्भोज वदना बदनाम्बुजे ।
सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥

सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम् ।
देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः ।।

'शरत्काल में उत्पन्न कमल के समान मुख वाली और सब मनोरथों को प्रदान करने वाली शारदा सब सम्पत्तियों के साथ मेरे मुख में सर्वदा निवास करें। उन वचन की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को प्रणाम करता हूं; जिनकी कृपा से मनुष्य देवता बन जाता है।'

* *

भगवान् ब्रह्मा की ब्रह्मशक्ति सावित्री (गायत्री) की पूजा विधि तथा स्तोत्र

सोपान २२

सावित्री (गायत्री) देवी का ध्यान

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रकथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ।।

(देवी भागवत १२।३)

'वे मोती, मूंगा, सुवर्ण, नीलमणि तथा उज्ज्वल प्रभा से युक्त पांच मुखों से सुशोभित हैं। तीनों नेत्रों से उनके मुखों की अनुपम शोभा हो रही है। उनके रत्नमय मुकुट में चन्द्रमा जड़े हुए हैं। वे वरदायिनी सावित्री (गायत्री) अपने दस हाथों में अभय और वर-मुद्राएँ, अंकुश, पाश, शुभ्र कपाल, रस्सी; शङ्ख, चक्र और दो कमल धारण किये हुए हैं।

परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी ।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ।।

(देवी भागवत ९।१।८२)

'गायत्री परब्रह्मस्वरूपा हैं, निर्वाण परमपद देने वाली हैं। ब्रह्मतेजोमयी शक्ति हैं और परब्रह्म ही उनका अधिष्ठातृ देवता है।'

पूजा विधि

आसन— दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा ।
देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम् ।।

'हे देवी ! यह आसन उत्तम काष्ठ के सारतत्त्व से बनाया हुआ है। इसमें

सुवर्ण आदि भी जड़े हुए हैं, आपके विराजमान होने हेतु यह पुण्यप्रद आसन आपकी सेवा में समर्पित करता हूँ।'

पाद्य—तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्।
पूजाङ्गभूतं शुद्धं चं मया भक्त्या निवेदितम्॥

'देवेश्वरी! यह तीर्थों का पवित्र जल जो अत्यन्त प्रीतिदायक, पुण्यप्रद तथा पूजा का अङ्गभूत है। यह शुद्ध पाद्य रूप में भक्तिभाव से आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।'

अर्घ्य- पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्।
पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम्॥

'देवी! यह शङ्ख के जल से युक्त तथा दूर्वा, पुष्प और अक्षत से सम्पन्न परम पवित्र पुण्यदायक अर्घ्य मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ।'

स्नानीय जल—सुगन्धि धात्रीतैलं च देहसौन्दर्यकारणम्।
मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवी! सुगन्धित आंवले का तैल जो शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है और स्नान के लिय शुद्ध पवित्र जल आपकी सेवा में निवेदन करता हूँ। आप यह सब स्वीकार करें।

वस्त्र- देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्द्धनम्।
कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवेश्वरी! यह सूती और रेशमी वस्त्र देह की शोभा का स्वरूप ही है, सभा में शरीर की विशेष शोभा बढ़ाने वाला है। अतः आप इसको ग्रहण करें।

यज्ञोपवीत विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्पसूत्रविनिर्मितम्।
पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्॥

'देवेश्वरी! पवित्र सूत द्वारा निर्मित, विशुद्ध ग्रन्थियों से युक्त, जो वेद मन्त्रों से पवित्र किया हुआ है। यह यज्ञोपवीत आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ, आप कृपया इसे स्वीकार करें।

अनुलेपन—मलयाचलसम्भूतं देहशोभाविवर्द्धनम्।
सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्॥

'देवेश्वरी! यह मलय पर्वत से उत्पन्न सुगन्धयुक्त, सुख प्रदान करने वाला, देह की शोभा को बढ़ाने वाला है। मैं अनुलेपन के लिये आपकी सेवा में अर्पित करता हूँ।'

आभूषण—काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा।
सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवी! सुवर्ण आदि का निर्माण किया हुआ, यह परम सुन्दर आभूषण है। जो इसका धारण करता है, उसकी शोभा को भी यह सर्वदा बढ़ाने वाला है। इससे पुण्य और सुख की प्राप्ति होती है, अतः आप इसको स्वीकार करें।

सुगन्ध-इत्र - सर्वमङ्गलस्वरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः ।
पुण्यप्रदश्च गण्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम् ।।

'देवी ! यह सर्वमङ्गलरूप एवं सर्वमङ्गलदायक, श्रेष्ठ पुण्यप्रद तथा उत्तम सुगन्धित गन्ध (इत्र) आपकी सेवा में समर्पित है, इसे आप स्वीकार करें ।

सिन्दूर—सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्द्धनम् ।
पूरणं भूषणानां च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ।।

'देवी ! यह सुन्दर एवं सुरम्य उत्तम सिन्दूर भाल की शोभा बढ़ाने वाला है । इसको आभूषणों का पूरक माना गया है । आप इसको स्वीकार करें ।

पुष्पमाला - नानापुष्पविनिर्माणं बहुभाससमन्वितम् ।
प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम् ।।

'देवेश्वरी ! नाना प्रकार के विचित्र रंग-विरङ्गे पुष्पों द्वारा उत्तम प्रकार से निर्माण किया हुआ सुन्दर हार अत्यन्त प्रकाशमान है । इससे आपको प्रसन्नता प्राप्त होगी । अतः कृपया इस पुण्यदायक हार को आप ग्रहण करें ।'

धूपम्—गन्धद्रव्योद्भवः पुण्यः प्रीतिदो दिव्यगन्धदः ।
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।

'देवी ! अनेक सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित, पवित्र, प्रीतिदायक तथा दिव्य सुगन्ध प्रकट करने वाला, यह धूप है । मैं भक्तिभावपूर्वक आपको अर्पित करता हूँ । आप इसे ग्रहण कीजिये ।

दीपम् जगतां दर्शनीयं च दर्शनं दीप्तिकारकम् ।
अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम् ।।

'देवेश्वरी ! जो जगत् के लिये दर्शनीय, दृष्टि का सहायक तथा दीप्ति (प्रकाश) का कारण है. जिसको अन्धकार के विनाश का बीज कहा गया है । यह दिव्य दीप मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ ।'

नैवेद्यं—तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम् ।
पुण्यदं स्वादरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।

'देवी ! जो तुष्टि, पुष्टि, प्रीति एवं पुण्य प्रदान करने वाला तथा भूख मिटाने वाला है । इस प्रकार का उत्तम सुस्वाद युक्त नैवेद्य आपके समक्ष प्रस्तुत है, आप इसको स्वीकार करें ।'

शीतल पेय-जल—सुशीतलं सुवासितं च पिपासानाशकारणम् ।
जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम् ।

'देवी ! प्यास मिटाने में समर्थ तथा सम्पूर्ण जगत् का जीवनरूप सुवासित एवं सुशीतल शुद्ध पवित्र यह जल आपको समर्पित है । आप इसे स्वीकार करें ।'

ताम्बूल—ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया भक्त्या निवेदितम् ।।

'देवेश्वरी ! यह सुन्दर, रमणीय, सन्तोषप्रद, पुष्टिकारक एवं कर्पूरादि

से सुवासित ताम्बूल, मैं भक्तिभावपूर्वक आपको समर्पित करता हूँ। कृपया ग्रहण करें।

आचमनीय-जल शुद्धं शुद्धिप्रदं चैव शुद्धानां प्रीतिदं महत्।
रम्यमाचमनीयं च मया दत्तं प्रगृह्यताम्॥

'देवेश्वरी! यह रमणीय, आचमनीय, शुद्ध पवित्र जल जो उत्तम शुद्धि करने वाला भी है। इससे शुद्ध पुरुषों को बड़ी प्रसन्नता होती है। आप कृपापूर्वक इसको स्वीकार करें।'

दक्षिणा—पूजाफलसमृद्ध्यर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वरि।
स्थापितं तेन मे प्रीता पूर्णान् कुरु मनोरथान्॥

'मैंने जो पूजा में उपचार प्रस्तुत किये हैं, उनमें जो त्रुटि रही हो, उनकी पूर्ति तथा पूजा फल समृद्ध होने के लिये, यह सुवर्णमय दक्षिणा आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ। आप प्रेमपूर्वक स्वीकार करें और मेरे मनोरथों को पूर्ण करें।'

आर्तिक्यम्- कदलीगर्भसंभूतं कर्पूरं च सुदीपितम्।
आरार्त्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव॥

'कदली (केले) के गर्भ से बनाये हुए कर्पूर को प्रज्वलित करके आपकी मैं आरती कर रहा हूँ। वरदायिनी! आप इसको देखकर स्वीकार करें।'

प्रदक्षिणा यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणं पदे पदे॥

'प्रदक्षिणा करने में जो पैर बार-बार उठते हैं, इसके द्वारा जैसे-तैसे, जान-अनजान में जो भी पाप हो गये हों, वे सभी नष्ट हो जाते हैं।'

पुष्पाञ्जलि नाना सुगन्ध पुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि॥

'ऋतु के अनुसार नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की अञ्जलि मैं प्रस्तुत करता हूँ। परमेश्वरी! आप ग्रहण करें।'

शय्या—रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्।
सुखदं पुण्यदं चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवी यह सुन्दर शय्या रत्नों के तत्त्वसार आदि के द्वारा निर्माण की गई है। इस पर पुष्प बिछे हुए हैं और चन्दन का छिड़काव हुआ है। अतएव यह सुख और पुण्य प्रदान करने वाली है। आप इसे ग्रहण करें।'

इसके पश्चात् दण्डवत् प्रणाम करें। तत्पश्चात् हाथ जोड़ें, स्तोत्र का पाठ करें।

विद्वान् पुरुषों को इन पूजोपचार द्रव्यों को मन्त्रों का उच्चारण करते हुए भगवती सावित्री को मूलमन्त्र द्वारा अर्पण करना चाहिये। 'सावित्री' इस शब्द में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करें। इसके पूर्व लक्ष्मी, माया और काम बीज का उच्चारण हो। 'श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा'

यह अष्टाक्षर मन्त्र ही मूलमन्त्र कहा गया है। भगवती सावित्री का सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करने वाला जो स्तोत्र यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा में वर्णित है, द्विजों (ब्राह्मणों) के लिये जीवन स्वरूप है, उस स्तोत्र को इस पुस्तक में उपासकों के लाभार्थ लिखा गया है। पूर्वकाल में गोलोक धाम में विराजमान् भगवान् श्रीकृष्ण ने सावित्री को ब्रह्माजी के साथ जाने की आज्ञा दी थी, परन्तु सावित्रीजी उनके साथ ब्रह्मलोक में जाने के लिये तैयार नहीं हुईं। तब भगवान् श्रीकृष्ण के कथनानुसार उपर्युक्त पूजाविधि द्वारा ब्रह्माजी ने सावित्री की भक्ति पूर्वक पूजा करके वेदमाता सावित्री की इसी स्तोत्र द्वारा स्तुति की। तदनन्तर भगवती सावित्री ने संतुष्ट होकर ब्रह्माजी को पति रूप में स्वीकार किया और ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक में जाने को तैयार हुईं।

इसी पूजाविधि और इसी स्तोत्रराज के द्वारा राजा अश्वपति ने भगवती सावित्री की आराधना की थी, तब भगवती सावित्री ने प्रसन्न होकर राजा अश्वपति को दर्शन दिये और राजा को मनोऽभिलषित वर प्रदान किया था। यह स्तवराज परम पवित्र है। यदि सन्ध्या के पश्चात् पुरुष इस स्तवराज का पाठ करता है तो चारों वेदों का पाठ करने से जो फल प्राप्त होता है, उसी फल का अधिकारी हो जाता है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति खण्ड, अध्याय २३ के आधार से)

नोट—इस पूजा विधि में पूजोपचारों के क्रम में दक्षिणा, आरती, प्रदक्षिणा और पुष्पाञ्जलि का उल्लेख ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड अध्याय २३ में नहीं है; किन्तु वहां भगवान् ब्रह्माजी द्वारा भगवती सावित्री की पूजा की गई है। जब कोई मनुष्य शरीरधारी भगवती श्री माँ सावित्री की पूजा करे तो यह पूजोपचार भी समर्पण होने ही चाहिएँ। इस विचार से इन पूजोपचारों को भी अन्य पूजा विधियों से ग्रहण कर इस पूजा विधि में सम्मिलित किया गया है।

भगवान् ब्रह्माकृत सावित्री स्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनी।
नारायणात्समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि ।।१
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि।
द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि ।।२
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि।
सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि ।।३
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे।
सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ।।४
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे।
ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ।।५

कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते द्विजः ।
तत् ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति ।।६
(ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृति, अध्याय २३।७९-८४)

।। भगवान् ब्रह्माकृत सावित्री स्तोत्र सम्पूर्णम् ।।

ब्रह्माजी ने कहा – सुन्दरी ! तुम नारायण स्वरूपा एवं नारायणी हो। सनातनी देवी ! भगवान् नारायण से ही तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम मुझ पर प्रसन्न होने की कृपा करो ।।१।। देवी ! तुम परम तेजःस्वरूपा हो। तुम्हारे प्रत्येक अङ्ग में परम आनन्द व्याप्त है। द्विजातियों के लिए जाति स्वरूपा सुन्दरी ! तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ।।२।। सुन्दरी ! तुम नित्या, नित्यप्रिया, नित्यानन्द स्वरूपा हो। तुम अपने सर्वमङ्गलमय रूप से मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ।।३।। शोभने ! तुम ब्राह्मणों के लिए सर्वस्व हो। तुम सर्वोत्तम एवं मन्त्रों की सारतत्त्व हो। तुम्हारी उपासना से सुख और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ।।४।। सुन्दरी ! तुम ब्राह्मणों के पाप रूपी इंधन को जलाने के लिये प्रज्वलित अग्नि हो। ब्रह्म तेज प्रदान करना तुम्हारा सहज गुण है। तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ।।५।। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीर से जो भी पाप करता है, वे सभी पाप तुम्हारे नाम का स्मरण करते ही भस्म हो जायेंगे ।।६।।

।। इति ब्रह्माकृत सावित्री स्तोत्र सम्पूर्णम् ।।

* *

वीरमित्रोदयपूजाप्रकाशादुद्धृतः ब्रह्मणः पूजादिविधिः

सोपान २३

अथ ब्रह्मणः पूजाविधिः

भविष्यपुराणे,

पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः ।
तस्मादेष सुसम्पूज्यो यतो लोकगुरुः परः ।।
सर्वं ब्रह्मसमा लोकाः सर्वे ब्रह्मणि संस्थिताः ।
तस्मात् समर्चयेद्ब्रह्म य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।।
यो न पूजयते भक्त्या सुरश्रेष्ठं सुरोत्तमम् ।
न स नाकस्य राज्यस्य न स मोक्षस्य भाजनम् ।।
यस्तु पूजयते भक्त्या विरिञ्चि कमलासनम् ।
स नाकराज्यमोक्षाणां क्षिप्रं भवति भाजनम् ।।

तस्मात् सौम्यमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया ।
अर्चयेत सदा देवमापन्नोऽपि नरो नृप ।।
वरं देहपरित्यागो वरं नरकसम्भवः ।
न चैवापूज्य भुञ्जीत देवं वै पद्मसम्भवम् ।।
सदा पूजयते यस्तु वीर भक्त्या पितामहम् ।
मनुष्यचर्मणा नद्धः स वेधा नात्र संशयः ।।
न हि वेधोऽर्चनादन्यत् पुण्यमस्त्यधिकं क्वचित् ।
इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः स्वयम्भवः ।।
ब्रह्माणं द्वेष्टि यो मोहात् सर्वदेवनमस्कृतम् ।
नरो नरकगामी स्यात् तस्य सम्भाषणादपि ।।

अथागारसमूहनादि ।

पश्यन् परिहरन् जन्तून् मृदुपूर्वं महीपते ।
शनैः सम्मार्जनं कृत्वा चान्द्रायणफलं लभेत् ।।
वस्त्रपूतेन तोयेन यः कुर्यादुपलेपनम् ।
पश्यन् परिहरन् जन्तूनग्निष्टोमफलं लभेत् ।।
नैरन्तर्येण यः कुर्यात् पक्षं सम्मार्जनार्चनम् ।
युगं कोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ।।
तस्यान्ते च चतुर्वेदः सुरूपः प्रियदर्शनः ।
आढ्यः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः ।।
कपटेनापि यः कुर्याद् ब्रह्मशालासु मानद ।
सम्मार्जनादि वै कर्म सोऽपि प्राप्नोति तत्पदम् ।।
प्रतिपदादिसर्वेषु दिवसेषूत्सवेषु च ।
सर्वकालेषु पुण्येषु पौर्णमास्यां विशेषतः ।।
शङ्खभेर्यादिनिर्घोषैर्महद्भिर्गेयसंयुतैः ।
कुर्यान्नीराजनं देवे सुरज्येष्ठे चतुर्मुखे ।।
यावत्पर्वाणि विधिना कुर्यान्नीराजनं नृप ।
तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ।।

अत्र सर्वपदं विहितकालोपलक्षकम् ।

स्नानकाले त्रिसन्ध्यं तु यः कुर्यान्नृत्यवादनम् ।
गीतं वा मुखवाद्यं वा तस्य पुण्यफलं शृणु ।।
यावन्त्यहानि कुरुते गेयनृत्यादिवादितम् ।
तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ।।

अथ स्नपनादि विधिः ।

कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च ।
अत्र—स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्रह्मस्नानं हि तत्स्मृतम् ॥
स्नपनं सर्वदेवानां गोप्रदानसमं फलम् ।

इति सामान्यपरिभाषोक्तेर्गोप्रदानसमं फलम् । स्वर्गः फलमिति केचित् ॥

कपिलापञ्चगव्येन दधिक्षीरयुतेन च ।
स्नानं शतगुणं ज्ञेयमितरेभ्यो नराधिप ॥
वर्षकोटिसहस्रैस्तु यत पापं समुपार्जितम् ।
पितामहघृताभ्यङ्गाद् दहेत् सर्वं न संशयः ॥
कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत् पापं समुपार्जितम् ।
पितामहघृतस्नानं दहेदग्निरिवेन्धनम् ॥
शुक्लप्रतिपदि स्नानं सकृत् कृत्वा तु कञ्जजे ।
कुलैकविंशमुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते ॥

कञ्जजो ब्रह्मा । अत्र स्नाने घृतमेव द्रव्यम् ।

अयुतं यो गवां दद्याद् भक्त्या वै वेदपारगे ।
वस्त्रहेमादियुक्तानां क्षीरस्नानेन तत् फलम् ॥

तत्फलम् अयुत गोदानफलम् । वस्त्रहेमादियुक्तानां गवामित्यन्वयः ।

सकृदाज्येन पयसा विरिञ्चि स्नापयेत्तु यः ।
गाङ्गेयेन स यानेन याति ब्रह्मसलोकताम् ॥

गाङ्गेयेन हेमकयेन ।

स्नाप्य दध्ना सकृद् वीर कञ्जजं विष्णुलोकभाक् ।
मधुना स्नापयित्वा तु वीरलोके महीयते ॥
स्नानमिक्षुरसेनेह यो विरञ्चेः समाचरेत् ।
याति लोकं ग्रहपतेस्तेजसा भासयन् नभः ॥

जन्मपतेः क्वचित्पाठः । तत्र जन्मपतिर्ब्रह्मा ।

फलोदकेन यो भक्त्या स्नापयेत् पद्मसम्भवम् ।
उत्सृज्य पापकलिलं स यात्यर्कसलोकताम् ॥
वस्त्रपूतेन तोयेन स्नापयेद् यो जगत्पतिम् ।
स सर्वकामतृप्तात्मा लोकमार्यमवाप्नुयात् ॥
सर्वौषधीभिर्यो मर्त्यः स्नापयेत् पद्मसम्भवम् ।
कामिकेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥

कामिकेन इच्छाविशेषेण ।

गन्धचन्दनतोयेन स्नापयेद् योऽम्बुजोद्भवम् ।
रुद्रलोकमवाप्नोति तेजसा हेलिसन्निभः ॥ (हेलिः सूर्यः ।)

पाटलोत्पलपद्मानि करवीराणि सर्वदा ।
स्नानेऽमलानि योज्यानि स्थिराणि सुरभीणि च ।।
स्थिराणि अल्पकालेनैव यानि म्लानतां न यान्ति ।
एषामेकतमैः स्नानं भक्त्या कृत्वा च वेधसि ।
विधूय पापकलिलं विभुलोकमवाप्नुयात् ।। (विभुर्ब्रह्मा)
कस्तूर्यगुरुतोयेन स्नापयेद् योऽम्बुजोद्‌भवम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ।।
गायत्रीशतजप्तेन विधूतेनाम्भसा विभुम् ।
स्नापयित्वा सकृद्‌भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।
विभुं शीताम्बुना स्नाप्य धारोष्णपयसा ततः ।
स्नाप्य पश्चाद् घृतस्नानं कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ।।

कृत्वा कारयित्वेत्यर्थः ।

एतत् स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भक्तितः ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।
मृत्कुम्भात् ताम्रजैः कुम्भैः स्नानं शतगुणं भवेत् ।
रौप्यैर्लक्षोत्तरं ज्ञेयं हैमैः कोटिगुणं भवेत् ।।
ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात् स्पर्शनं वरम् ।
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम् ।।
वाचिकं मानसं पापं घृतस्नानेन देहिनाम् ।
क्षिणोति पद्मजो यस्मात् तस्मात्स्नानं समाचरेत् ।।
स्नापयित्वाऽर्चयेद् भक्त्या यथा तच्छृणु तत्त्वतः ।
शुचिवस्त्रधरः स्नातः कृतन्यासश्च भारत ।।
चतुर्हस्तं न्यसेत्पद्मं चतुर्भागविभाजितम् ।
मध्ये तस्य लिखेच्चक्रं दलैर्द्वादशभिर्युतम् ।।
आकाराणि ततो न्यस्य वराकाराणि चैव हि ।
अक्षरं विहितं चान्यत् पत्रभागे प्रकीर्तितम् ।।
नानावर्णकसंयोगाल्लिखेच्चैवानुपूर्वशः ।
कृष्णोत्कटं तु मध्यं स्यात् पीतरक्तं तथा परम् ।।
सितं शुभ्रं तु कर्तव्यमब्जभागेषु वर्जितम् ।
प्रभामण्डल बाह्ये तु वेष्टयेच्चक्रनायकम् ।।
एवमालिख्य यत्नेन मूलमन्त्रं ततो न्यसेत् ।
मूर्ध्नः पादतलं यावत् प्रणव च न्यसेद् बुधः ।।
नादं च विन्यसेत् तावद् यावदब्जस्य शून्यता ।
तकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि त्सकारं मुखमण्डले ।

विकारं कण्ठदेशे तु तुकारं चाङ्गसन्धिषु ।
र्वकारं हृदि मध्ये तु रेण्यकारं तु पार्श्वयोः ।।

रेकारं दक्षिणे, ण्यकारं वामे ।

भकारं कटिनाभिस्थं र्गोकारं जानुवोरुषु ।।

जान्वोः ऊर्वोरित्यर्थः ।

देकारं जङ्घयोर्न्यस्य वकारं पादपद्मयोः ।।
स्यकारमङ्गुष्ठयोर्न्यस्य धीकारं चोरसि न्यसेत् ।।
मकारं जानुदेशे तु हिकारं गुह्यमादिशेत् ।
धिकारं हृदये न्यस्य योकारौ चोष्ठयोर्न्यसेत् ।।
नकारं नासिकाग्रे तु प्रकारं नेत्रयोस्तथा ।
चोकारं च भ्रुवोर्मध्ये दकारं घ्राणमाश्रितम् ।।
याकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि तकारं केशमाश्रितम् ।
न्यासं कृत्वात्मनो देहे देवे कुर्यात् तथा नृप ।।

देवे कुर्यात्तथेति पूर्वोक्तप्रकारेण देवाङ्गेऽपि मन्त्राक्षरन्यासं कुर्वीतेत्यर्थः ।

सर्वोपहारसम्पत्तिं कृत्वा सम्यक् परीक्षयेत् ।
कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विमिश्रितम् ।।
गन्धतोयमुपस्कृत्य गायत्र्या प्रणवेन तु । (उपस्कृत्य अभिमन्त्र्य)
प्रोक्षयेत् सर्वद्रव्याणि पश्चादर्चनमाचरेत् ।।
भूयश्च तं समुच्चार्य प्रणवं सर्वतोमुखम् ।
विन्यसेत् पद्ममध्ये तु पीठनिष्पत्तिहेतवे ।।

तमित्यादि, तं प्लुतं त्रिमात्रं प्रणवमुच्चार्य पद्ममध्ये सर्वतोमुखं विन्यसेदित्यर्थः ।

आसने पृथिवी ज्ञेया सर्वसत्त्वधरा मता ।
ह्रस्वोङ्कारे मतां सा तु दीर्घोङ्कारे तु देवराट् ।।
प्लुतस्तु व्यापयेद् भावं मोक्षदं चामृतात्मकम् ।
यन्त्रस्थो न निवर्तेत योगी प्राणपरायणः ।।
आवाहनं ततः कुर्यादक्षरेण परेण च । (परेणाक्षरेण प्रणवेनेत्यर्थः)
आवाह्य तेजोरूपं तु न्यसेन्मन्त्रवरं ततः ।
ततो विभावयेद् देवं पद्मस्थं चतुराननम् ।।
स्रष्टारं सर्वजगतां विष्णोर्नाभिसमुद्भवम् ।
सम्भाव्य विधिवद्भक्त्या पश्चात् पूजनमारभेत् ।।(सम्भाव्य ध्यात्वा)
गन्धपुष्पादिसम्भारं क्रमात् सर्वं प्रकल्पयेत् ।
गायत्रीमुच्चरन् मन्त्रं सर्वकर्माणि साधयेत् ।।
पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरम् ।
खण्डलड्डुक श्रीवेष्टकासाराशोकवर्त्तिकाः ।।

स्वस्तिकोल्लोपिकादुग्धतिलावेष्टतिलाढिकाः ।
फलानि चैव पक्वानि लग्नखण्डगुडानि च ।।
अन्यानि विधिना दद्यादन्नानि विविधानि च ।
एवमादीनि चान्यानि दापयेच्छक्तितो नृप ।।
मूलमन्त्रेण देवस्य ततो देहं विभावयेत् ।
पूजयेच्चापि विधिना येन तं ते ब्रवीम्यहम् ।।
प्राणायामत्रयं कृत्वा देहसंशोधनाय वै ।
आवाहयेत् ततोऽनन्तं धारयन्तं धरां सदा ।।
ध्यात्वाऽनन्तं ततो रुद्रं पद्मकिञ्जल्कमध्यगम् ।
ध्यायेद् विष्णुं ततो देवं स्वयमम्भोजसन्निभम् ।।
एवं त्रिदेवतारूढं पद्ममध्येऽब्जसम्भवम् ।
पूजयेन्मूलमन्त्रेण पद्मोदरनिभं नृप ।।
ऋग्वेदं च यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् ।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मं सम्पूजयेन्नृप ।।
ऐशान्यादिक्रमाद् राजन् विदिशश्च समन्ततः ।
दिक्पालान् दिक्षु सर्वासु भवनेष्वन्त एव हि ।।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ।
ज्योतिषं च महाबाहो उपवेदाश्च कृत्स्नशः ।।
इतिहासपुराणानि यथायोग्यं यथाक्रमम् ।
शिक्षाव्याकरणादीनि देवस्य पुरतः सदा ।
कल्पादयस्ततश्चान्ये दिशासु विदिशासु च ।
महाव्याहृतयः सर्वाः प्रणवेन समन्विताः ।।
पूर्वादिक्रमयोगेन पूजयेद् विधिना नृप ।
शक्तयो ब्रह्मणश्चैव लोके शक्राद्यवस्थिताः ।।
ग्रहादीनां च रूपेण तत्स्वरूपस्थिताः स्वयम् ।
अनेकानन्तसंकाशं देवदेवं समर्चयेत् ।।
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव राशयश्च विशेषतः ।
पूज्याः सर्वे यथान्यायं प्राकाराग्रेषु संस्थिताः ।।
नागाश्च क्रमशश्चैव पूजनीयास्तथाऽग्रतः ।
देवता ऋषयश्चैव सरितः सागरास्तथा ।।
तत्तेजोनिलयाः सर्वे पूजनीयाः प्रयत्नतः ।
आचम्य विधिवत् पूर्वं मन्त्रपूतेन वारिणा ।।
हृदयादीनि चाङ्गानि हृदयं च तथा शिरः ।
शिखा नेत्रं तथा वर्म अस्त्रं च भरतर्षभ ।।

माहेन्द्रादिदिशश्चैताः पूजयेद् विधिवन्नृप ।
हृदयं पुरतः पूज्यं शिरो देवस्य पृष्ठतः ।।
एवं सम्पूजयेद् देवं मूलमन्त्रेण कृत्स्नशः ।
विसर्जयेद् दर्शयित्वा मुद्रां तु भरतर्षभ ।।
माहेन्द्रयादिदिशश्चैता आह्वानेऽञ्जलिमादिशेत् ।
यस्त्वेव पूजयेद् देवं प्रतिपन्नित्यमेव च ।।
उपोष्य पञ्चदश्यां तु स याति परमं पदम् ।
आपो हिष्ठेति तिसृभिर्हृदयं परिकीर्तितम् ।।
ऋतं सत्यं शिखा प्रोक्ता उदुत्यं नेत्रमादिशेत् ।
चित्रं देवानामिति च अस्त्रं लोकेषु विश्रुतम् ।।
वर्मणा ते छादयामि कवचं समुदाहृतम् ।
भूर्भुवः स्वश्चास्त्रवरं तथैव परिकीर्तितम् ।।
गायत्रीमूलमन्त्रस्तु वेधसः सर्वकर्मणाम् ।
गायत्र्या पूजयेद् देवमोङ्कारेणाभिमन्त्रितम् ।।
प्रणवेनापरान् सर्वानृग्वेदादीन् प्रपूजयेत् ।
आह्वाने पूजने वीर विसर्गे ब्रह्मणस्तथा ।।
गायत्री परमो मन्त्रो वेदमाता विभावरी ।
गायत्र्याक्षरतस्तत्र पूजयेद् यस्तु वेधसम् ।।
स गच्छेद् ब्रह्मणः स्थानं यदन्येन दुरासदम् ।
पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्या नराधिप ।।
अनेन विधिना यस्तु विरिञ्चि पूजयेन्नरः ।
प्रतिपद्यां महाबाहो स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।।
अग्निर्विशेषतो देवो विरिञ्चर्वास्तुदैवतम् ।
तथा, त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेद् ब्रह्म कृत्वाऽष्टदलपङ्कजम् ।
पौर्णमास्यां प्रतिपदि तस्य पुण्यफलं शृणु ।।
अनेनैव स देहेन ब्रह्मा सन् तिष्ठते क्षितौ ।
पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात् स्पर्शनादपि ।।
उद्धृत्य दिवि संस्थाप्य कुलानामेकविंशतिम् ।
सहायैः सहितो नित्यं मोदते गोगतो नृपः ।। (गोगतः पृथ्वीगतः)
अप्येकवारं यो भक्त्या पूजयेत् पद्मसम्भवम् ।
पद्मस्थं मूर्तिसंस्थं वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ।।
पुण्यक्षयात् क्षितिं प्राप्य भवेत् क्षितिपतिर्महान् ।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञो ब्राह्मणो वापि जायते ।। इति ब्रह्मपूजा ।

अथ रथयात्रा

भविष्यपुराणे,

कार्तिके मासि राजेन्द्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् ।
मार्गेण चर्मणा सार्द्धं सावित्र्या च परंतप ।।

मार्गेण चर्मणा कृष्णसारत्वचा ।

भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यैः समन्वितम् ।

नानाधान्यैरिति क्वचित्पाठः ।

स्थापयेद् भ्रामयित्वा तु सकलं नगरं नृप ।।

सामान्येन सामान्यतः प्रतिपाद्य विशेषतस्तमेव प्रयोगमाह—

ब्राह्मणं भोजयित्वाऽग्रे शाण्डिलेयं प्रपूज्य च ।
आरोपयेद् रथे देवं पुण्यवादित्रनिःस्वनैः ।।
रथाग्रे शाण्डिलीपुत्रं पूजयित्वा विधानतः ।
ब्राह्मणान् वाचयित्वा तु कृत्वा पुण्याहमङ्गलम् ।।
देवमारोपयित्वा तु रथे कुर्यात् प्रजागरम् ।
नानाविधैः प्रेक्षणकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः ।।
कृत्वा प्रजागरं ह्येवं प्रभाते ब्राह्मणान् नृप ।
भोजयित्वा यथाशक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ।।
पूजयित्वा जनं वीर यत्नेन विधिवन्नृप ।
आज्येन च महाबाहो पयसा पायसेन च ।।
ब्राह्मणान् वाचयित्वा तु अनेन विधिना नृप ।
कृत्वा पुण्याहशब्दं च रथं तु भ्रामयेन्नृप ।।
चतुर्वेदविदैर्विप्रैर्भ्रामयेद् ब्रह्मणो रथम् ।
वह्वृचाथर्वणैर्वीर छन्दोगाध्वर्युभिस्तथा ।।
भ्रामयेद् देवदेवस्य सुरज्येष्ठस्य तं रथम् ।
प्रदक्षिणं पुरं सर्वं मार्गेण सुगमेन च ।।
नारोह्योऽयं रथो वीर शूद्रेण शुभमिच्छता ।

शूद्रस्य पृथगारोहनिषेधोऽधिकानिष्टप्रदर्शनार्थः ।

नारोहयेत् तथा प्राज्ञो मुक्त्वैवं भोजकं नृप ।।
ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे सावित्रीं स्थापयेन्नृप ।
भोजको वामपार्श्वे तु पुरतः कञ्जकं न्यसेत् ।। (कञ्जकं सरोजम्)
कुर्यादेवं विधानं तु शङ्खशब्दैः सुपुष्कलैः ।
भ्रामयित्वा रथं वीर पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ।।
स्वस्थाने स्थापयेत् तत्र कृत्वा नीराजनं बुधः
य एवं कुरुते यात्रां यश्च भक्त्या प्रपश्यति ।।

रथं वा कर्षयेद् यस्तु स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।

इति ब्रह्मपूजा ।

(यह पूजाविधि पण्डित रामचन्द्र शास्त्री होसमने, पण्डित विश्वेश्वर शास्त्री द्राविड वाराणसी ने प्रेषित करने का अनुग्रह किया है । अतः उनके अति अत्यन्त आभारी हूँ ।) यह पूजा विधि प्राप्त होने के पूर्व अनेक ग्रन्थों में भगवान् ब्रह्मा की पूजाविधि अन्वेषण करते रहने पर प्राप्त नहीं होने के कारण, अनेक विद्वानों से इसकी जानकारी प्राप्त करने हेतु परामर्श करते रहने से, अनेक विद्वानों ने लेखक को यह भी परामर्श दिया था—

'पुरुष सूक्त' के पुरुषतत्त्व को भगवान् विष्णु के रूप में ही देखा जाता है—

'पुरुषस्य हरेः सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ।'

''पुरुष सूक्त' के नायक भगवान् श्रीहरि की स्तुति समस्त पापों का नाश करने वाली है ।' 'किन्तु 'पुरुष' शब्द का प्रयोग शिव और ब्रह्मा के लिए भी हुआ है । जिनकी बुद्धि निर्मल—अभिनिवेशशून्य है, वे विज्ञजन 'उपासकानां सिद्धयर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' तथा 'एक मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा' की दृष्टि से दुराग्रह में नहीं पड़ते ।' अतः पुरुष सूक्त के मन्त्रों द्वारा विष्णु की ही नहीं, शिव और ब्रह्मा की पूजा भी की जा सकती है ।

भगवान् ब्रह्माजी का एक पूजन प्रकार महामहोपाध्याय आचार्य हरिशंकर वेणीराम शास्त्री महोदय ने ब्रह्मा विषयक अपने लेखों के साथ प्रेषित किया है । वह उनके लेखों के साथ परिशिष्ट (क) में रखा गया है । पाठकगण वहां पढ़ सकेंगे ।

* *

ग्रन्थ समापन प्रार्थना, स्वस्त्ययन, सर्वमङ्गल-कामना, ग्रन्थकार का परिचय, भविष्यकामना, निवेदन

सोपान २४

प्रार्थना

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

'प्रपञ्चकी उत्पत्ति से पूर्व मायाधिपति सिसृक्षु परमात्मा से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई ।'

यद्यपि परमात्मा ही हिरण्यगर्भ है तथापि आकाशादि भूतों की ब्रह्म से उत्पत्ति होने के कारण—उन उत्पन्न भूतों की उपाधि से उपहित होने के कारण उसे उत्पन्न कहा जाता है।

वह उत्पन्न होते ही एक होने पर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आदि सृष्टि का पति-स्वामी हो गया। न केवल पति ही हुआ प्रत्युत उसी ने विस्तीर्ण द्युलोक एवं हम लोगों के द्वारा दृश्यमान इस पुरोवर्तिनी पृथिवी को भी धारण किया।

यहाँ पृथिवी शब्द का अर्थ प्रथनशील— विस्तीर्ण है अथवा यह भी अन्तरिक्ष का एक नाम है। 'दाधार' क्रिया यद्यपि लोक में भूतकालिक है, तथापि वेद में सर्वकालिक है। इस लिये इसका अर्थ है कि धारण किया, धारण कर रहा है और धारण करेगा।

'ऐसे दानादि गुण युक्त प्रजापति देवता की हम हविष्य के द्वारा पूजा-सेवा कर रहे हैं।'

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

'वही प्रजापति आत्मशोधन एवं आत्मबोधन के द्वारा सबको आत्मदान करता है और वही सबको अपने-अपने पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये बलदान भी करता है। सम्पूर्ण विश्व एवं श्रेष्ठ देवता उसके प्रशासन – आज्ञा को शिरोधार्य करके सेवन करते हैं और उस आज्ञा के लिये प्रार्थना भी करते हैं, जिससे अमृत अर्थात् अमृतत्व की प्राप्ति होती है, वह और स्वयं अमृतत्व भी उसी की छाया है। मृत्यु भी उसी की छाया है। ऐसे एक सुखरूप प्रजापति ईश्वर के लिये हम अपना-जीवन-हविष्य को अर्पण करके पूजन कर रहे हैं।'

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

'जो प्रजापति अपने माहात्म्य से अर्थात् अपनी विभुता एवं सामर्थ्य से श्वासोच्छ्वासशील एवं निमेषोन्मेषयुक्त इस सम्पूर्ण जगत् का एकछत्र-एकमात्र अद्वितीय स्वामी है-जो इस दृश्यमान द्विपद एवं चतुष्पद अर्थात् सभी प्राणियों का एक मात्र शासक है उस परमानन्दस्वरूप स्वयप्रकाश प्रजापति की-अपनी जीवन-हवि अर्पण करके पूजा करते हैं।'

(ऋग्वेद मण्डल १० प्रजापति सूक्त १२१)

यस्माज्जातं न पुरा किंचनैव
य आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराण-
स्त्रीणि ज्यांतींषि सचते स षोडशी ।।

'जिस पुरुष से पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं था। जो सम्पूर्ण भुवनों और प्राणियों को पूर्ण रूप से भावित करता है। सोलह अवयवों वाला लिङ्ग शरीर से

युक्त वह प्रजापति पुरुष ही प्रजा के साथ क्रीड़ा करता हुआ सूर्य, चन्द्र और अग्नि-रूप तीन ज्योतियों का सेवन करता है।'

ॐ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

'जिस पुरुष ने द्युलोक को जलवर्षी बनाया है, जिससे पृथिवी को प्राणियों के धारण, वृष्टि ग्रहण तथा अन्न-सम्पादन के लिये दृढ़=स्थिर बनाया है, जिसने आदित्यमण्डल और स्वर्ग को स्तब्ध करके रखा है एवं जिसने अन्तरिक्ष में जल का निर्माण किया है, उसको छोड़कर और किस देवता की हम हविष्य के द्वारा पूजा करें ? दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है कि उसी 'क' अर्थात् प्रजापति देवता की हम आराधना करते हैं।'

(शुक्ल यजुर्वेद संहिता अध्या. ३२ सर्वमेधसूक्त)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलं स्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे ॥
श्रौतस्मार्तादिकं कर्म निखिलं येन सूत्रितम्।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नमः ॥

'हम भगवान् हयग्रीव की उपासना करते हैं, जो ज्ञानानन्द स्वरूप, स्वयं प्रकाश, निर्मल, स्फटिक के समान शुभ्रवर्ण तथा समस्त विद्याओं के आधार हैं। जिन्होंने सम्पूर्ण श्रौत एवं स्मृत्युक्त कर्मों का एक सूत्र में निर्देश किया है, उन समस्त वेदों का तात्पर्य जानने वाले भगवान् विखनस (ब्रह्मा) को हमारा प्रणाम है।'

ॐ सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्र्यै धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥

'श्री सरस्वती जी को हम गुरु-शास्त्र मुख से जानते हैं, हम उन ब्रह्म पुत्री का ध्यान करते हैं। वह देवी हमको ज्ञान-ध्यान के लिये प्रेरणा करें।'

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य, धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात् ॥

'हम उस तेजस्वरूप, श्रेष्ठ, पापनाशक, दिव्य गायत्री जी का ध्यान करते हैं, वह हमारी बुद्धि को सन्मार्ग (ज्ञान-ध्यान) के लिये प्रेरित करें।'

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर (परमेश्वरि) ॥

'परमेश्वर (परमेश्वरी) ! मैं आवाहन करना नहीं जानता, विसर्जन करना नहीं जानता तथा पूजा करना भी नहीं जानता। आप क्षमा करें।'

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर (सुरेश्वरि)।
यत्पूजितं मयादेव (देवि) परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

'हे देव (देवी) ! सुरेश्वर (सुरेश्वरी) ! मैंने जैसा भी यह मन्त्रहीन, क्रियाहीन और भक्तिहीन पूजन किया है, वह सब आपकी कृपा से पूर्ण हो।'

यदक्षरं पदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्।
क्षम्यतां देव (देवि) प्रसीद परमेश्वर (परमेश्वरि) ॥

'इस पूजा में प्रयुक्त जो अक्षर पदभ्रष्ट एवं मात्राहीन हों, उन्हें भी देवाधि-देवेश्वर (देवेश्वरी) आप क्षमा करें।'

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव (देवि) प्रसीद परमेश्वर (परमेश्वरि)॥

'हे देव (देवेश्वरी)! परमेश्वर (परमेश्वरी)! अज्ञान से, भूल से अथवा बुद्धिभ्रान्त होने से मैंने जो न्यूनता या अधिकता करदी हो, वह सब क्षमा करो और प्रसन्न होओ।'

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष मां परमेश्वर (परमेश्वरि)॥

'आप की शरण के अतिरिक्त मेरे पास कोई भी अन्य मार्ग नहीं है। अतः हे परमेश्वर (परमेश्वरी) आप दया भाव से मेरी रक्षा करें।'

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मृत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव (देवि) त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर (सुरेश्वरि)॥

'हे देव (देवी)! सुरेश्वर (सुरेश्वरी)! आप गोपनीय से भी गोपनीय वस्तु रक्षा की करने वाले (वाली) हो। मेरे इस जप को ग्रहण करो। आपकी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो।'

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर (महेश्वरि)।
यादृश त्वं महादेव (महादेवि) तादृशाय नमो नमः॥

'हे महेश्वर (महेश्वरी)! आपका तत्त्व कैसा है, यह जानने में नहीं आता है। हे महादेव (महादेवी)! जैसा देखने में आता है, इसी को नमस्कार है।'

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'आपही मेरे माता और पिता हो, आप ही भाई व सखा हो, आप ही मेरी विद्या व धन हो, हे देवाधिदेवेश्वर (देवेश्वरी)! मेरे तो सब कुछ आप ही हो। मैं तो आपकी शरण हूँ, शरण हूँ, शरण हूँ।'

अनेन पूजनेन सृष्टिनिर्माणकर्ता, विश्वविधाता, वेदअधिष्ठाता भगवान् ब्रह्माजी और वाक् शक्ति, श्री माँ सरस्वती, ब्रह्मशक्ति गायत्री (सावित्री) प्रीयताम् न मम ब्रह्मस्वरूपार्पणमस्तु॥
शुभमस्तु॥

स्वस्त्ययन

हरिः ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यर्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥१

'वृद्धश्रवा (बड़ी कीर्तिवाले) इन्द्र हमारे निमित्त स्वस्तिविधान करें, सर्वज्ञ पूषा हमारे निमित्त स्वस्तिविधान करें, अरिष्टनेमि ताक्ष्र्य (ताक्ष्र्य-रथ अर्थात् जिस रथ की नेमि की गति कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है, उसको ही

अरिष्टनेमि तार्क्ष्य कहते है, यहां रथ रूप से वर्णन हुआ है।) हमारे निमित्त स्वस्ति का विधान करें। बृहस्पति हमारे निमित्त स्वस्तिविधान करें ॥१

ॐ पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।
पयस्वतीः प्रदिश सन्तु मह्यम् ॥२

पृथिवीदेवी हमारे निमित्त अर्थात् हमको देने के लिये रस धारण करें, औषधियां भी हमारे निमित्त रस धारण करें, स्वर्ग लोक और अन्तरिक्ष लोक भी हमारे निमित्त रस धारण करें अर्थात् आहुति के परिणाम से पृथिवी आदि हमको भगवत्कृपा से अभीष्ट फल देने वाले हों ॥२

ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥३

(१) अग्नि देवता की प्रार्थना करता हुआ, यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(२) वायु देवता का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(३) सूर्य्य देवता का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(४) चन्द्रमा देवता का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(५) वसु देवताओं का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(६) रुद्र देवताओं का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(७) आदित्य देवताओं का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(८) मरुत देवताओं का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(९) विश्वेदेवा देवताओं का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(१०) बृहस्पति देवता का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(११) इन्द्र देवता का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ,
(१२) वरुण देवता का ध्यान करता हुआ यह इष्ट का स्थापन करता हूँ ॥३

ॐ यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेशः।
य औषधिषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥४

जो सर्वशक्तिमान् पूर्ण ब्रह्म परम देव अग्नि में हैं, जो जल में हैं, जो समस्त लोकों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो रहे हैं, जो औषधियों (अन्न आदि) में है और जो वनस्पतियों में हैं, अर्थात् जो सर्वत्र परिपूर्ण है, जिनका अनेक प्रकार से पहले वर्णन हो चुका है, उन परमदेव परमातमा को नमस्कार है, नमस्कार है ॥४

ॐ एकदंष्ट्राय विद्महेः वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो बुद्धिः प्रचोदयात् ॥५

भगवान् एक दन्त सर्व प्रथम पूज्य श्री गणेशजी महाराज को हम शास्त्र गुरु मुख से जानते हैं, उन वक्रतुण्ड महाराज का ध्यान करते हैं, वह बुद्धि सागर हमको ज्ञान ध्यान के लिये प्रेरणा करें ॥५

ॐ जलबिम्बाय विद्महे, नील पुरुषाय धीमहि।
तन्नो वरुणो प्रचोदयात् ॥६

श्रीवरुण देवता को हम जल रूप में गुरु-शास्त्र मुख से जानते हैं। हम उस नील पुरुष का ध्यान करते हैं। वह वरुण देवता हमको ज्ञान ध्यान के लिये प्रेरणा करे ॥६

ॐ पृथ्वी दैव्यै विद्महे, सहस्रमूर्त्यै धीमहि। तन्नो पृथ्वी प्रचोदयात् ॥७

पृथ्वी देवी को हम गुरु-शास्त्र मुख से जानते है, हम उनका सहस्रों मूर्तियों में ध्यान करते हैं, वह पृथ्वी देवी हमको ज्ञान-ध्यान के लिये प्रेरणा करें ॥७

ॐ गिरिजायै विद्महे, शिवप्रियायै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ॥८

श्री गिरिजा देवी को हम गुरु-शास्त्र मुख से जानते हैं, हम उस शिव प्रिया का ध्यान करते हैं। वह श्री दुर्गादेवी हमको ज्ञान-ध्यान के लिये प्रेरणा करें ॥८

ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि। तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात् ॥६

श्री महालक्ष्मीजी को हम गुरु-शास्त्र मुख से जानते हैं, हम उन विष्णु प्रिया का ध्यान करते हैं। वह लक्ष्मीदेवी हमको ज्ञान-ध्यान के लिये प्रेरणा करें ॥९

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्ति-रोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवा शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१०

द्युलोक रूप शान्ति और अन्तरिक्ष रूप शान्ति, पृथिवी रूप शान्ति, जल रूप शान्ति, ओषधि रूप शान्ति, वनस्पति रूप शान्ति, विश्वेदेवा सम्बन्धी शान्ति व सर्व-देवरूप शान्ति; त्रयीलक्षण युक्त शान्ति, सर्व जगत् रूप शान्ति, जो स्वरूप से ही शान्ति शान्ति है, वह मेरे प्रति हो अर्थात् ये सब मुझको शान्ति रूप हों ॥१०

ॐ शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु। अनेन ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शनाख्येन ग्रन्थेन भगवान् ब्रह्मा और वाक् शक्ति श्री माँ सरस्वती, ब्रह्मशक्ति श्री माँ सावित्री (गायत्री) सच्चिदानन्दमयी प्रीयतां न मम ॥ ॐ ब्रह्मस्वरूपार्पणमस्तु ॥ श्री शुभमस्तु ॥

सर्व मङ्गल कामना

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

इस विश्व में सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याण-मार्गों का दर्शन करें। कोई भी दुःख को प्राप्त न हों।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वः भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्व सर्वत्र नन्दतु ॥

सब कठिनाइयों से, विपतियों से त्राण पायें, सब मङ्गलों का दर्शन करें, सब सद्बुद्धि को प्राप्त हों और सब सर्वदा सर्वत्र आनन्द लाभ करें।

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्ताः मुच्येत् बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥

दुष्टजन सज्जन हो जायें, सज्जन शान्ति को प्राप्त करें, शान्तजन बन्धन से मुक्त हो जायें और मुक्तजन दूसरों को बन्धन मुक्त करें।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गो ब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ।।

प्रजाजनों का कल्याण हो, राज्याधिकारी न्याययुक्त मार्ग से पृथ्वी पर शासन करें। गौओं एवं ब्राह्मणों का सर्वदा मङ्गल हो। सम्पूर्ण लोक सुखी हो जायँ।

काले वर्षतु पर्जन्याः पृथिवी शस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ।।

बादल समय पर वर्षा करें, पृथ्वी धान्य से समृद्ध हो। यह देश (भारतवर्ष) क्षोभरहित हो जाय, ब्राह्मण, सन्त (महात्मा) निर्भय हो जायें।'

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजता दधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ।।

विश्व ब्रह्माण्ड का कल्याण हो, दुष्ट लोग शान्त हो जायें, सभी प्राणी अपनी बुद्धि के द्वारा एक दूसरे का भला सोचें, मन सर्वदा भलाई और मङ्गल का चिन्तन करे, एवं हम सब की बुद्धि बिना किसी हेतु के भगवान् में आविष्ट हो जाय।

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतंगमय ।। ॐ शान्तिः ।।

असत् से मुझे सत् की ओर ले जाओ, अन्धकार से प्रकाश में ले जाओ, मृत्यु से बचाकर मुझे अमर कर दो।

क्षमेऽहं सर्वान् वै जीवान् ते च क्षाम्यन्तु मां सदा।
मैत्री स्यात्सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति केनचित् ।।
ॐ शान्तिः.. .... ।

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। सब भूतों से मेरी मित्रता हो, किसी से द्वेष न हो।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।
ॐ शान्तिः.. ।

मैं राज्य की, स्वर्ग की, मोक्ष की भी कामना नहीं करता हूँ, मैं कामना करता हूँ कि दुःख से पीड़ित प्राणियों का दुःख नष्ट हो।

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।।
ॐ शान्तिः.. ।

हम सब परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें, विरोध को छोड़कर सुखों का भोग करें, हमारी विद्या तेजस्वी हो, हम आपस में द्वेष न करें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः.......................................।

ॐ वह (परब्रह्म) पूर्ण है और यह (कार्य ब्रह्म) भी पूर्ण है, क्यों कि पूर्ण से पूर्ण की ही उत्पत्ति होती है तथा (प्रलय काल में) पूर्ण (कार्य ब्रह्म) का पूर्णत्व लेकर (अपने में लीन करके) पूर्ण (पर ब्रह्म) ही बच रहता है। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

हे सविता देव! हमारे सब दुःखों को दूर करो। जिससे हमारा कल्याण (भला) हो, वही प्राप्त कराओ। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ग्रन्थ लेखक परिचय एवं ग्रन्थ समाप्ति

इति श्री भारतवर्षे राजस्थान प्रान्तीय झुन्झनू मण्डलान्तर्गत प्राचीन खेतड़ी नगरनिवासिना भूतपूर्व खेतड़ी राजकीय प्रधान पण्डित ज्योतिर्विद् श्री रूड़मल्ल बलदेव शर्माणां प्रपौत्रेण राजकीय प्रधान पण्डित ज्योतिर्विद् धर्माध्यक्ष श्री महासुख शर्माणां पौत्रेण राजकीय संस्कृत विद्यालय प्रधानाचार्य राजकीय प्रधान पण्डित ज्योतिर्विद् श्री रघुनाथ शर्मा शास्त्रीणां आत्मजः सीकर मण्डलान्तर्गत भूतपूर्व खण्डेला राज्य पण्डित नन्दकुमार शर्माणामात्मजा श्री भगवनी देव्यास्तु गर्भजः विविधस्वरूपधारी श्री भगवान् परब्रह्म परमात्मा देवचरणानुरागी गौड़ वंशावतंस त्रिप्रवरस्य, माध्यन्दिनी शाखा, शुक्लयजुर्वेदीय, कात्यायनी सूत्र, गोतम गोत्रद्भवेन, वैद्य पण्डित रामप्रसाद शर्मणा शास्त्रिणा विरचित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शनम्' इत्याख्यस्य ग्रन्थस्य चतुर्विशोऽध्याय सम्वत् २०३७ विक्रमाब्दे वैशाखमासे शुभे शुक्लपक्षे १५ पूर्णिमायाम् तिथौ बुधवासरे दिनांक ३० अप्रेल १९८० ईस्वीये स्वातिनक्षत्रे, सिद्ध योगे, तुलाराशि स्थिते चन्द्रे, ग्रन्थ सम्पूर्णम्। शुभमस्तु।

भविष्य कामना

न धर्मनिष्ठोऽस्मिन् चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

मैं न धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञानी हूँ और न आपके चरणों में भक्तिमान हूँ, मैं तो अकिंचन हूँ, अनन्यगति हूँ और हे शरणागत-रक्षक! आपके चरण कमलों की शरण में आया हूँ।

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम् ।
अवधीरित शारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ।।

हे नरकनाशक ! मैं चाहे स्वर्ग में, पृथ्वी पर या नरक में रहूँ, किन्तु शरत्कालीन कमल को तिरस्कृत करने वाले आपके चरण-युगल को मरते समय भी याद करता रहूँ ।

स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ।।

'हे इन्द्रियों के सूत्रधार ! भगवान् हृषीकेश ! मैं अपने कर्मों के अनुसार जिस-किसी भी योनि में जाऊँ, वहाँ आपसे मेरा अटूट प्रेम बना रहे ।

शर्मा रामप्रसाद की, विनय सुनो भगवान् ।
भक्ति-सेवा में रत रहूं, अन्य न होवे ध्यान ।।

।। शुभमस्तु ।।

परिशिष्ट (क)

ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-दर्शन

ब्रह्मा-तत्त्व-विमर्शः

कलौ ब्रह्मादि सर्वेषां देवानां पूज्यत्वम्

श्री ब्रह्मापूजन प्रकारः

भगवान् ब्रह्माजी के मन्दिर तथा प्रदर्शित मूर्तियाँ

श्रीः

ब्रह्मा-तत्त्व-विमर्शः

लेखक
महामहोपाध्याय आचार्य हरिशंकर वेणीराम शास्त्री
[कर्मकाण्डविशारद, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालंकार]

ज्योतिष-कार्यालय
ठे. सोनीपाड, पो० हलवद [सौराष्ट्र]

भगवान् ब्रह्माजी की उत्पत्ति (१)

यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

परमात्मा ने पहले ब्रह्माजी को उत्पन्न करके उनको वेद प्रदान किया।
मनुसंहिता में लिखा है कि—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ।।
तदणुमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।।

परमात्मा के चित्त में ससृक्षा उत्पन्न होने पर उन्होंने कारणवारि में निज-शक्तिरूप बीज समर्पण किया। वह बीज स्वर्ण वर्ण और सूर्य के समान प्रभायुक्त अणु के आकार में परिणत हो गया उसी अणु में पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। अतः ब्रह्माजी ही सबसे प्रथम प्रकट हुए हैं।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ।
(मुण्डकोपनिषद्)

ब्रह्माजी सब देवताओं के पहले उत्पन्न हुए, जो विश्व के बनाने वाले और संसार के रक्षक हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है—

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।

सृष्टि के आदि में ईश्वर ने पहले ब्रह्माजी को उत्पन्न किया। मनुस्मृति में वर्णन किया है कि—

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ।।
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम् ।
सञ्जीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ।।

जब श्रीभगवान् जाग्रत रहते हैं तो संसार की चेष्टा रहती है और जब शान्त होकर योगनिद्रा में शयन करते हैं तब संसार का प्रलय होता है। इस रीति से अव्यय परम पुरुष भगवान् जाग्रत और स्वप्नावस्था के द्वारा चराचर विश्व की सृष्टि और संहार कर रहे हैं। प्रलय के अनन्तर प्रलयविलीन जीवों का संस्कार जब क्रियोन्मुख होता है तब स्वतः ही श्रीभगवान् योगनिद्रा से उत्थित होकर सृष्टि की इच्छा करते हैं। श्वासशून्य निद्रावस्था के अनन्तर श्वासयुक्त, उनकी यही सृष्टि करने वाली अवस्था अर्थात् सिसृक्षा है। इसी अवस्था का पुराणादिकों में बहुत प्रकार से वर्णन किया गया है। इसी अवस्था का वर्णन वेद में किया गया है। यथा—

एकोऽहं बहु स्यां प्रजायै ।

मैं एक से बहुत हो जाऊँ, प्रजा की सृष्टि करूँ। यही श्रीभगवान् का सिसृक्षारूपी प्रथम भाव ब्रह्माजी को उत्पन्न करके पूर्वकल्प के अनुसार सृष्टि विस्तार कराता है और यही क्रियादशागत निःश्वास वेदराशि को प्रकट करता है। अतः सिद्धान्ततः निष्क्रिय श्रीभगवान् में प्रथम क्रिया की सूचना ही क्रियाशक्ति के अधिष्ठाता रूप ब्रह्माजी हैं। श्रीभगवान् में ज्ञान, बल और क्रियाशक्ति स्वाभाविक ही है।

मनुजी ने लिखा है कि—परमात्मा ने अपने शरीर से विविध प्रजा-सृष्टि की इच्छा करके प्रथमतः जल की सृष्टि की। यह 'अप्' साधारण जल नहीं है, क्योंकि सृष्टि महत्तत्त्व आदि क्रम से होती है, पहले ही पञ्चभूतात्मक जल नहीं हो सकता है।

ऋग्वेद में इसका वृतान्त स्पष्ट किया गया है, यथा –

"तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।"

इसके भाष्य में सायणाचार्यजी ने कहा है—

"सलिलं सल् गतौ औणादिकः इलच् इदं दृश्मानं सर्वं जगत् सलिलं कारणेन संगतं अविभागापन्नं आ आसीत् ।"

कारण में विलीन समष्टि संस्कार ही यहां सलिल है। इसी को 'अप्' या 'कारणवारि' कहा गया है। परमात्मा सृष्टि की इच्छा करके प्रथमतः इन संस्कार-राशियों को उद्बोधन करते हैं। यही मनुजी का कारण-वारि रूपी जल का विज्ञान है। इस प्रकार से संस्कार राशि अव्याकृत दशा में जाग्रत् होने पर परमात्मा उसमें अपनी क्रियाशक्तिरूपी बीज को अर्पण करते हैं। यही क्रियाशक्ति परिपुष्ट होकर ज्योतिष्मान् महासूर्य की तरह चमकती है और इसी से ब्रह्माजी

उत्पन्न होते है ।

अतः सिद्ध हुआ कि भगवान् में सिसृक्षा होने पर प्रायः विकारहीन प्रकृति में उनकी जो क्रियाशक्ति का सन्निवेश होता है, उसमें ही ब्रह्माजी प्रकट होते हैं । यह सृष्टि की प्रारम्भावस्था मन-वाणी से अगोचर है । यही ज्योतिष्मती कारण-वारि में क्रियाशालिनी समष्टि प्राणशक्ति ब्रह्माजी का सूक्ष्म शरीर है । अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् में इस विषय में एक सुन्दर मन्त्र मिलता है । यथा—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ।।

इसके भाष्य में श्रीभगवान् शंकराचार्य प्रभु ने कहा है—

"ततश्च अव्याकृता च्चिकीर्षितावस्थादन्नात्प्राणो हिरण्यगर्भो ब्रह्मणोज्ञानक्रियाशक्त्यधिष्ठितो जगत्साधारणोऽविद्याकामकर्मभूत-समुदायबीजांकुरो जगदात्मा अभिजायते ।"

इसका भावार्थ यह है कि भूतयोनि ब्रह्म तपस्या के द्वारा उपचित होते हैं । तदनन्तर उनसे अन्न अर्थात् अव्याकृत प्रकृति व्याकृतमय दशा को प्राप्त होकर प्रकट होती हैं । इसी भाव को ही "अप एव ससर्जादौ" करके मनुजी ने वर्णन किया है । तदनन्तर परमात्मा की तपःशक्ति प्राप्त उस अव्याकृतप्राय से समष्टिप्राण रूपी हिरण्यगर्भ उत्पन्न होते हैं । यही ब्रह्माजी का सूक्ष्म शरीर है, जिसको 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' इत्यादि श्रुतियों के द्वारा वर्णन किया गया है । भगवान् भाष्यकार ने हिरण्यगर्भ को 'ब्रह्मणो ज्ञानक्रियाशक्त्यधिष्ठितो जगदात्मा' करके वर्णन किया है । इनमें क्रियाशक्ति सृष्टिकारिणी है, जिससे 'मनः', 'सत्यं', 'लोकाः' आदि उत्पन्न हुए और ज्ञानशक्ति भगवान् के निःश्वासरूप वेद राशि हैं ।

जिस प्रकार समष्टि प्राण अर्थात् ब्रह्माण्ड प्रकृतिगत व्यापक प्राण ही ब्रह्मा जी का सूक्ष्म शरीर है, जिस व्यापक प्राण से भिन्न-भिन्न जीव शरीर में प्राण-शक्ति बँटी हुई है, उसी प्रकार समष्टि अन्तःकरण अर्थात् ब्रह्माण्ड प्रकृति में व्याप्त अन्तःकरण ही ब्रह्माजी का स्वरूप है । इसी व्यापक अन्तःकरण से व्यष्टिरूपेण भिन्न-भिन्न अन्तःकरण की स्थिति है । इसका प्रमाण **वाजसनेयिब्राह्मणोपनिषद्** में मिलता है । यथा—

यदिदं मनः स ब्रह्मा स मुक्तिः साऽति मुक्तिः ।

जो अन्तःकरण सो ही ब्रह्मा, सो ही मुक्ति इत्यादि है ।

इसी प्रकार 'मनो महान् मतिर्ब्रह्मा' आदि भी प्रमाण मिलते हैं । यहां 'मन' शब्द अन्तःकरणवाचक है । इसलिए ब्रह्माजी के चार मुख हैं, क्योंकि अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार—इन चार तत्त्वों से बना हुआ है, इसी से समष्टि में जाकर ब्रह्माजी के चार मुख हुए । अब इसके द्वारा सिद्धान्त हुआ कि प्रत्येक अन्तःकरण के साथ ब्रह्माजी का सम्बन्ध है, प्रत्येक व्यष्टि अन्तःकरण समष्टि अन्तःकरणरूपी ब्रह्माजी का ही अंश है ।

"सगुण साकार मूर्ति पूजा की आवश्यकता" (२)

उपासना करने में मूर्ति पूजा का विधान शास्त्र में किया है। शास्त्र में अधिकारी निर्णय प्रसङ्ग में कहा गया है—

निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः।
ये मन्दास्तेऽनु कम्पन्ते सविशेषनिरूपणैः॥
वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात्।
तदेवाविर्भवेत् साक्षादपेतोपाधिकल्पनम्॥

साधारण अधिकारी निर्गुण, निराकार परब्रह्म की उपासना करने में अशक्त होते हैं, उनके लिए सगुण साकार मूर्ति की पूजा का विधान किया जाता है। सगुण साकार पूजा के द्वारा चित्त के वशीभूत होने पर उपाधि रहित निर्गुण पर ब्रह्म की साधना का अधिकार साधक प्राप्त कर सकते हैं। तथा च—

चिन्मयस्या प्रमेयस्य निर्गुणस्याशरीरिणः।
साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पनम्॥

चिन्मय, अप्रमेय, निर्गुण व निराकार ब्रह्म की रूप कल्पना साधक के कल्याण के लिए ही की जाती है।

वेद में—

"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्", "ब्रह्मज ज्ञानं प्रथमम्", "विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम्", "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च", "तामग्निवर्णां दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये", "गणानां त्वा गणपतिं हवामहे", "त्र्यम्बकं यजामहे", "यो भूतानामधिपती रुद्रस्तं ति चर" इत्यादि विविध वेद मन्त्रों के द्वारा सगुणोपासना में आराध्य देवमूर्तियों का वर्णन किया गया है और साथ ही—

"उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाराणि" ऐसा कह कर उपासना राज्य में प्रतिमापूजन की महिमा व परमावश्यकता बतायी गयी हैं। इन्हीं अनेक देव-मूर्तियों की जो विचित्र प्रतिमाएँ बनवा कर पूजी जाती हैं, उन सभी के पृथक्-पृथक् वर्णन में भाव की पृथक्ता ही कारण है।

ब्रह्माजी की मूर्ति का विज्ञान तथा उनकी पूजा नहीं होने का कारण (३)

शास्त्र में शेषशायी भगवान् की ध्यान योग्य मूर्ति का वर्णन लिखा है। उनके नभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। शेषशायी भगवान् में प्रलयकाल में सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी ब्रह्माविष्णुरुद्र शक्ति प्रच्छन्न रहती हैं और सृष्टि के समय उन्हीं से धीरे धीरे तीन शक्ति प्रकट होती हैं। उन्हीं में से सृष्टि-कारिणी शक्ति ब्रह्मा है, जो कि श्री भगवान् के नाभि कमल से प्रकट हुई है।

यौ वै ब्राह्मणं विदधाति पूर्वम्।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्।

इन वचनों से श्रुति ने भी ब्रह्माजी की उत्पत्ति बताई है। ब्रह्माजी की उत्पत्ति के विज्ञान के विषय में वेद व पुराणों में बहुत वर्णन किया गया है।

शरीर के अन्यान्य अङ्गों में से नाभि के साथ सृष्टि कार्य का सम्बन्ध अधिक है। इसलिए परमात्मा की नाभि से ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी का उत्पन्न होना विज्ञान सिद्ध है। कमल अव्याकृत से व्याकृति के अभिमुखीन प्रकृति का रूप है और उसी से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि—

'अन्नात्प्राणः'

अन्न अर्थात् व्याकृतावस्थ प्रकृति, प्राण अर्थात् समष्टि प्राण हिरण्यगर्भ ब्रह्मा। इस प्रकार से श्रीशंकराचार्यजी ने अर्थ किया है।

महाभारत शान्तिपर्व में कमल के विषय में लिखा है--

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात्समभवद् ब्रह्मा वेदमयोनिधिः ।।
मानसस्येहया मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ।।
कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः ।।

तदनन्तर श्रीभगवान् ने एक तेजोमय दिव्य कमल की सृष्टि की, जिसमें हाथ में वेदों को लेकर ब्रह्माजी प्रकट हुए। श्रीभगवान् के सृष्टिकार्यजनित सङ्कल्प से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और उनके आसनरूप से पृथिवी को ही पद्म कहा गया है। यहां पर पृथिवी शब्द व्याकृतावस्थ ब्रह्माण्ड का बोधक है, जिनका 'तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु समप्रभम्'—इस प्रकार से वर्णन मनुजी ने मनुस्मृति में किया है। गगन-विहारी मेरु पर्वत ही इस पद्म में विराजमान होकर ब्रह्माजी समस्त संसार की सृष्टि करते हैं। यही श्रीभगवान् के नाभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा जी की उत्पत्ति का भाव है।

ब्रह्माजी प्रकृति के अन्तर्गत राजसिक भाव पर अधिष्ठान करते हैं, इसलिए ब्रह्माजी का रङ्ग लाल है क्योंकि रजोगुण का रङ्ग लाल है। यथा श्वेताश्वतर उपनिषद् में—

'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्।'

त्रिगुणमयी प्रकृति रक्त, शुक्ल व कृष्णवर्णा है। रजोगुण रक्तवर्ण, सत्त्वगुण शुक्ल वर्ण और तमोगुण कृष्ण वर्ण है, समष्टि अन्तःकरण ब्रह्माजी का शरीर है। इसलिए ब्रह्माजी के चार मुख हैं; क्योंकि मन, बुद्धि, चित्त व अहङ्कार - ये अन्तःकरण के चार अङ्ग है।

क्रियाकाल में ज्ञान की अप्रधानता रहने पर भी ज्ञान की सहायता बिना क्रिया ठीक-ठीक नहीं चल सकती है। इसलिए ज्ञान के रूप नीरक्षीरविवेकी हंस को ब्रह्माजी ने वाहन बनाया है और वाहन होने के कारण उसी की सहायता से

कार्य भी करते हैं। ब्रह्माजी की मूर्ति के भावों को विचार कर देखने से पता लग जायगा कि प्रकृति के राजसिक भाव की लीला के अनुसार ही ब्रह्माजी की मूर्ति-कल्पना की गयी है।

शास्त्र में सत्त्व गुण का रंग श्वेत, रजोगुण का रंग लाल और तमोगुण रंग कृष्ण बताया गया है। यथा श्वेताश्वतर उपनिषद् में—

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः

सत्त्वरजस्तमोगुणानुसार श्वेत-लोहित-कृष्णवर्णा, जन्म रहित व अद्वितीय प्रकृति-रूपयुक्त अनेक प्रजाओं की सृष्टि करती है; परन्तु क्या कारण है कि शिवजी तमोगुण के अधिष्ठाता होने पर भी श्वेत वर्ण हैं और भगवान् विष्णु सत्त्वगुण के अधिष्ठाता होने पर भी कृष्ण मेघश्याम वर्ण हैं ?

इसका तात्पर्य-समाधान यह है कि जो चेतन शक्ति क्रिया व फल दोनों को प्रदान करती है, उसके भीतर जिस भाव का प्रकाश रहता है बाहर ठीक उसके विपरीत भाव का प्रकाश रहेगा। इसीलिए सत्त्वाधिष्ठाता विष्णु के भीतर सत्त्वगुण का प्रकाश रहने के कारण बाहर तमोगुण का विलास है और इसलिए विष्णु भगवान् का रंग घननील-घनश्याम है। इसी प्रकार तमोधिष्ठाता शिवजी के भीतर तमो भाव का प्रकाश रहने के कारण बाहर सत्त्वगुण का प्रकाश है और इसलिए शिवजी श्वेत वर्ण हैं। परन्तु रजोगुण में केवल क्रियाशक्ति रहने के कारण तथा फलप्रदानशक्ति न रहने के कारण रजोगुण के अधिष्ठाता भीतर-बाहर दोनों तरफ एक प्रकृति के हैं और इसीलिए रजोगुण के अधिष्ठाता ब्रह्माजी का रंग लाल है।

प्रत्येक चेतन शक्ति की पूजा फल-लाभ के लिए होती है। इसलिए रजोगुण में केवल क्रियाशक्ति रहने से और फल प्रदान शक्ति न रहने से रजोगुण की अधिष्ठाता चेतन शक्ति की पूजा नहीं हो सकती है। यही कारण है कि ब्रह्माजी की पूजा नहीं होती है।

गणपति आदि पंचदेव मूर्तियों की पूजा होने का कारण (४)

शास्त्र में जितनी देव मूर्तियों का वर्णन किया गया है उनमें से विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणपति की पञ्च मूर्ति सगुणपञ्चोपासना रूप से मन्त्र योग में विहित की गई है। यह पञ्च मूर्ति देवताओं की मूर्ति नहीं है; परन्तु सगुण ब्रह्म ईश्वर की ही पञ्चतत्त्व भेदानुसार पञ्च मूर्ति है। योगशास्त्र में कहा है कि --

उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्

सगुण ब्रह्मोपासना में विहित गणपति, सूर्य, शक्ति, शिव और विष्णु; यह सामान्य देव देवियाँ नहीं हैं; वरन् सगुण साकार ब्रह्म ईश्वर के ही सब रूप हैं। एक ही परमात्मा के पञ्चदेवरूप पाँच भेद पूज्यपाद महर्षियों ने किये हैं।

जो पुरुष प्रकृति से पर और पच्चीसवाँ तत्त्व है, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसके अधीन है उसको नारायण कहते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणी और समस्त पदार्थों को उत्पन्न करता है और जगत् को पवित्र करता है, इस कारण उसे सूर्य कहते

हैं। जो इस ब्रह्माण्ड की मूलस्वरूपा हैं, जिसकी देवता-गरण पूजा किया करते हैं, जो जगत् की ईश्वरी है: इस कारण उसे महेश्वरी कहते हैं। जो गुणों का प्रभु है; अतः वह गणपति कहा जाता है। ब्रह्मादि देवता-गण, मुनि और ब्रह्मवादियों में जो सबसे महान् है, उस देव को महादेव कहते हैं। इस प्रकार एक ही परमात्मा, ईश्वर के पञ्च देव रूप पांच भेद पूज्यवाद महर्षियो ने किये हैं।

पञ्चोपासना के विधान का प्रयोजन (५)

एक ही परमेश्वर पञ्चमूर्ति बना कर को पञ्चोपासना के विधान करने का प्रयोजन क्या है ? इसके उत्तर में योगशास्त्र में लिखा है –

मानवानां प्रकृतय: पञ्चधा परिकीर्तिता: ।
यतो निरूप्यते सर्ग: पञ्चभूतात्मको बुधै: ।।
भिन्ना यद्यपि भूतानां प्रकृति: प्रकृतेर्वशात् ।
तथापि पञ्चतत्त्वानामनुसारेण तत्त्ववित् ।।
प्रत्येकतत्त्वप्राचुर्यं विमृश्य विधिपूर्वकम् ।
उपासनाधिकारस्य पञ्चभेदमवर्णयत् ।।

क्षिति, अप्, तेज, वायु व आकाश इन पञ्चतत्त्वों के द्वारा समस्त सृष्टि उत्पन्न होने से तत्त्वों के अनुसार मनुष्य की प्रकृति भी पाँच प्रकार की होती है। यद्यपि प्राकृतिक वैचित्र्य के कारण सब मनुष्यों की प्रकृति में कुछ न कुछ भेद रहता है; परन्तु आकाश आदि पञ्चतत्त्वों के अनुसार प्रत्येक तत्त्व की अधिकता के विचार से मनुष्य के उपासनाधिकार को महर्षियों ने पाँच भेद में वर्णन किया है।

तत्त्वों के साथ पञ्चदेवों का सम्बन्ध (६)

आकाश आदि पञ्च तत्त्वों के साथ पञ्चदेवों का सम्बन्ध मन्त्रयोग संहिता तथा कापिल तन्त्र में वर्णन किया गया है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी ।
वायो: सूर्य: क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिप: ।।
गुरवो योगनिष्णाता: प्रकृतिं पंचधा गताम् ।
परीक्ष्य कुर्यु: शिष्याणामधिकारविनिर्णयम् ।।

आकाश के अधिपति विष्णु हैं, अग्नितत्त्व की अधिपति महेश्वरी हैं, वायुतत्त्व के सूर्य, पृथिवीतत्त्व के शिव और जलतत्त्व के गणेश हैं। योग में पारदर्शी गुरुदेव शिष्य की प्रकृति का तत्त्वानुसार निर्णय करके उसके उपासनाधिकार अर्थात् इष्टदेव का निर्णय कर देवें।

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा का स्वरूप तथा उनकी पूजा क्यों नहीं होती है, इसका तत्त्व वर्णन (७)

ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूपी त्रिमूर्तियों के गुणत्रय के सम्बन्ध से तथा शक्ति के सम्बन्ध से स्वाधीन और समानरूप से शक्तिशाली होने पर भी शास्त्रों में देखा

जाता है कि विष्णु और शिवजी की पूजा हुआ करती है; परन्तु ब्रह्माजी की पूजा प्रायः देखने में नहीं आती। यह सिद्धान्त ब्रह्माजी के पदगौरव की मर्यादा का कोई बाधक नहीं है। आनन्दमय तथा आनन्द के विकासार्थ उत्पन्न सृष्टि के मूल कारण ब्रह्माजी हैं।

सूर्यगीता में लिखा है कि—

व्यापिकाऽऽनन्दसत्तास्ति ततो ब्रह्मा हि केवलम्।
जगतो द्वैतमानन्दं ससर्ज कुशलोत्सुकः।।
तस्मात्स जगतः स्रष्टा सर्वस्य च पितामहः।
निदानं सकलस्यास्य भुवनस्यादिकारणम्।।

आनन्दसत्ता व्यापक है, इस कारण कुशल और उत्सुक ब्रह्मा ने जगत् के द्वैत आनन्द को बनाया है। इसी से वह जगत् का स्रष्टा, सबका पितामह, सबका निधान और त्रिभुवन का आदि कारण कहा गया है। सृष्टि के साथ ब्रह्माजी का ही साक्षात् सम्बन्ध है; अतः अपनी ही सृष्टि में यदि वे स्वयं पूजा ग्रहण न करें तो यह कोई उनके लिए दूषण नहीं है वरन् उनकी उदारता का प्रकाशक भूषण है। सृष्टि की पूर्वावस्था में जब तमोगुण के अधिष्ठातृ देव तथा प्रलयकर्ता महेश्वर का आविर्भाव ही नहीं हुआ था और यहां तक कि विष्णु देव भी योगमाया के प्रभाव से निद्रित ही थे, उस समय ब्रह्माजी ही का पूर्णतया आविर्भाव हुआ था।

अनादि अनन्त महाकाल के विराट् स्वरूप में विभाग उत्पन्न करके सृष्टि को प्रकट करने में ब्रह्माजी ही मूल कारण हैं। अनादि और अनन्तरूपधारी विभु जगत् को सादि-सान्त बनाकर उसमें देवता, असुर, मानव, स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज, स्थावर और जङ्गमात्मक अगणित सृष्टि का आविर्भाव करने में ब्रह्माजी ही प्रधान कारणरूप हैं। जो अन्तःकरण सब प्रकार के जीवों का मूल तत्त्व है, उसी समष्टि-अन्तःकरण में ब्रह्माजी सदा अधिष्ठान करते हुए इस विचित्रतामय सृष्टि लीला को प्रवाहित किया करते हैं। सुतरां, ब्रह्माजी स्वभाव से ही सृष्टि में परम पूज्य हैं।

सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों की शक्ति के तारतम्य के अनुसार स्वार्थपूर्ण जीव चाहे ब्रह्माजी की उपासना करने की आवश्यकता न समझे; परन्तु श्रीभगवान् ब्रह्मा जगत् के उत्पादक होने के कारण ब्रह्माण्ड में——जगत् में स्वतः ही पूज्य हैं, इसमें सन्देह नहीं।

ब्रह्माजी की तीन शक्तियों के भेदों का गूढ़ रहस्य (८)

प्रत्येक देवता की प्रकृति अथवा शक्ति को देवी कहते हैं। वही देवी पुराण-शास्त्र में उक्त देवता की स्त्रीरूप से वर्णन की गई हैं। ब्रह्माजी की शक्ति प्रकृति में अथवा स्त्री के विषय में विष्णुशक्ति लक्ष्मी और महादेव की शक्ति रुद्राणी से कुछ विशेष अलौकिक देखने में आता है। श्री ब्रह्माजी की प्रकृति के तीन भेद शास्त्रों में कहे गये हैं। यथा -गायत्री, सावित्री और सरस्वती। ये तीन भेद ब्राह्मी

प्रकृति के किस प्रकार से महत्त्व के प्रतिपादक है, इन तीनों स्वरूपों का रहस्य क्या है, सो विस्तारित रूप से सुप्रसिद्ध देवी भागवत पुराण ग्रन्थ में है।

विष्णु की वैष्णवी शक्ति लक्ष्मी देवी और रुद्र की शक्ति रूद्राणी देवी हैं। यद्यपि शास्त्रों में इन देवियों के अनेक नाम पाये जाते हैं; परन्तु ये अपने-अपने देवता की एक ही एक शक्ति हैं और इन दोनों के कर्माधिकार के विषय में विशेष कुछ वैचित्र्य शास्त्रों में नहीं पाया जाता। शास्त्रों में विष्णु या नारायण के महत्त्व और पूजा-पद्धति आदि का जिस प्रकार विस्तृत वर्णन पाया जाता है, उसी प्रकार रुद्र या शिव के महत्त्व और पूजा-पद्धति के अनेक विस्तृत वर्णन शास्त्रों में पाये जाते हैं; परन्तु ब्रह्माजी के लिए वैसा नहीं पाया जाता।

विष्णु-भागवत और विष्णु-पुराण आदि जिस प्रकार विष्णु के माहात्म्य प्रतिपादक हैं, शिव-पुराण और लिङ्ग-पुराण जिस प्रकार शिव के माहात्म्य प्रतिपादक हैं; उस प्रकार की बर्णन शैली शास्त्रों में भगवान् ब्रह्माजी के लिए नहीं पाई जाती; परन्तु वैष्णवी शक्ति और रुद्राणीश क्ति के विषय में शास्त्रों ने विशेष वैचित्र्य न मिलने पर भी ब्रह्माजी की तीन शक्तियों के विषय में अनेक वैज्ञानिक रहस्य से पूर्ण विचित्रता देखने में आती है।

कहीं-कहीं शास्त्रों में गायत्री और सरस्वती कह कर दो शक्तियों और बहुधा शास्त्रों में सरस्वती-गायत्री-सावित्री रूप से तीन शक्तियों के साथ भगवान् ब्रह्माजी का सम्बन्ध दिखलाया जाता है। इन त्रिविध शक्तियों का माहात्म्य भी शास्त्रों में बहुत पाया जाता है। कहीं-कहीं शास्त्रों में ऐसा है कि महासरस्वती की तीन कन्याएँ हैं। यथा—वीणापाणि, गायत्री और सावित्री; और कहीं-कहीं शास्त्रों में ऐसा है कि एक सरस्वती देवी ही त्रिधा रूप से भासमान होती हैं। वे ही सरस्वती, गायत्री और सावित्री कहाती हैं। शास्त्रों की वर्णन शैली चाहे कैसी हो हो, परन्तु कहना ही पड़ेगा कि वैष्णवी शक्ति और रौद्री शक्ति की ऐसी विस्तृत भेद कल्पना नहीं है जैसी कि ब्राह्मी शक्ति की भेद कल्पना पायी जाती है। यह भी स्वतः सिद्ध है कि वैष्णवी शक्ति और रौद्री शक्ति से ब्राह्मी शक्ति का विस्तार अधिक है।

ज्ञानजननी वेदमाता सरस्वती ही भगवान् ब्रह्माजी की शक्ति हैं। वेद ज्ञानरूप में, मन्त्ररूप में और धर्म शक्ति रूप में जगत् में प्रकट हैं। इसी कारण अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप में ब्रह्म शक्ति, ज्ञानगम्य रूप से गायत्री और धर्माधार रूप से सावित्री के रूप में प्रकट हैं। यही विश्वधारक वेद के तीन भाव के तीन अधिदैव हैं। अस्तु, भगवान् ब्रह्मा का उपासना राज्य में अधिक सम्बन्ध स्थापित न रहने पर भी उनकी शक्ति की उपासना राज्य से अति प्रवल सम्बन्ध है, इसमें सन्देह नही। त्रिभावात्मक त्रिविध सृष्ट पदार्थों के त्रिविध प्रसविनी शक्ति का होना भी स्वतः सिद्ध है। वेद के मन्त्रार्थ, मन्त्रशक्ति और शब्दमय मन्त्र के सम्बन्धसे वेद-जननी ब्राह्मी शक्ति के भी तीन भेद तत्त्वदर्शियों ने माने हैं।।

सत्त्व, रज, तम इन तीत गुणों के द्वारा ब्रह्माण्ड और पिण्डमय सृष्टि की

उत्पत्ति, स्थिति और लय क्रिया सुसम्पन्न हुआ करती है और अध्यात्म, अधि-दैव और अधिभूत इन तीन भावों द्वारा उक्त सृष्टि का ज्ञान होता है। इसी कारण ब्रह्माजी की शक्ति त्रिभावात्मक मानी गयी है। विष्णु की शक्ति कमला एक ही है, शिवजी की शक्ति गौरी एक ही है; परन्तु ब्रह्मा की ब्राह्मी शक्ति के तीन भेद कहे हैं, यथा—सरस्वती देवी, गायत्री देवी और सावित्री देवी! कहीं-कहीं पुराणों में ऐसा भी वर्णन है कि ब्रह्माजी की शक्ति महा सरस्वती और उनकी तीन कन्याओं का नाम वाणी, सावित्री और गायत्री है। ऐसा वर्णन भी भावप्राचुर्य से ही किसी-किसी शास्त्र में पाया जाता है। ब्रह्माजी की शक्ति तीन हों अथवा ब्राह्मी शक्ति की सन्तति तीन हों, वस्तुतः एक ही बात है।

विज्ञान से भी सिद्ध होता है कि भगवान् ब्रह्माजी जब ब्रह्माण्ड पिण्डात्मक इस सृष्टि के कर्त्ता हैं तो उन्हीं की शक्ति के साथ अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीन भाव विशिष्ट विभागों का साक्षात् सम्बन्ध होना स्वतः सिद्ध है। उनकी शक्ति ही जगत् प्रसव करने का आदि कारण है; इस कारण यद्यपि जगत् के प्रत्येक अङ्ग के साथ त्रिभाव का सम्बन्ध विद्यमान है तथापि मौलिक सम्बन्ध सृष्टि की मूल शक्ति ब्राह्मी प्रकृति के साथ रहना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। तीन भाव के अनुसार सृष्टि किये हुए साधारण पदार्थों के तीन भेद हैं, यथा-स्थावर सृष्टि, मनुष्य से अतिरिक्त जङ्गम सृष्टि और मनुष्य सृष्टि। ये स्थूल सृष्टि सम्बन्धी पदार्थों के भेद हैं। उसी प्रकार सूक्ष्म-राज्य की सृष्टि के पदार्थों के भी तीन भेद हैं, यथा—ऋषि सृष्टि, देवसृष्टि और पितृसृष्टि। इन्हीं तीन भेदों के अनुसार ब्राह्मी शक्ति भी त्रिभावात्मक है। इसी कारण श्रीभगवान् ब्रह्मा की तीन शक्ति वेद में भी मानी गयी है। वेदार्थ-ज्ञानजननी-सरस्वती देवी, वेद मन्त्र-शक्ति-धारणकारिणी-गायत्री देवी और वेद मन्त्र-प्रसविनी-सावित्री देवी हैं। यही त्रिभाव से पूर्ण ब्राह्मी शक्ति के भेदों का अति गूढ़ रहस्य है।

[श्री भारत धर्म महामण्डल प्रधान कार्यालय के शास्त्रप्रकाश विभाग द्वारा प्रकाशित काशी के श्री स्वामि दयानन्द विरचित 'श्री धर्मकल्पद्रुम' ग्रन्थ के आधार पर साभार संकलित।]

* *

श्रीः

श्री गणेशाय नमः। श्री जगदम्बिकायै नमः। ॐ नमो ब्रह्मणे।

कलौ ब्रह्मादि सर्वेषां देवानां पूज्यत्वम्

'पूज्य देवताः'—**कात्यायन परिशिष्टसूत्रे—**

ब्रह्मा वैष्णव रौद्र सावित्र मैत्रावरुणैस्तत्तल्लिङ्गैर्मन्त्रैरर्चयेत्।

योगीश्वरः—ब्रह्मा वैष्णव रौद्रैस्तु सावित्रै मित्रवारुणैः ।
तल्लिङ्गैरेवमन्त्रैस्तु   अर्चयेत्सुसमाहितः ।।

बृहत्पराशर संहितायाम्—

ब्रह्माणं वैधसैर्मन्त्रै र्विष्णुं स्वैः शङ्करं स्वकैः ।
अन्यानपि तथा देवानर्चयेत्स्वीय मन्त्रकैः ।।
मन्त्रन्यासान्पुरा कृत्वा स्वदेहे देवतासु च ।
ब्रह्मीभूतः शुचिः शान्तो देवयागमुपक्रमेत् ।।

कालविशेषे पूज्यदेवताः—**स्कान्दे**—

ब्रह्माकृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः ।
द्वापरे भगवान् विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ।।

अन्यत्र—कलौ ब्रह्मा-विष्णु-सूर्यादीनामपि पूजोक्ता ।

(एतेन कलौ सर्वेषामपि देवानां पूज्यत्वं विधीयत एवेति सिद्धान्तः) इति माध्यन्दिनवाजसनेयाह्निके द्वितीय भागे देवपूजनप्रकारे पृष्ठ १०३ विषय—२४१।२५० ।

कौर्मे—ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतान्देवान् भक्त्या त्वक्रोधनो नरः ।
स्वमन्त्रैस्त्वर्चयेन्नित्यं पत्रैः पुण्यैस्तथाम्बुभिः ।। इति ।

अनेन गणेशादि पंचायतन देवतानां पूजनवत् ब्रह्मणोऽपि पूज्यत्वं सिद्ध्यति । भारतवर्षे कतिपयदेवालयेषु ब्रह्मणो मूर्तिप्रतिष्ठिताः सन्ति । अत एव भगवतः ब्रह्मणः मूर्ते प्रतिष्ठायनं शास्त्रसिद्धमस्ति ।

अत्राधिकारिणः उक्ताः कृत्यकल्पतरौ देवीपुराणे ।

वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा ।
ब्रह्मा तु ब्रह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ।।

(अनेन स्वशक्ति गायत्री-सावित्री-सरस्वती सहितस्य ब्रह्मणः स्थापना विधेयेति शास्त्रसिद्धान्तः ।)

चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः ।
भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ।।
मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्या सुरोत्तमाः ।
लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा ।। इति ।

अतएव ब्रह्मा-विष्णु-शिव-सूर्य-शक्ति-विनायकादिष्वभिमतां देवतामर्चयेदिति ।

भगवतो ब्रह्मणः स्तोत्र-कवच-सहस्रनाम, पूजाविधि दिषये संप्रति कुत्रापि ग्रन्थे न दृश्यते । तथापि वैखानसागमादितन्त्रग्रन्थेषु स्यादिति

तन्त्रग्रन्थेषु द्रष्टव्यम् ।

प्रतिष्ठा विषयक प्रतिष्ठामयूख-प्रतिष्ठा प्रकाशादिग्रन्थेष्वपि ब्रह्मणो मूर्तेः प्रतिष्ठापनं सशक्तिकं कार्यमिति प्रोक्तम् । ब्रह्मणो वामभागे गायत्र्याः सावित्र्याः सरस्वत्या वा प्रतिष्ठा कार्येति लिखितम् । शुभम् ।

* *

अथ श्री ब्रह्मापूजन प्रकारः

आचम्य प्राणानायम्य शातिपाठं पठित्वा अत्राद्य अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुकवासरे ममात्यनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तपुण्यफलं प्राप्त्यर्थं जगत्सृष्टिकर्तुः श्रीब्रह्मणः पूजनमहं करिष्ये । इति संकल्पः ।

ब्रह्मजज्ञानमित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः, गायत्री छन्दो वा ब्रह्मा देवता ब्रह्मपूजने विनियोगः । ॐ ब्रह्मजज्ञानम्प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोव वेनऽआवह । सबुध्न्याऽउपमाऽस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ।

एह्येहि विप्रेन्द्र पितामहेश हंसाधिरूढ त्रिदशकैवंद्य ।
श्वेतोत्पलाभास कुशाब्जहस्त गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ।।

हंसपृष्ठसमारूढ देवतागणपूजितम् ।
आवाहयाम्यहं देवं देवेशं च प्रजापतिम् ।।
अमेक व्रतकर्त्तारं सर्वेषां च पितामहम् ।
विश्वरूपं निराधारं निरालंबं निरामयम् ।।
आगच्छ देव देवेश यज्ञेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः । ब्रह्मन्निहागच्छ, इह तिष्ठ, ब्रह्माणं आवाहयामि । इति ध्यात्वा, आवाहय नाममन्त्रेण, पुरुषसूक्तमंत्रैर्वा पूजनं कार्यम् । इदमनुलेपनं, इमानि पुष्पाणि, अयं धूपः, अयं दीपः, इदं नैवेद्यं । इदं ताम्बूलं । इयं दक्षिणा, आरार्तिकं, प्रदक्षिणा, मन्त्रपुष्पाञ्जलिं दत्वा प्रार्थयेत् । ॐ आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।।

वेदाधाराय यज्ञाय ज्ञानगम्याय सूरये ।
कमंडलक्षमालास्रक् स्रुवहस्ताय ते नमः ।।१।।

कृष्णाजिनांबरधर पद्मासन चतुर्मुख ।
जटाधर जगद्धातः प्रसीद कमलोद्भव ।।२।।

इति प्रार्थना । अनेन यथाशक्त्या पूजनेन श्री जगत्सृष्टिकर्त्ता श्री ब्रह्माप्रीयताम् । ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

अथवा सशक्तिकं ब्रह्माणं पूजयेत ।

श्रीसरस्वती-सावित्री-गायत्रीशक्तिसहिताय ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि इत्युक्त्वा षोडशोपचारैः पंचोपचारैर्वा यथा समयानुकूलं यथाशक्ति पूजनं कार्यम् । इति ब्रह्मा-पूजनम् ।

लेखक—महामहोपाध्याय आचार्य हरिशंकर शास्त्री वेणीराम शास्त्री
हलवद, (सौराष्ट्र)

* *

भगवान् ब्रह्माजी के मन्दिर तथा प्रदर्शित मूर्तियाँ

१ मरुभारती पत्रिका, पिलानी, वर्ष १, अंक २, फ़रवरी १९५३, पृष्ठ. १-३ ।
२ बड़ौदा म्यूजियम की पत्रिका, अंक ५, १९४७—१९४८ पृष्ठ. ११-२१ ।
३ वसन्तगढ़ (राजस्थान) में ब्रह्मा का मन्दिर है । जिसमें दो हाथ वाली ब्रह्मा की मूर्ति पूजित है ।
४ हाथल (सिरोही) में ब्रह्मा का मन्दिर है ।
५ कूसमा (सिरोही)
६ चींच (वांसवाड़ा)
७ खजुराहो (मध्यप्रदेश) में ब्रह्मा का मन्दिर है ।
८ खेड़ ब्रह्मा (गुजरात) में ब्रह्मा मन्दिर है ।
९ पुष्कर (राजस्थान) में ब्रह्माजी का सुविख्यात मन्दिर है ।
१० मध्य प्रदेश में कई एक स्थानों में ब्रह्मा मन्दिर हैं ।

ब्रह्मा मूर्तियाँ

भारत के अजमेर, मथुरा, लखनऊ, इलाहाबाद, काशी संग्रहालयों के अतिरिक्त राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में कई मूर्तियाँ हैं ।

भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में बंगाल से प्राप्त एक १२ वीं शती. ई. की मूर्ति में ब्रह्मा के साथ सावित्री एवं सरस्वती का अंकन भी प्राप्त है ।

दक्षिण भारत से प्राप्त चोलकालीन चतुर्मुखी मूर्तियाँ मद्रास संग्रहालय, राष्ट्रिय संग्रहालय, नई दिल्ली, तथा वोष्टन, वोरचेष्टर, डेट्रोएट, मेट्रोपोलिटन संग्रहालय न्यूयार्क अमेरिका में प्रदर्शित हैं ।

पुरातत्त्व संग्रहालय, ग्वालियर में कई मूर्तियाँ हैं । जिनमें से कुछ पर लेख भी खुदा हुआ है ।

ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में मध्य प्रदेश से प्राप्त १०वीं शती. ई. की मूर्ति विद्यमान है ।

अमेरिका के फिलाडेलफिया संग्रहालय में कर्णाटक से प्राप्त ब्रह्मा मूर्ति है।

कन्नौज के गौरीशंकर मन्दिर में ब्रह्मा की मूर्ति की पूजा होती है।

राष्ट्रिय संग्रहालय, नई दिल्ली में जबलपुर तथा महोबा (म. प्र.) से प्राप्त ब्रह्मा-सरस्वती की दो मध्यकालीन मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

ब्रह्मा की गुप्तकाल, ५वीं शती. ई. की एक कांस्य मूर्ति जो मीरपुर खास (सिंध) से मिली थी पाकिस्तान के करांची—संग्रहालय में प्रदर्शित है। एक अन्य समकालीन कांस्य मूर्ति वेष्ट बर्लिन (जर्मनी) के भारतीय संग्रहालय में भी प्रदर्शित है। इसमें उनके पैरों के समीप चार वेदों का भी अकन है। यह मूर्ति कश्मीर से प्राप्त हुई थी। ब्रह्मा की पाषाण स्थानक मूर्ति (मध्यकाल) रूस के—लेनिनग्राड संग्रहालय में स्थित है।

ऐहोल (कर्णाटक) से प्राप्त ७वीं शती. ई. की एक अद्वितीय मूर्ति बम्बई के प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय में भी प्रदर्शित है।

ELEPHANTA या धारापुरी में ब्रह्मा सात हंसों पर बैठे दिखाये गए हैं।

देवगढ (उ.प्र.) के दशावतार मन्दिर में विष्णु की शेषशायी मूर्ति की नाभि से निकले हुए पद्म पर भी ब्रह्मा विराज मान दिखाये गये हैं। यह गुप्तकाल ७वीं शती. ई. का मन्दिर है।

तमिलनाडु तथा कर्णाटक के अनेक मध्यकालीन देवालयों पर ब्रह्मा की स्थानक व आसन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दक्षिण भारत में आज भी ब्रह्मा के अनेक मन्दिर विद्यमान हैं।

राजस्थान के मेवाड़ी(मारवाड़), बसाड़(प्रतापगढ), सिरोद (कोटा), किराड़ू (जोधपुर), ओसिया, आबानेरी, हर्षनाथ, बिजोलिया, चित्तौड़गढ़, आम्बेर तथा मण्डलगढ के जालेश्वर मन्दिर पर भी ब्रह्मा की मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। आम्बेर तथा झालावड़ और अजमेर के संग्रहालयों में भी ब्रह्मा की मूर्तियां प्रदर्शित हैं।

खजुराहो (म. प्र.), भुवनेश्वर (उड़ीसा) के मध्यकालीन मन्दिरों पर भी ब्रह्मा की स्थानक एवं आसन मूर्तियाँ विद्यमान हैं। भोपाल, इन्दोर एवं धुबेला के संग्रहालयों में भी वे प्राप्त हैं।

इनके अलावा ब्रह्मा की विष्णु, शिव, सूर्य आदि देवताओं के साथ बनी अनेक संयुक्त मूर्तियाँ भी हैं जो विभिन्न संग्रहालयों के अतिरिक्त म. प्र. के मारकण्डा देवालय तथा बैजनाथ, चन्देरी और खजुराहो के मध्यकालीन देवालयों पर आज भी देखी जा सकती हैं। भारतकलाभवन, वाराणसी, अजमेर संग्रहालय, किराड़ू, रतनपुर, मुखलिगम में उपलब्ध लिंगोद्भव मूर्तियों में ब्रह्मा एवं विष्णु को शिव-लिंग के प्राय: दोनों ओर दिखाया मिलता है।

उपर्युक्त मूर्तियों में से अधिकतर मूर्तियाँ अभी तक अप्रकाशित हैं और इन पर अभी तक कोई विशेष शोध कार्य नहीं हुआ है। आशा है यह ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन

प्रकाशित होने के पश्चात् कुछ विद्वानों का ध्यान ब्रह्माजी की ओर जाए और उनकी मूर्तियों का शोध कार्य किया जा सके। भारत के विभिन्न शैलियों के लघु चित्रों में भी हमें अनेक स्थानों पर ब्रह्मा के चित्र वेखने को मिले हैं। एक चित्र में तो ब्रह्मा पुष्कर में अनेक ऋषियों के साथ बैठकर तपस्या में लीन दिखाये गये हैं।

दक्षिण भारत के रथों पर भी ब्रह्मा की काष्ट मूर्तियाँ मिलती हैं। यह उल्लेखनीय है कि ब्रह्मा की दाढ़ी-युक्त तथा बिना दाढ़ी वाली मूर्तियाँ मिलती हैं साथ ही एक तथा अधिक सिर वाली मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। अतः मूर्तियों का वर्गीकरण करने के पश्चात् उनके अध्ययन की भी आवश्यकता है कि भारत के किस-किस भाग में किस प्रकार की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। ब्रह्मा की मूर्तियाँ नेपाल तथा सुदूर पूर्व के अनेक देशों में भी हमें देखने को मिली हैं। बंगला देश के अनेक संग्रहालयों में भी ब्रह्मा की मूर्तियाँ हैं। बौद्धधर्म तथा जैनधर्म की मूर्तियों में भी ब्रह्मा का अंकन देखने को हमें मिलता है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह भी एक अलग शोध का विषय है। इन धर्मों में ब्रह्मा को कुछ हीन अंकित किया जाता है।

लेखक—डॉ. ब्रजेन्द्ररनाथ शर्मा
एम. ए; पी-एच. डी.; डी. लिट्;
एफ. आर. ए. एस; लन्दन
कीपर एण्ड अध्यक्ष राष्ट्रिय संग्रहालय
पुरातत्त्व विभाग, नई दिल्ली,

परिशिष्ट (ख)

ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-दर्शन

आशीर्वाद, मङ्गल कामना तथा सम्मतियाँ

॥ श्री ॥

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य महासंस्थानम् शारदा-पीठाधीश्वर श्रीस्वामी अभिनव विद्यातीर्थजी महाराज शृंगेरी (कर्नाटक) का शुभाशीर्वाद

श्री पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री जी, सादर हरि स्मरण ।

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' का संक्षिप्त परिचय श्री गुरु महाराज ने अवलोकन किया । श्री महाविष्णु तथा महादेव के विषय में आस्तिक लोग थोड़ी-बहुत जानकारी रखते हैं; किन्तु प्राचीन धर्म ग्रन्थों में देवताओं के इतिहास चरित्र हैं, उनका पठन-पाठन नहीं होने से ब्रह्मा विषयक जानकारी प्रायः लुप्त होती जा रही है । पुराण धर्मशास्त्रादि प्राचीन ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री का संकलन करके आपने परिश्रमपूर्वक इस ग्रन्थ का निर्माण कर महदुपकार किया है । इस एक ही ग्रन्थ द्वारा ब्रह्मा विषयक बहुत जानकारी प्राप्त कर आस्तिक भक्त लोग ऐहिक और पारत्रिक फल प्राप्त कर सकेंगे ।

श्री जगद्गुरु महाराज का यह शुभाशीर्वाद कुंकुमाक्षत सहित निवेदित करता हूँ । दिनांर १५-१-१९८१

निवेदक
गिरिधर शास्त्री
प्राइवेट सेक्रेटरी टू हिज होलीनेस
श्री जगद्गुरु शंकराचार्य, श्री शारदापीठम्, शृंगेरी

**

श्री चन्द्रमौलीश्वराय नमः

अनन्त श्री विभूषित श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्री काञ्ची कामकोटि पीठाधिपति जगद्गुरु श्री शंकराचार्य श्रीमठसंस्थानम् काञ्जीपुरम् (तमिलनाडु) का शुभाशीर्वाद

पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री द्वारा निर्मित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय श्री चरणों के सन्निधान में विज्ञापित किया । श्री चरणों की आज्ञानुसार आशीर्वाद स्वरूप श्री चन्द्रमौलीश्वर का प्रसाद प्रदान किया जा रहा है ।

दिनांक ६-२-८१ आज्ञानुसार
केम्प सतारा निर्वाहक

।। श्री शङ्कराचार्यो विजयते ।।

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य श्री स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज, ज्योतिर्मठ, बदरिकाश्रम, हिमालय का शुभाशीर्वाद

श्री युत रामप्रसाद शर्मा
सप्रेम शुभाशीर्वाद

चतुर्विशति सोपान में 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' की संक्षिप्त परिचयपत्रिका को श्री गुरु महाराज ने पढ़ा। ब्रह्मा के सम्बन्ध में श्रुति, स्मृति, पुराण से लेकर गद्य-पद्यात्मक काव्यालंकार क्षेत्रों में उपलब्ध विषयों का संकलन कर उन्हीं के मूल परिवेश में यह ग्रन्थ आपने हिन्दी में निवद्ध कर वर्तमान एवं भविष्य के जिज्ञासुओं, अन्वेषकों को सफल मार्ग दर्शन कराने हेतु अतीव परिश्रम-जन्य सुन्दर प्रयास किया है। इस समय में ऐसे तात्विक विषयों के प्रतिपाद्य की अत्यन्त आवश्यकता थी जो आप जैसे अध्येता विचारक लेखक के प्रयास से पूर्ण हो रही है।

इसी प्रकार से आपने स्थूल से सूक्ष्म तक शास्त्रीय मर्यादा से सम्बद्ध भगवान् शिव, शक्ति तथा विष्णु के विषय में भी बृहत्काय ग्रन्थों की रचना कर प्रकाशित कराये हैं। यह आपकी प्राच्यशास्त्र ज्ञान गहराई एवं अथक परिश्रम का परिचय कराते हैं।

श्री गुरु महाराज शुभाशीर्वाद प्रदान कराते हैं कि यह ग्रन्थ अत्यधिक प्रचार-प्रसार को प्राप्त होकर जिज्ञासु आध्यात्मिक विचारकों, अन्वेषकों को सन्तोष प्रदान करेगा। दिनाङ्क २८-१२-८०

श्री महाराज के आदेशानुसार
राजनारायण त्रिपाठी

* *

।। श्री ।।

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी ओमप्रकाशानन्दजी सरस्वती महाराज ज्योतिर्मठ, शाखा काशी पीठाधीश्वर का आशीर्वाद

श्री शास्त्री जी द्वारा रचित अपूर्व ग्रन्थ श्री विष्णु-तत्त्व-दर्शन, शिव-तत्त्व-दर्शन एवं शक्ति-तत्त्व-दर्शन देखने को मिले। विद्वान् लेखक ने गागर में सागर भर दिया है। अब इसके बाद श्री शास्त्री जी ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन प्रकाशित करने जा रहे हैं। ब्रह्मा पर प्रकाश डालने वाला यह ग्रन्थ अपने आप में अकेला ही होगा मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ सदा साथ हैं। दिनाङ्क २४-२-८१

श्री स्वामी ओमप्रकाशानन्द जी सरस्वती

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अनन्त श्री विभूषित अयोध्या कोसलेशसदनपीठाधीश्वर श्री मज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य वेदान्तमार्तण्ड यतीन्द्र स्वामी रामनारायणाचार्य जी महाराज का शुभाशीर्वाद

ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन अध्यात्म की दिशा में एक अभिनव एवं संस्तुत्य प्रयास

ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का अध्ययन करने से मानसपटल पर यह स्वभावतः अङ्कित हो जाता है कि 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' एक सुयोग्य विचारक, शास्त्रविद् व्यक्ति की दार्शनिक-प्रतिभावल्लरी का वह पुष्प है, जो प्राचीन एवं नवीन दोनों दार्शनिक विचार परम्पराओं को आत्मसात् करने में समर्थ है एवं उसका अपूर्व सौरभ अध्ययनशील विद्वान् पुरुषों के साथ ही सामान्य ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को भी आह्लादित करने में सक्षम है।

शिखा-यज्ञोपवीत की धर्मकार्यों में उपयोगिता तथा उसके न धारण करने पर कर्म नैष्फल्य आदि के तर्क सङ्गत एवं गम्भीर विवेचन से ग्रन्थ की गरिमा और भी अधिक संवर्द्धित एवं पुष्ट हो गयी है। प्रजापति ब्रह्मा जी के विशद विवेचन के साथ-साथ वर्णाश्रम धर्म का भी स्थल-स्थल पर सम्मानपूर्वक वर्णन होने से यह साधिकार कहा जा सकता है कि श्री रामप्रसाद शर्मा शास्त्री के द्वारा भारतीय धर्मप्राण एवं स्वाध्यायप्रिय जनता के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली यह कृति समस्त जन मानस को हिन्दुत्व का बोध कराती है, एतदर्थ समस्त हिन्दु समाज के लिए परमोपादेय एवं संग्राह्य है।

श्री शर्मा शास्त्री का यह प्रयास प्रत्येक वर्ग के मननशील व्यक्ति के लिए अनुशीलन करने योग्य है। इस प्रकार यह 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' अध्यात्म की दिशा में एक अभिनव एवं संस्तुत्य प्रयास है। हमारी यह शुभ कामना है कि इस ग्रन्थ का लोकोत्तर प्रचार एवं प्रसार हो तथा समस्त हिन्दु समाज इससे लाभान्वित होता रहे। अन्त में इस ग्रन्थकार के प्रति मेरा हार्दिक अभिनन्दन है। दिनांक ७-११-८०।

शुभाकांक्षीः—

जगद्गुरु रामानुजाचार्य यतीन्द्रस्वामी रामनारायणाचार्य

**

॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

॥ श्री निम्बार्क महामुनीन्द्राय नमः ॥

श्रीमन्निखिल महीमण्डलाचार्य चक्र-चूड़ामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित अनन्तानन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य जी महाराज, सलेमाबाद (अजमेर) राजस्थान का शुभाशीर्वचन

विद्वद्वर पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री द्वारा निर्मित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ

का अवलोकन किया। वस्तुतः यह नितान्त अभिनव अपूर्व अनुपमेय ग्रन्थ है। इसका प्रतिपादन बड़ा ही सुन्दर एवं मनोरम है।

शास्त्रीजी ने श्रुति, स्मृति, पुराण, तन्त्र धर्मशास्त्रों के प्रमाण समुद्धरण हिन्दी भाषार्थ सहित यथास्थान प्रस्तुत कर ग्रन्थ को विद्वानों के लिये ही नहीं सर्वसाधारण के लिये भी हितावह बनाकर ज्ञान-कर्म-भक्ति का मार्ग प्रशस्त कर समस्त सनातन धर्मावलम्बियों के लिये अत्युत्तम रचना प्रस्तुत की है। आपकी पूर्व रचना शिव, शक्ति, विष्णु-तत्त्व-दर्शन की भांति यह ग्रन्थ भी अमूल्य निधि है।

श्री सर्वेश्वर प्रभु से मंगल कामना है कि यह ग्रन्थ भविष्य में सर्वोपादेय हो और इसका सर्वत्र प्रचार-प्रसार हो। यही हमारा आन्तरिक आशीर्वचन है।
दिनांक ११-१२-८०

पूज्य श्री आचार्य चरणों के आदेश द्वारा
मुरलीधर शास्त्री

* *

॥ श्री ॥

अनन्तश्री आचार्य रामदासजी शास्त्री महामण्डलेश्वर, चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दावन (उत्तर प्रदेश) का आशीर्वाद

माननीय विद्वद्वरेण्य श्री रामप्रसाद शर्मा शास्त्री
सादर मङ्गलमय जय श्रीकृष्ण शुभाशीष।

श्री शास्त्रीजी—आपने इस युग में यह महान कार्य किया है कि ईश्वरत्व के प्रतिबोधक प्रथम 'शिव-तत्त्व-दर्शन', द्वितीय 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन', तृतीय 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' और अब चतुर्थ 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' महान् ग्रन्थों का निर्माण किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' वास्तव में एक अछूता एवं अनूठा दर्शन है। शिव, शक्ति और विष्णु तत्त्व पर पौराणिक काल से अब तक न जाने कितना विवेचन हुआ है। किन्तु 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' पर किसी ने लेखनी उठाई हो, दृष्टि में नहीं आया। हमारा अनुमान है कि इस महत्त्वपूर्ण तत्त्व पर यह अभूतपूर्व आपका ही प्रथम एवं सफल प्रयास है।

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ में चौबीस सोपानों में विभिन्नता के साथ सर्वविधा से सप्रमाण ब्रह्मा का आविर्भाव, आयु, युग, कालमान, ब्रह्मा की भगवत्ता वेद, उपनिषद्, पुराण श्रुति-स्मृति, पुराणादि में उनकी एकरूपता, लोककल्याणार्थ उनके विभिन्न अवतार विष्णु के सहायतार्थ कल्याणकारी कार्यों में सहयोग, शाप और उनके वरदानों की कथाएँ, भारतवर्ष में उनके अनेक तीर्थ मन्दिरों, मूर्तियों का आकलन एवं शोधपूर्ण उपलब्धियों का परिचय तथा उनकी शक्तियों का वर्णन इसके पश्चात् ब्रह्मसूत्र, यज्ञोपवीत और शिखा आदि की विवेचना प्रस्तुत की गई है। आज के युग में हिन्दुत्व के प्रश्नों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार श्रीशास्त्रीजी ने भगीरथ परिश्रम करके शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर अनेक जटिल, कठिन एवं उलझे हुए गम्भीर प्रश्नों को जनसाधारण से विद्वानों तक के लिये सुलझाया है। इस ग्रन्थ के द्वारा हिन्दू धर्म और साहित्य में रुचि रखने वाले तथा शोधकर्ता सभी शास्त्रीजी के सर्वदा आभारी रहेंगे। शास्त्रीजी द्वारा विरचित सभी तात्त्विक ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार हेतु भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रार्थना करते हैं। दिनांक २४-१२-८०

भवदीय
रामदास शास्त्री महामण्डलेश्वर
वृन्दावन

* *

॥ श्री ॥

अन्नपूर्णा मां के परमभक्त सिद्ध महापुरुष बाबा रामेश्वरदासजी ब्रह्मचारी, रामेश्वरानन्द आश्रम, ग्राम टीबा-बसई तहसील खेतड़ी (झुंझनू) राजस्थान का शुभाशीर्वाद

परम पूज्य श्री के चरणों में ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ लेखन में सफलता प्राप्त होने हेतु निवेदन किया गया। परमपूज्य श्री ने प्रसाद सहित आशीर्वाद प्रदान किया विधाता की प्रेरणा से ही इस कार्य में जुटे हो, वही तुम्हारा प्रयास सफल करेगा। दिनांक पौष शुक्ला १२ सम्वत् २०३७ विक्रम।

* *

॥ श्री ॥

श्रीगणेशजी महाराज के परमभक्त सिद्ध महापुरुष गुरुवर्य्य श्री हर्षजी महाराज बीकानेर (राजस्थान) का आशीर्वाद

विश्व निर्माता भगवान् ब्रह्मा के सम्बन्ध में अद्यावधि कोई पुस्तक दृष्टि में नहीं आई। पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का अनुशीलन कर वृहत्काय विविध ग्रन्थों में से अनेक बहुमूल्य ज्ञान रत्नों का संग्रह कर इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। जो लेखक के अपार पाण्डित्य एवं अथक परिश्रम का परिचायक है। यह सनातन धर्म मानव समाज एवं राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है। हिन्दूधर्म संस्कृति में रुचि रखने वाले तथा शोध कर्ता लेखक के सर्वदा ऋणि रहेंगे। मैं भगवान् गणेशजी के चरणों में लेखक के उत्तम भविष्य की कामना निवेदन करता हूँ। दिनांक ५।११।८०

श्रीगोपाल हर्ष

॥ श्री ॥

डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन', पूर्व कुलपति विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

परमसमादरणीय पण्डित रामप्रसादजी शर्मा शास्त्री

प्रथम 'शिव-तत्त्व-दर्शन', फिर 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' तत्पश्चात् 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' और आगामी 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' के रूप में आपने भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक साधनाओं को जन-जनके लिए उपलब्ध कराने तथा उनकी गहन तात्त्विक उपलब्धियों से परिचित कराने का महार्घ प्रषूत किया है। मैं आपके अध्ययन, अध्यवसाय और आध्यात्मिक आस्था के प्रति प्रणत और अभिभूत हूँ। वैदिक, औपनिषदिक और पौराणिक मान्यताओं को अद्यतन धार्मिक अनुष्ठानों के साथ अनस्यूत कर आपने विलुप्त होती हुई परम्पराओं को पुनर्जीवित कर दिया है। वैज्ञानिक युगके परिवर्तित परिवेश में भारतीय साधना के सूक्ष्म तत्त्वों की प्रतिष्ठा स्वयं में एक महायज्ञ है।

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' में ब्रह्मा के विभिन्न स्वरूपों का विवेचन, तात्त्विक व्याख्या, सृष्टिनिर्माण और मूर्तिपूजन की स्थापनाओं के प्रति आपका शोधकार्य ऐतिहासिक महिमा से मण्डित हो गया है। मैंने भी ब्रह्मा की मूर्तियाँ तो कई मन्दिरों में देखीं पर उनके पूजन की परंपरा पुष्कर में ही मिली। आपने और भी अनेक स्थानों का पता लगा लिया है। आपकी अप्रतिहत निष्ठा के प्रति हम विस्मय विमुग्ध हैं और आप जैसे ऋषि के चरणों में नमन प्रेषित करते हैं।

भारत के प्रत्येक महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में इन ग्रन्थों को संदर्भ ग्रन्थों के रूप में प्रचारित और सुरक्षित रखना चाहिए। मेरी हार्दिक कृतज्ञता और और साधुवाद स्वीकार कीजिए: इस बृहत् विचार-समुच्चय के प्रति सम्मति प्रेषित करने का दुस्साहस तो—'तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्' का पर्याय बन जायगा। आपकी वाङ्मयी पूजा सार्थक हो यही भगवान् महाकाल से प्रार्थना है।

पुनः कृतज्ञता ज्ञापन करता हुआ। विनीत

दिनांक १४-११-८० शिवमंगल सिंह 'सुमन'

**

॥ ॐ नमो ब्रह्मणे ॥

महामहोपाध्याय, वयोवृद्ध आचार्य हरिशंकर वेणीराम शास्त्री, यज्ञ कर्मकाण्ड ज्योतिषाचार्य, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालंकार, हलवद (सौराष्ट्र) का आशीर्वाद

स्वस्ति श्रीः। सुहृदुत्तमानां स्नेह सुधासान्द्र हृदयानां विद्यासद्गुण शेमुषीसंपत्ति निधनानां नानां निगमागमाध्ययन मनन निदिध्यासन सिद्धधिषणानां तपोनिधीनां विविधोपाध्य लङ्कृतानां पण्डित प्रवराणां

तत्र भवतां भवतां श्री रामप्रसाद शर्मा शास्त्रि महोदयानां पुरस्तात् प्रस्तुतान्ये सादरं सप्रेम शुभाशीराशिभिर्युज्यन्तुन्तांतराम् ।

सादरं निवेदनं यत् श्रीमतकं पत्रं प्राप्तम् । तथा च 'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थस्य संक्षिप्त परिचय पत्रिका प्राप्ता । 'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थे ग्रथितानां विषयाणां पठनेन महती प्रसन्नता जाता ।

'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ ब्रह्मन् शक्ति गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों के आधार पर चौबीस सोपानों (अध्यायों) में निर्माण किया गया है । भगवान् ब्रह्माजी का प्रादुभाव तथा उनकी मूर्ति (प्रतीक) का निदान, ब्रह्माजी की द्विपरार्ध आयु, कालमान, ब्रह्माजी का तात्त्विक विवेचन, उनके अवतार एवं वरदान प्रदान करने की कथाएँ, ब्रह्माजी का मुख्य क्षेत्र पुष्कर का परिचय माहात्म्य एवं ब्रह्माजी के अन्य मन्दिरों का परिचय तथा ब्रह्माजी की शक्ति सावित्री-गायत्री तथा सरस्वती की मूर्ति (प्रतीक) निदान, उनके वाहन की व्याख्या व निदान भी लिखे हैं। ब्रह्माजी, सावित्री-गायत्री तथा सरस्वती की पूजा विधि, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) की आवश्यकता महत्व व निर्माण विधि, शिखा (चोटी) की आवश्यकता महत्व, अन्त में ग्रन्थ समापन प्रार्थना, सर्वमङ्गल कामना लिखकर ग्रन्थ पूर्ण किया है। जो भी विवेचन व कथाएँ लिखी हैं, वेद, उपनिषद् स्मृति पुराण तंत्र शास्त्र के प्रमाण संदर्भ द्वारा पुष्टित हैं ।

वर्तमान समय में जन साधारण एवं राष्ट्रमान्य हिन्दी भाषा में ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन कर समस्त समाज को जागृत करने का सुप्रयास अत्यन्त उपयोगी है। 'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' के ग्रन्थ के लेखन में जो श्रम किया है, अत्यन्त श्लाघ्य है ।

मैं पराम्बाभक्तवत्सला राज राजेश्वरी भगवती से प्रार्थना करता हूँ कि लेखक की सर्व शुभकामनाएं सफल हों, श्री जगदम्बा की पूर्ण कृपा स्नेह सहित वरद हस्त कमल आपके मस्तक पर बना रहे। पराम्बा की ओर से तथा हमारी ओर से वेदोक्त शुभाशीर्वाद सअभिवादन ।

आचार्यस्य प्रणामान्ये हरिशङ्कर शर्मणः ।
स्वी कुर्वन्तु महाभागाः प्रेषयन्तूत्तरं शुभम् ।।

दिनांक २५-९-८० महामहोपाध्याय

आचार्य हरिशंकर वेणीराम शास्त्री

**

।। श्री गुरुः शरणम् ।।

वेद-न्यायाचार्य, प्राचार्य पण्डित रामचन्द्र शास्त्री होसमने तथा आचार्य पण्डित विश्वेश्वर शास्त्री द्राविड, साङ्गवेद महाविद्यालय वाराणसी

समस्तस्य जगतः सृष्टिस्थितिलयकर्तुः परमेश्वरस्य तत्तच्छक्ति-विशिष्टस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मकस्योपासनं तत्तत्तत्त्वज्ञानायापेक्षितमेव ।

वीरमित्रोदयपूजाप्रकाशे भविष्यपुराणोद्धृतस्त ब्रह्मपूजनस्य, जयसिंहकल्पद्रुमे ब्रह्मपुराणोद्धृतस्य संवत्सरारम्भविधेः, विष्णुधर्मोत्तरपुराणोद्धृतस्य विद्याव्रतस्य च दर्शनेन ब्रह्मपूजनस्यासाधारणं महत्त्वमिति निश्चयेन वक्तुं शक्यम् । एवं सर्वतोभद्रदेवपूजने श्रौतकर्मणि च ब्रह्मणः प्राधान्यं पुराणादौ वर्णितं सुप्रसिद्धम् । कुत्रचित् स्कन्दपुराणादौ ब्रह्मणः पूजनादिलोपशापप्रसङ्गो यो दृश्यते तस्यानृतवदनेन तथाविधगुणविशिष्टस्याप्येवं स्थितिर्भवतीति लोकशिक्षण एव तात्पर्यम् । "हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः" इत्युक्तेर्योगाद्यशिक्षकत्वं ब्रह्मण एव वर्तते । अतो ब्रह्मण उपासनं विद्यावाप्तये तत्साधकस्य योगस्य प्राप्तये सर्वविधमङ्गलाय चात्यावश्यकम् । श्रीमद्भिः रामप्रसादशास्त्रिमहोदयैः पुराणाद्यन्तर्गतस्य ब्रह्मतत्त्वस्य हिन्दी भाषया प्रकाशनेन साधारणजनानां महानुपकारः कृतः । श्रीशास्त्रिमहोदया उत्तरोत्तरं तत्तद्देवतातत्त्वं प्रकाशयन्तः उपासकानां कल्याणभाजो भवन्त्विति परमेश्वरं प्रार्थयावहे । इति—

रामचन्द्र शास्त्री

कार्तिक शु. १ शनौ होसमने,

२०३७ वक्रमे विश्वेश्वर द्राविड

* *

।। श्री ।।

पण्डित गोविन्दनारायण शर्मा न्याय-साहित्याचार्य पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य महाराजास्-संस्कृत कॉलेज जयपुर (राजस्थान)

विद्वद्वर श्रीरामप्रसाद शर्मा शास्त्री द्वारा विरचित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक ग्रन्थ को देखने से अनुभव हुआ कि विद्वान् लेखक ने ब्रह्मा-विषयक श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, काव्य, निरुक्त आदि समस्त प्राचीन वाङ्मय में एत्र-तत्र बिखरी हुई बहुविध सामग्री को ही नहीं अपितु आधुनिक अनेक शोध ग्रन्थों से भी कठिन परिश्रम पूर्वक साहित्य संग्रह कर अत्यन्त विलक्षण बुद्धिमत्ता द्वारा चौबीस सोपानों में संजोकर विविध भांति से प्रस्तुत किया है ।

आपके पूर्व रचित शिव-तत्त्व, शक्ति-तत्त्व तथा विष्णु-तत्त्व ग्रन्थ भी अत्यन्त उपादेय प्रमाणित हुए हैं । किन्तु ब्रह्माजी के सम्बन्ध में जो गवेषणा की गई है, यह तो वास्तव में अभूत पूर्व ही है । इस दिशा में यह प्रयास तो सर्वथा स्तुत्य एवं श्लाघनीय है । यह ग्रन्थ विद्वानों से साधारण व्यक्तियों तक के लिये संग्राह्य है ।

मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि श्रीशास्त्रीजी अपने इस पुनीत प्रयास को चालू रखते हुए इसी प्रकार का साहित्य सृजन करते रहें । दिनांक १४-१-८१

गोविन्दनारायण शर्मा नैयायिक

॥ श्रीहरिः ॥

याज्ञिक सम्राट, वेदवाचस्पति, पण्डित वेणीराम गौड़ वेदाचार्य, काव्यतीर्थ सेवानिवृत्त प्राचार्य गोयनका संस्कृत कालेज, वाराणसी

शिव-तत्त्व-दर्शन, शक्ति-तत्त्व-दर्शन, विष्णु-तत्त्व-दर्शन आदि ग्रन्थों के रचयिता पण्डित प्रवर रामप्रसाद शर्मा शास्त्री द्वारा रचित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक विशिष्ट और अद्‌भुत अपूर्व ग्रन्थ के पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थरत्न में लेखक महोदय ने वेदों, उपनिषदों, पुराणों के आधार पर सप्रमाण ब्रह्मा-तत्त्व के दर्शन का तत्त्वपूर्ण ज्ञान प्रदर्शित किया है, जिसके लिये विद्वत्समाज लेखक महोदय का सर्वदा ऋणि रहेगा।

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी के सम्बन्ध में इस प्रकार का विशिष्ट शोधपूर्ण ग्रन्थरत्न आज तक किसी ने नहीं लिखा है। कल्याण आदि मासिक पत्रों के शिवाङ्क, रामाङ्क, विष्णु अङ्क, हनुमान अङ्क आदि देवी-देवताओं के नामों से विविध विशेषांक प्रकाशित हुए हैं; किन्तु अद्यावधि ब्रह्मा-अङ्क किसी भी मासिक पत्र ने प्रकाशित नहीं किया है। इस अभाव की पूर्ति पण्डित प्रकाण्ड रामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने करके प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य किया है।

यह ग्रन्थरत्न सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी के सर्वविध विषयों का परिचायक होते हुए भी अन्यान्य महत्त्वपूर्ण विषयों का भी विशिष्ट प्रतिपादक है। अतः यह ग्रन्थ प्रत्येक हिन्दू मात्र के लिये पठनीय मननीय है। दिनांक २३-१-८१

वेणीराम गौड़ वेदाचार्य

**

॥ श्री ॥

डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्., रॉयल एसियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड के फैलो (एफ. आर. ए.एस.) लन्दन, भारतीय प्राचीन इतिहास, संस्कृति, कला, लिपि विशेषज्ञ, कीपर एण्ड अध्यक्ष (पुरातत्त्व विभाग), राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

पुराण ग्रन्थों में अनेक स्थानों में लिखा हुआ मिलता है—

"एक मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।"

इसका तात्पर्य यही है कि एक परमात्मा ही गुण भेद के अनुसार तीन रूपों में प्रकट होते हैं। तथापि जैसा कि शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति और गणपति पर विस्तृत रूप में लिखा हुआ प्राप्त होता है, इस प्रकार का कोई ग्रन्थ ब्रह्मा के विषय में उपलब्ध नहीं है। यद्यपि वैदिक साहित्य, पुराणशास्त्र, महाकाव्यों के अतिरिक्त संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में भी ब्रह्मा विषयक विस्तृत सामग्री पढ़ने को प्राप्त होती

है इसके अतिरिक्त ब्रह्मा की असंख्य मूर्तियाँ हैं तथा विशेष कर मध्यकालीन अभिलेखों में उनकी वन्दना स्वरूप अनेक स्तुतियाँ भी प्राप्त होती हैं, जो अभी तक अप्रकाशित हैं। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मा की पूजा का पूर्णरूप से लोप नहीं हुआ था, हां, पूजा अवश्य अन्य देवताओं की अपेक्षाकृत कम हो गई थी। इन सबका अध्ययन होना आवश्यक है।

पुष्कर में ब्रह्मा का सर्व प्रसिद्ध देवालय विद्यमान है; परन्तु इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों में भी अनेक ब्रह्मा मन्दिर आज भी देखे जा सकते हैं। जिनमें से अनेक विशाल मूर्तियाँ भारत एवं विदेशी संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। जिससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में उनकी अवश्य ही पूजा होती रही होगी। इनमें से कुछ पर तो तिथियुक्त लेख भी उत्कीर्ण हैं। जिससे इनकी पूजा के सम्वन्ध में भी महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती हैं। ऐसी लेखयुक्त दो मूर्तियाँ ग्वालियर संग्रहालय में देखी जा सकती हैं।

ब्रह्मा को बौद्धकला में भगवान् बुद्ध के साथ, इन्द्र सहित उनके चंवरधारी के रूप में दिखलाया गया है। जैन साहित्य एवं कला में ब्रह्मा तीर्थङ्कर शीतलनाथ के यक्ष के रूप में मिलते हैं और इनकी यक्षी अशोका भी दर्शायी जाती हैं। साथ ही श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों में ब्रह्मा की गणना दिक्पालों में भी की गई है और इन चतुराननदेव को हंसवाहना तथा हाथों में पुस्तक और पद्म लिए वर्णित किया गया है। इस प्रकार से बौद्ध एवं जैन साहित्य और कला में ब्रह्मा को उनके देवताओं की तुलना में निम्न दिखलाया गया है।

ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन नामक इस ग्रन्थ को पढ़ने से प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने ब्रह्मा सम्बन्धित प्रायः सभी सामग्री का अवलोकन कर उसका इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में समावेश किया है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण आपने लगभग सभी पुराणों एवं अन्य साहित्यिक ग्रन्थों का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन कर इस विषय पर जो महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान की है। इस कठिन साधना के लिये सभी विद्वान् एवं शोधकर्ता सदैव आपके ऋणी रहेंगे।

आपके पिछले ग्रन्थ 'शिव-तत्त्व-दर्शन', 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' एवं 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' लोक-प्रसिद्ध हुए हैं। इसी प्रकार का यह 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' भी अपने प्रकार का प्रथम एवं मौलिक शोध ग्रन्थ है, जिसमें ब्रह्मा विषयक सभी प्रकारों का आपने इतना विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह हिन्दू धर्म में अपनी निष्ठा एवं लगन का प्रतीक माना जायेगा। इससे न केवल हिन्दू धर्मावलम्बियों, वरन् सभी शोधकर्ताओं को भी अत्यन्त लाभ होगा।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री को लम्बा एवं स्वस्थ जीवन प्रदान करें, जिससे आप अन्य देवों विशेषकर गणपति, सूर्य, हनुमान आदि पर भी ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर सभी को लाभान्वित करें। 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' प्रकाशित होने के पश्चात् अनेक विद्वानों को इस दिशा में और अधिक कार्य

करने में सुविधा होगी तथा ब्रह्मा विषयक अधिकाधिक महत्ता के बारे में और ज्ञान प्राप्त हो सकेगा । दिनांक २२-१२-८०

डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा

**

ॐ

'दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य हृदये स्थित:'

साहित्यमार्तण्ड, प्रोफेसर श्रीरंजन सूरिदेव एम. ए. त्रय (संस्कृत-हिन्दी एवं प्राकृत-जैनशास्त्र), साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-जैन-दर्शन-पाल्याचार्य, व्याकरणतीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, सम्पादक-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्-पत्रिका, पटना (बिहार)

मान्यवर पण्डित प्रवर शर्मा शास्त्रीजी,

सविनयं प्रणतयः ।

आप, निश्चय ही, निरन्तर तत्त्व चिन्तन में लीन रहने वाले अभिनन्दनीय सारस्वत पुरुष हैं । आप पर समस्त हिन्दी-जगत् को गर्व और गौरव है । आपने हिन्दी-साहित्य को तन्त्र-वाङ्मय से समृद्ध करके अवश्य ही संस्थाकल्प कार्य किया है । अतएव, आपकी जितनी भी प्रशंसा की जायगी वह थोड़ी ही होगी ।

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन (यथा प्रस्तावित) पुस्तक पर यद्यपि आप जैसे महर्षि शलाका पुरुष की शलाका-कृति पर सम्मति लिखने का मैं अधिकारी नहीं हूँ, फिर भी आपके स्नेहाग्रहवश क्षम्य धृष्टता मैं कर रहा हूँ ।

ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शनः

ब्राह्मण-परम्परा में त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) की महत्ता अक्षुण्ण है । ये तीनों देव क्रमशः विश्व के स्रष्टा, पालक और संहर्त्ता के रूप में लोक-प्रतिष्ठ हैं । और इस प्रकार, ये लोक जीवन से सघनता के साथ जुड़े हुए हैं । पुराणों में इन तीनों देवों के सम्बन्ध में अनेक अलौकिक अद्भुत मिथक कथाएँ या रहस्यावृत आख्यान परिगुम्फित हैं । लोक कथाओं में भी इनका अनेक प्रकार से पुनराख्यान हुआ है । इससे इनकी ततोऽधिक जन प्रियता और लोकपरिचिति का संकेत प्राप्त होता है ।

फिर भी, ज्ञातव्य है, उक्त त्रिदेवों में शिव और विष्णु नित्य पूजाविधि में जितने लोकादृत हुए, उतनी पूजनीयता ब्रह्मा को प्राप्त नहीं है । जन जीवन में अपने स्रष्टा देव को ही कैसे उपेक्षित कर दिया, यह निश्चय ही विशिष्ट गवेषणा का विषय है ।

आन्तरिक प्रसन्नता है कि देवतत्त्व के अधीती पारदृश्वा विद्वान् पण्डित राम-प्रसाद शर्मा शास्त्री ने 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक कृति की रचना करके पौराणिक गवेषणा जगत् में युगान्तरकारी शोधसूक्ष्मेक्षिका का परिचय दिया है । प्राचीन पौराणिक धर्मकथा के मर्मज्ञ मनीषी पण्डित शर्मा शास्त्री जी ने इतः पूर्व 'शिव-

तत्त्व-दर्शन', 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन', तथा 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन', नामक बृहत्काय कोश शिलात्मक कृतियों का प्रणयन करके देव तत्त्व के शोध-अध्ययन की दिशा में पार्यन्तिकता आयत्त की है। प्रस्तुत 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' की सृष्टि द्वारा तो त्रिदेव की भारतीय अवधारणा के यथाकांक्षित अध्ययन की इयन्ता ही स्थापित हो गई है। ब्रह्मा और उनकी शक्तियों का मनन-चिन्तन ही प्रस्तुत महार्घ शोध शलाका-कृति का प्रतिपाद्य विषय है।

चौबीस सोपानों में विभक्त इस ग्रन्थ में ब्रह्माजी की प्रभावकता और महत्ता को व्यापक संदर्भ उपलब्ध हुआ है। वैष्णवागम, उपनिषद्, पुराण और तान्त्रिक वाङ्मय को उपजीव्य बनाकर भारतीय प्राच्य एवं प्रतीक विद्या के पारगामी लेखक ने ब्रह्मा के आविर्भाव की कथा के साथ ही उनकी मूर्ति की प्रतीक व्याख्या भी उपन्यस्त की है। इसके अतिरिक्त, विश्व की सृष्टि-प्रक्रिया में ब्रह्मा की महत्त्वपूर्ण भूमिका के उपन्यसन के क्रम में सुधी शोध प्रज्ञ लेखक ने पुराणेतिहास की अतिशय गम्भीर विवेचना की है एवं अवतारवाद के परिप्रेक्ष्य में भगवान् ब्रह्मा की सृष्टि लीलाओं को भी अनेक अभिनव आयाम प्रदान किये हैं। अतः प्रसंगवश महाप्रज्ञ लेखक ने भक्ति-आन्दोलन, कृष्ण काव्य, 'तमिल-प्रबन्धम्' आदि का भारतीय दार्शनिक चिन्तन के परिवेश में, समेकित तथा तुलनात्मक अध्ययन बड़ी विलक्षणता के साथ उपस्थापित किया है।

कुल मिलाकर भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन एवं लौकिक जीवन में ब्रह्मा की विस्मयकारी विभुता को विपुल फलक पर समुद्भावित करने वाला प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रकाशित हुआ है। साधना और उपासना के क्षेत्र में कोशशिला की संस्थापिका प्रस्तुत महत्कृति मनस्वी लेखक के विलक्षण तन्त्र-वैदुष्य एवं प्रकाण्ड कर्मकाण्ड-पाण्डित्य की समुद्घोषिका है। सम्पूर्ण साहित्य-संसार अद्यावधि अनास्वादित विषय को सर्वजन आस्वाद्य बनाकर सुलभ करने वाले पण्डित शर्मा शास्त्री की सारस्वत अधमर्णता सहज की स्वीकार करेगा, इसमें सन्देह नहीं। शत-शत बधाई।

दिनांक २६-१०-८० प्रोफेसर श्रीरंजन सूरिदेव

**

॥ ॐ ॥

महता शिखरचन्द्र कोचर साहित्यशिरोमणि, साहित्याचार्य बी. ए., एल.एल. बी., एफ. एस. आर. आई. अवकाश प्राप्त डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेसन्स जज (जिला एवं सत्र न्यायाधीश), बीकानेर (राजस्थान)

प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' के विद्वान् लेखक पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने 'शिव-तत्त्व-दर्शन', 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' एवं 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' नामक

बृहत्काय ग्रन्थ-रत्नों का प्रणयन कर राष्ट्र के शीर्षस्थ धार्मिक ग्रन्थ-प्रणेताओं की पंक्ति में अपना अप्रतिम एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मा के विषय में केवल जनसाधारण ही नहीं; अपितु अनेक गणमान्य विद्वानों का ज्ञान भी नितान्त अपूर्ण है। मेरे विचार में इसका कारण यही है कि त्रिदेव में से अवशिष्ट दो देवों, अर्थात् विष्णु तथा महेश के सम्बन्ध में जितनी साहित्य सामग्री उपलब्ध है, उसका स्वल्पांश ही ब्रह्मा के सम्बन्ध में है, और देश-विदेश में ब्रह्मा के मन्दिरों की संख्या भी अत्यल्प है। विद्वान् लेखक ने घोर परिश्रमपूर्वक तथा प्रचुर द्रव्य व्यय करके एतद्विषयक अनेक स्थानों की यात्राएँ की हैं तथा तत्सम्बन्धी दुर्ज्ञेय दुर्लभ साहित्य सामग्री को प्राप्त कर उसका सुचारु रूप से एवं मनोयोगपूर्वक अध्ययन, अनुशीलन एवं विश्लेषण किया है। तत्पश्चात् उन्होंने गहन चिन्तन एवं मननपूर्वक इस ग्रन्थ-रत्न का प्रणयन किया है। उनके इस पुनीत कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। उन्होंने इस ग्रन्थ-रत्न के माध्यम से प्राचीन भारतीय वाङ्मय के आयाम पर समीचीन प्रकाश विकीर्ण किया है, जो अद्यावधि तिमिराच्छन्न एवं विस्मृति के गहन गह्वर में विलुप्त था। परम-पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे लेखक महोदय को दीर्घायु एवं शक्ति प्रदान करें, जिससे वे भविष्य में भी माता भारती के भण्डार को ऐसे ग्रन्थ-रत्नों के द्वारा भरते रहें और अपनी दिग्दिगन्त-व्यापिनी कीर्ति में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करते रहें। मुझे आशा ही नहीं; अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ-रत्न जनता-जनार्दन द्वारा समुचित प्रकार से समादृत होगा और समस्त धर्मप्रेमी, साहित्यसेवी, अनुसंधाभिलाषी महानुभाव इसके पठन-मनन एवं अनुशीलन द्वारा लाभान्वित होकर इसके व्यापक प्रचार एवं प्रसार में पूर्णरूपेण कटिबद्ध होंगे।

दिनांक २८-११-८०   शिखरचन्द्र कोचर

※ ※

॥ श्रीः ॥

डॉ. विद्याधर धस्माना शास्त्री, साहित्याचार्य, एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), एम.ओ.एल., पी-एच.डी., अवकाश प्राप्त अध्यापक गांधी मेमोरियल नेशनल कॉलेज, अम्बाला छावनी की शुभकामना

श्री रामप्रसाद शास्त्री जी ने
स्तुत्य किया है यह महान प्रयास।
जग स्रष्टा का तात्त्विक वर्णन
और लिखा उसका इतिहास।१

हिन्दू संस्कृति का दर्पण है क्या ?
निगमागम का है या सार।
गहरे अध्ययन का है प्रतिफल
सरस्वती का यह कण्ठ हार।२

एक ही तो है वह जो जग का
करे सर्जन त्राण विध्वंस।
ब्रह्मा वैष्णव रौद्र स्वरूप में
व्यक्त होता वह परम हंस।३

चमके ब्रह्मा का तत्त्व दर्शन
पथ को देखें भूले भटके।
बढ़ें वे अन्तिम लक्ष्य की ओर
जगद् रहस्य को स्पष्ट करके।४

दिनांक १६-१२-८० विद्याधर धस्माना

※ ※

।। श्री: ।।

डॉ. रामचरण 'महेन्द्र' एम. ए., पी-एच. डी., प्राचार्य बिरला कॉलेज, भवानी मण्डी (राजस्थान) की सम्मति

आपका 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' अपने पूर्व ग्रन्थों की परम्परा में ब्रह्मा का 'विराट-ज्ञानकोश' है

आपकी धर्म, देव-दर्शन व आध्यात्म के प्रति समर्पित साहित्य साधना अपनी गुणवत्ता व परिणाम में सहज ही वेदव्यास की विराट साधना का स्मरण करा देती है।

ब्रह्मा के युगोचित पहलुओं का सम्पूर्ण विश्लेषण इससे पूर्व इतने सर्वांगीण रूप में कहीं देखने को प्राप्त नहीं होता। गीता प्रेस, गोरखपुर के बाद आपके साहित्य ने भारतीय देव-दर्शन, धर्म के अछूते प्रकरणों को इतनी निष्ठा व क्षमता से उजागर किया है।

ब्रह्मा सृष्टि का शाश्वत तत्त्व है। इसे मानव मेधा में इतनी सहजता व सरलता के साथ आप जैसा तपोनिष्ठ महासाधक ही उड़ेल सकता है। आपको मेरे अन्तकरण से बधाई व शुभकामना। आशा है आपकी लेखनी अनवरत भारतीय धर्म देव-दर्शन का इतिहास प्रत्यक्ष करने में वेदव्यासवत् साधना रत रहेगी।

दिनांक १०-१-८१ डॉ. रामचरण 'महेन्द्र'

※ ※

।। श्री: ।।

विद्यावाचस्पति, वेदश्रमी, जीवानान्द 'आनन्द' शास्त्री, सिद्धान्तालङ्कार, साहित्यभूषण, कुलसचिव राजस्थान ब्रह्मचर्याश्रम, रतनगढ़ (राजस्थान) अध्यक्ष जनपदीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन

श्रीयुत् पण्डित रामप्रसाद जी शास्त्री

आदरणीय

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक ग्रन्थ की परिचय पत्रिका का अवलोकन किया,

हार्दिक प्रसन्नता हुई ।

भारतीय वाङ्मय में ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिगुणात्मक शक्तियों को ईश्वरीय सता के रूप में वर्णन किया गया है । इनमें ब्रह्माजी का प्रथम स्थान है और सृष्टि के सर्जक यही माने गये हैं । इस विश्व प्रपञ्च को साकार रूप में प्रदर्शित करने वाले एक मात्र ब्रह्मा ही हैं । इनका वर्णन एवं गुणगान चारों वेद, अठारह पुराण, उपनिषद्, रामायण और महाभारत आदि में स्थान-स्थान पर आया है । ये विधाता भी कहे गये हैं । देव, दानवों एवं मनुष्यों के सर्वोच्च न्यायाधीश भी यही हैं । पृथ्वी पर जब पापाचार बढ़ जाते हैं तब पृथ्वी भी गो का रूप धारण कर ब्रह्माजी के पास पुकार करती है । यज्ञादि शुभ अनुष्ठानों की सम्पन्नता भी ब्रह्माजी द्वारा ही होती है । इसलिये ब्रह्मा ईश्वरीय शक्ति का सर्वोच्च स्वरूप है ।

आपने शिव, शक्ति और विष्णु तत्त्व नामक ग्रन्थों का प्रणयन करके एक महान यज्ञ कर्म किया है । अब ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन का निर्माण करके भारतीय धर्म, संस्कृति को महान् नई दिशा प्रदान कर महदुपकार किया है । आपके इस सद् प्रयास की प्रशंसा एवं अभिनन्दन करते हैं । आपने जिस उत्साह और लगन से इन प्रमाणित ग्रन्थों का प्रणयन किया है । आपकी विद्वत्ता पर हम आश्चर्य मुग्ध हैं । शतं जीवेम शरद: शतात् की उक्त वैदिक ऋचानुसार आप अपने इस क्रियाशील जीवन को सार्थक बनाते हुए धार्मिक पथ-प्रदर्शन करते रहें, यही शुभकामना करते हैं ।

दिनांक ३०-१०-८० जीवानन्द 'आनन्द'

❊ ❊

ॐ परमात्मने नम:

पण्डित नरनाथ झा शास्त्री, अध्यक्ष एवं प्रधानाचार्य ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम चूरु (राजस्थान)

अनन्य सामान्य सौजन्य शोभिनो विद्वन्मूर्धन्या सादरभरं हरिस्मरण पूर्वकम् अभिवादनम् ।

गायत्री माता के मन्त्र के चौबीस अक्षरों पर आधारित चौबीस सोपानों में रचित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय को ध्यान पूर्वक पढ़ा ।

अनन्य सम्पाद्य ग्रन्थ निर्माण विषयक आपके मौलिक वैदुष्य एवं गूढातिगूढ गम्भीर से गम्भीर विषय को सरल शैली और सरस सुबोध भाषा में प्रतिपादन पाटव को देखकर हृदय आनन्द से विह्वल हो गया ।

आप जैसे विद्वदरत्न को पाकर हम भारतीयों के मस्तक गर्व और गौरव से सदैव समुन्नत रहेंगे । इस विषय के जिज्ञासु जनों की जिज्ञासा निवृति इस एक ही ग्रंथ रत्न के गहन अध्ययन, मनन द्वारा हो जायेगी । भगवान् ब्रह्मा विषयक यह ग्रन्थ प्रथम ही साङ्गोपाङ्ग पाठकों की दृष्टि में आयेगा । ब्रह्मा विषयक यह

अपूर्व अभिनव अनूठी रचना है ।

सर्वलोक महेश्वर से मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि परम स्तुत्य आपके इस सत्प्रयास में सफलता के साथ आपको स्वस्थ एवं सुदीर्घ जीवन प्रदान करें ।

अष्टम दशक प्रविष्टस्य प्रवयसो मम सर्वाणीन्द्रियाणि कार्याक्षमणि, शरीरंक्षीणं तदपि स्वास्थविहीनमिति क्षमिष्यन्ते विलम्बमुदात्तावदातं चरित: । सुश्लोक्या: श्रीमन्त: शास्त्री महाभागा: ।

दिनांक २५-१०-८० ई. भवद्वैदुष्य चमत्कृत सो नरनाथस्याभ्यर्थना ।

* *

।। श्रीहरि: ।।

पण्डित नटवरलाल जोशी साहित्याचार्य एम. ए., प्राचार्य श्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत महाविद्यालय, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राजस्थान

वरदा जगदम्बा भगवती शारदा के वरद सुपुत्र ब्राह्मणवंश गौरव पण्डित राम प्रसाद शर्मा शास्त्री के प्रकाश्य ग्रन्थ 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' का संक्षिप्त परिचय पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इस ग्रंथ में परमादरणीय शास्त्री जी ने अत्यन्त परिश्रम कर गागर में सागर भरने का प्रशंसनीय सफल प्रयास किया है । भगवान् ब्रह्मा के सम्बन्ध में जितनी सामग्री इस ग्रन्थ में संकलित की गई है, वह शास्त्रीजी के वार्धक्य में भी युवजनोचित उमंग उत्साह एवं कठिन परिचय को तो द्योतित करती ही है, साथ ही अन्यत्र एक साथ मिलना भी नितान्त दुर्लभ है । यह सरस सामग्री विद्वन्मनोग्राहिणी भी है और भक्ति एवं ज्ञान दोनों के मणि कांचन योग से सर्वजन हृदयावर्जक भी है । भक्ति प्रवण हृदय से माननीय शास्त्री जी ने विविध विषयक शास्त्रों के अनेक ग्रन्थों का सारतत्त्व तथा अंशों को इस ग्रन्थ में सँजोकर भक्ति रस रसिक सहृदयों, भावुकभक्तों भारतीय संस्कृति के समुपासक तत्त्वज्ञ विद्वन्मूर्धन्यों तथा भारतीय संस्कृति के जिज्ञासुओं का एक साथ ही उपकार किया है । 'शिव-तत्त्व-दर्शन', 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' तथा 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' की भांति यह ग्रन्थ-रत्न भी सभी के लिए समादरणीय एवं संग्रहणीय होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है । मैं अकारण-करुणावरुणालया वत्सल्यामयी पराम्बा भगवती श्री त्रिपुरसुन्दरी से परमादरणीय शर्मा जी के यशस्वी एवं स्वस्थ दीर्घजीवन के लिए हृदय से प्रार्थना करता हूँ ।

दिनांक १६-३-८१ नटवरलाल जोशी

* *

॥ श्रीः ॥

डॉ. गिरधारी शर्मा एम.एस. एफ. आर. सी. एस., (कनाड़ा), एफ. ए. सी. एस., एम.एस., (कार्डियो वे स्कुलर सर्जरी), एफ. ए. सी. सी., एफ. सी. सी. पी., एफ. आई. सी. ए., एफ. आई. सी. एस., थोरेसिक एण्ड कार्डियोवेस्कुर सर्जन, हृदय शल्य चिकित्सक

बम्बई अस्पताल

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन एक अनुपमेय अभिनय ग्रन्थ'

भारतीय संस्कृति तथा जीवन दर्शन में लोकपितामह का स्थान व सम्बन्ध अत्यन्त ही महान्, स्नेहपूर्ण तथा आदरणीय माना गया है। क्यों कि लोक पितामह ब्रह्माजी तथा महाभारत के भीष्म पितामह भारतीय संस्कृति व धर्म साहित्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद्, रामायण, महाभारतादि इतिहास तथा पुराणोपपुराण तथा योग-वासिष्ठादि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लोकपितामह, लोक स्रष्टा स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी के विषय में 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक सुन्दर तथा लोकोपयोगी ग्रन्थ प्रणयन कर सनातन धर्म प्रेमी जनता की महान् सेवा की है। आशा ही नहीं मुझे दृढ़ विश्वास है कि धर्मानुरागी साहित्य सेवी सज्जन इस ग्रन्थ को 'शिव-शक्ति-विष्णु-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थों की भाँति अपनायेंगे।

कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायां ऋषि सत्तमाः।
द्वापरे भगवान् व्यासः कलावत्र भवाम्यहं॥ (भगवान् शङ्कराचार्य)
अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः॥
युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसापूर्वं स्वयं ज्ञातं स्वयम्भुवा॥ (महाभारत शान्तिपर्व)

प्रत्येक युग में पितामह ब्रह्माजी ही अपनी अनादिनिधन वेदवाणी से इस संसार को आरम्भ करते हैं। और इसी पुराणेतिहास सहित वेदवाणी को युग के अन्त में अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् ऋषियों को तपस्या उभय पुनः प्राप्त करने की तपस्या उभय पुनः प्राप्त करने की अनुमति देते है। "पुराणं सर्व शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्" श्रुतियों की भांति पुराणों की स्मृतियों के भी वे ही स्रष्टा हैं। किम्बहुना वैदिक धर्म के वे ही पितामह व वे ही पोषक हैं। यज्ञ, दान, स्वाध्याय, तप, सत्य, ब्रह्मवर्चस्व इन्हीं की कृपा से मानव जाति को प्राप्त हुए हैं।

मैं पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री की विद्वद्वरेण्यता तथा लोकोत्तर धर्मानुराग के लिये मुक्तकण्ठ से अभ्यर्थना करता हूँ। और प्रार्थना करता हूँ कि उनके द्वारा निर्मित ग्रन्थों का सब सज्जन अध्ययन एवं अनुशीलन करें।

दिनांक १-१-८१

डॉ. गिरिधारी शर्मा
हृदय शल्य चिकित्सक, बम्बई अस्पताल

॥ श्रीः ॥

सूरजमल गर्ग बी. ए., एल.एल. बी., साहित्यरत्न, साहित्यालंकार भूतपूर्व एडवोकेट जनरल, मध्य प्रदेश शासन, अधुना एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया

पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री द्वारा विरचित शिव-तत्त्व-दर्शन, शक्ति-तत्त्व-दर्शन तथा विष्णु-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थों को मैंने पढ़ा है तथा उनसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। अब आपकी लेखनी द्वारा प्रणीत चतुर्थ ग्रन्थ ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। भारतीय संस्कृति में ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन त्रिदेवों का अत्यन्त महत्त्व है; किन्तु ब्रह्मा के सम्बन्ध में तो अब तक कोई पुस्तक मेरे देखने में आई ही नहीं है। ब्रह्मा अथवा उनके तत्त्व-दर्शन पर शास्त्र सम्मत उत्तम पुस्तक का अभाव सदैव खटकता ही रहा है। आशा है अब इस ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन के प्रकाशित होने के पश्चात् इस अभाव की पूर्ति हो सकेगी। गायत्री के विषय में तो अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। तथापि ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ में सावित्री-गायत्री के सम्बन्ध में शास्त्र सम्मत गरिमायुक्त विवेचन होने से पुस्तक की उपादेयता में ही वृद्धि नहीं होगी उत्तम शास्त्रोक्त गंभीर ज्ञान का परिचय भी प्राप्त हो सकेगा।

मैं शर्मा शास्त्रीजी के प्रयत्नों की सराहना करते हुए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको स्वस्थ दीर्घायु प्रदान करे जिससे आप इसी प्रकार हिन्दू धर्म भारतीय संस्कृति की अनवरत सेवा करते रहें।

दिनांक १२-२-८१ सूरजमल गर्ग

* *

॥ श्रीः ॥

डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली ज्योतिषाचार्य, एम. ए., पी-एच. डी., जोधपुर (राजस्थान) की सम्मति

प्रिय शास्त्री जी,

स्नेहपूर्ण अभिवादन।

वर्तमान समय में आपने वेद, उपनिषद्, पुराण, धर्मशास्त्रादि के सहस्रों ग्रन्थों के सारतत्त्वों को ग्रहण कर मूल ग्रन्थों के प्रमाण सन्दर्भ पुष्टित 'शिव-तत्त्व-दर्शन', 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' तथा 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' नामक बृहत्काय ग्रन्थों का निर्माण कर प्रकाशित कराये हैं। वह वास्तव में आश्चर्यजनक, प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। वास्तव में ही इन ग्रन्थों में जो सामग्री आपने दी है, वह अत्यन्त मौलिक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ प्रत्येक गृहस्थ के लिए उपयोगी हैं। यह ग्रन्थ हमारी पूजा-कक्ष में रखे हैं और इनका नियमित पाठ होता है।

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक ग्रन्थ के संक्षिप्त परिचय को मैंने पढ़ा है। इस

ग्रन्थ की वर्तमान युग में विशेष आवश्यकता है। यह प्रयास तो आपके लिये अत्यन्त ही अनुकूल रहेगा और आने वाली पीढ़ी अनेक शताब्दियों तक आपकी शास्त्र दीक्षितता का प्रकाश प्राप्त करती हुई इस कार्य के लिए सर्वदा आपकी ऋणी रहेगी।

दिनांक १ सितम्बर ८० नारायणदत्त श्रीमाली

* *

॥ श्रीः ॥

ज्योतिषशास्त्रमार्तण्ड, खगोलशास्त्रदिवाकर, ज्योतिषशास्त्रभास्कर, सिद्धान्तज्योतिषरत्न, विद्यारत्न, सिद्धान्तज्योतिषाचार्य, व्याकरण शास्त्री, काव्यतीर्थ, ज्योतिषशास्त्रवाचस्पति, ज्योतिषचक्रवर्ती. आचार्य, डॉ. हिम्मतराम जानी (याज्ञिक) वाचस्पति पञ्चांगकर्ता, ज्योतिष तथा तन्त्रशास्त्रीय अनेक ग्रन्थ लेखक, डाईरेक्टर-साइन्स एण्ड टेक्नोलोजी इन इण्डोखोंजी वेधशाला, अहमदाबाद (गुजरात) की सम्मति

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' अपूर्व एवं अनुपम ग्रन्थ

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' नामक ग्रन्थ का संक्षिप्त विवरण पढकर अतीव आनन्द प्राप्त हुआ। प्राच्यशास्त्रनिष्णात पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने कठिन परिश्रम द्वारा महामूल्यवान् यह ग्रन्थ सैकड़ों प्रमाण सन्दर्भों से वेष्टित निर्माण कर धर्म जिज्ञासु, धर्मान्वेषकों, हिन्दू धर्म-संस्कृति में रुचि रखने वालों को अपूर्व अनुपम भेंट करके महदुपकार किया है। पाश्चात्य-संस्कृति से प्रभावित जनमानस ने धर्म जिज्ञासु प्रवृत्ति को भुला दिया है तथापि आद्य शंकराचार्य भगवान् के उपदेशानुसार गणेश, सूर्य, विभिन्न स्वरूपों में शक्ति विष्णु, महेश, हनुमान आदि के देवालय तथा उपासना अब भी विद्यमान हैं; किन्तु ब्रह्माजी को तो प्रायः सर्वदा के लिए ही भुलाया जा रहा हैं। अतः आवश्यक था कि त्रिदेवों में प्रमुख देव ब्रह्मा के विषय में भी प्राच्य शास्त्रों के परिवेश में कोई ग्रन्थ निर्माण हो, जिससे इसका समाधान हो सके। इस महायज्ञ को शर्मा शास्त्री जी ने पूर्ण किया है। भारतीय संस्कृति में रुचि रखने वाले सभी शास्त्री जी के इस महदुपकार द्वारा ऋणी रहेंगे। ग्रन्थ-निर्माणकर्ता की जो भी प्रशंसा की जाय वह कम ही रहेगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शास्त्री जी द्वारा पूर्वनिर्मित ग्रन्थों से अधिक यह ग्रन्थ समादर किया जायेगा।

दिनांक ७-१-८१ हिम्मतराम जानी (याज्ञिक)

॥ श्रीः ॥

आयुर्वेदवाचस्पति, विद्यावारिधि, वैद्य विश्वनाथ जोशी, साहित्य-व्याकरण-आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न, व्याकरण-काव्यतीर्थ, तुमसर (महाराष्ट्र)

शुभकामना पञ्चकम्

विद्वत्सु प्रतिभाधनी शिवशिवातत्त्वस्य संदर्शनः
ग्रन्थौ यौ विरचय्य मानमतुलं लेभे विदां संसदि ।
विष्णोस्तत्त्वनिदर्शनं च जगति प्राकाश्य लोकोत्तरं
तत्त्वं ब्रह्मण आविरेष कुरुते रामप्रसादः सुधीः ॥१
ग्रन्थेऽस्मिञ्चरितं विधातुरखिलं नानावतारादिकं
सद्ग्रन्थोद्धरणैः पुराणवचनैर्विस्तारतोर्पषितम् ।
येनास्यागम सिन्ध्वगाह पटुता विज्ञान्तरे दुर्लभा
प्राकट्यं प्रतियाति सम्प्रतियुगे मन्येऽद्वितीयो ह्यसौ ॥२
लोकानामुपकारकारणतया गीर्वाणवाणी प्रियो
हिन्द्यामेव निबन्धमालिखितवान् मित्रैस्तथा प्रेरितः ।
एषा सामयिकी कृतिः सुकृतिभिः सर्वत्र संस्तूयते
धन्यो रामप्रसाद शास्त्रि सुमतिर्वाग्देवतोपासकः ॥३
रामप्रसादरचिता सुनिबन्ध माला
चेतो निसर्ग मधुरं विदुषां हरन्ती ।
कण्ठे सतां परगुण ग्रहणोत्सुकानां
सत् कांतिमौक्तिकलतेव सदा विभातु ॥४
यावद्वैदिक भारती भुवि सतामन्तस्तलस्पर्शिनी
यावच्चन्द्रमरीचिरंचति भुवो भालं मनोहारिणी ।
यावद् देवगृहेषु विष्णुप्रतिमा भक्तान्तराकर्षिणी
तावद् रामप्रसादशास्त्रिरचनास्ताद् धर्मसंवर्धिनी ॥५

दिनांक ६-१२-८० प्रस्तोता—वैद्य विश्वनाथ जोशी

* *

॥ श्रीः ॥

डॉ. कल्याणमल लोढ़ा आचार्य हिन्दी-विभाग, कलकत्ता विश्व-विद्यालय, कलकत्ता

आदरणीय पण्डित राम प्रसाद शर्मा शास्त्री जी,

मैंने आपके विष्णु-तत्त्व-दर्शन तथा शिव-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ पढ़े । अब आपने ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन लिखा है । इस प्रकार आपकी त्रिदेव परिक्रमा पूर्ण हो जायेगी । मैंने ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन का संक्षिप्त परिचय पढ़ा । इसमें आपने अनेक अछूते और

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्षों का उत्तम उद्घाटन किया है । आपने सावित्री-गायत्री तथा सरस्वती महाशक्तियों को भी उनके वाहनों सहित संगठित कर श्रेष्ठ व्याख्या प्रस्तुत की है । सम्पूर्ण परिचय आपके प्रौढ़ पाण्डित्य का पुष्ट प्रमाण है । मेरी इच्छा है कि आपका कृतित्व इसी प्रकार श्रीवृद्ध होता रहे, जिससे आप हमारे गौरवमय आध्यात्म और धार्मिक जगत् की मार्मिक व गूढ अभिव्यंजना कर सकें । आप शतायु हों । आपकी इस मर्मज्ञ कठिन साधना के प्रति मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ ।

दिनांक २४ जनवरी १९८१ आपका

कल्याणमल लोढा

❊ ❊

।। श्री ।।

डॉ. सदाशिव एम. डांगे, एम.ए., पी-एच. डी., डी. लिट्., आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत-विभाग; बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई

पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री सविन्नय सप्रेम प्रणाम ।

आपके द्वारा विनिर्मित पाण्डित्य पूर्ण सैकडों बृहत्काय ग्रन्थों के मूल प्रमाण संदर्भों द्वारा पुष्टित विष्णु-तत्त्व-दर्शन को देखा । इसमें भगवान् विष्णु सम्बन्धित कोई विषय शेष नहीं रहा है । वस्तुतः यह अनुपमेय कृति है ।

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' की संक्षिप्त परिचय पत्रिका पढ़ने से ही ज्ञात होता है, यह ग्रन्थ भी 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' के समान ही सुन्दर साङ्गोपाङ्ग विद्वत्तापूर्ण होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है । इसके सब सोपान सुव्यवस्थित शास्त्रसंगत तथा सुसंगठित निर्माण किए गये हैं । दिनांक २३ दिसम्बर ८०

सदाशिव ए. डांगे

❊ ❊

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद दूबे एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्., गणित-फलित ज्योतिषसाहित्याचार्य, स्नातकोत्तर संस्कृत-विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (बिहार)

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री लेखक की प्रयास साध्य कृति है । इसका आविष्करण विशेष रूप से स्मृति और दर्शन के समन्वय का एक नया आयाम है । ब्रह्मा के विभिन्न विग्रहवान् रूपों को वेद, वैदिक साहित्य, वेदांग और स्मृति-पुराणों से उद्धृत और सम्पुट करते हुए बहुमुखी शक्तियों से उन्हें सम्पृक्तता की शृंखला के तार्किक धरातल पर रखकर ग्रन्थकार ने प्रामाणिकता में कहीं संशयास्पदता नहीं रहने दी है । इसी क्रम में सावित्री-गायत्री आदि का विश्लेषण और चिन्तन संस्कृत साहित्य में उन शाश्वत समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान देता है, जिसका उत्तर अभी तक अंधविश्वास द्वारा दिया जाता रहा है । हिन्दू-संस्कार प्राप्त यज्ञोपवीत, शिखा आदि के प्रमाण, व्यवहार और प्रयोजन का सांगोपांग वर्णन ग्रन्थ

की मौलिक खोज है । यह अतिशयोक्ति नहीं कि ग्रन्थ अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र और अनूठा है । ग्रन्थ और ग्रन्थकार का रूप संस्कृत के लिए गौरव का विषय है ।

लेखक की पूर्व प्रकाशित कृति 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' एवं 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' दृष्टिपथ पर आने से ज्ञात हुआ, वेदादि के अन्वेषण से सूचना की संपुष्टि आधुनिकतावाद में रंगे रंगीनदृष्टि के लिए खासा जवाब है । तथ्य में प्रामाणिकता और तार्किकता लेखक का वैशिष्टय ज्ञान पुंज है ।

हार्दिक मंगल भावनाओं के साथ ।

दिनांक १९-१-८१ राजेन्द्रप्रसाद दूबे

**

॥ श्रीः ॥

पण्डित रामनारायण त्रिपाठी, व्याकरण-वेदान्त-धर्मशास्त्राचार्य, ऐम. ए., अध्यक्ष प्राच्य संस्कृत-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ की शुभकामना

'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन

ब्रह्मतत्त्वाभिधानस्य दर्शनस्य मयाऽधुना ।
संक्षिप्तं टङ्कितं पत्रं लब्धं परिचयात्मकम् ॥१
विदुषा बहुभिर्यत्नै र्विन्यस्तान् शास्त्रसम्मतान् ।
विलोक्य विषयान् सर्वान् मोदमापन्मनो मम ॥२
लसितैर्वेधसो वृत्तैः सोपानैर्महितैर्हितैः ।
चतुर्विंशतिसंख्याकैर्निर्मितं ग्रन्थमन्दिरम् ॥३
ब्रह्मोत्पत्तिकथाभाभिः सोपाने प्रथमेऽञ्चिते ।
विधेर्मूर्तिं प्रतीकं च न्यस्य मानमुदाहृतम् ॥४
द्वितीये विविधा सृष्ठिर्युगादिसमयावधिः ।
वराहकृतभूद्धारो विन्यस्ता मानसंयुताः ॥५
वैशद्येन तृतीयेस्मिन् ब्रह्मतत्त्वाख्यदर्शनम् ।
विततं भक्तबोधार्थं रामप्रसाद शर्मणा ॥६
ब्रह्मणो नाम्नि भेदेपि सृष्टौ नो प्रक्रियाभिदा ।
श्रुत्यादिसम्मतं तत्त्वमेकमेव हि तुर्यके ॥७
चतुर्मुखावताराणां कथा राजति पञ्चमे ।
षष्ठे विखनसो गाथा जाम्बवतस्तु सप्तमे ॥८
प्राद्युम्नेरष्टमे वृत्तिः पूर्णबोधस्य तत्परे ।
वरदाने विधेः शक्तिर्विन्यस्ता दशमे बुधा ॥९
हिरण्यकशिपोस्तुष्टच्यै सानुजरावणस्य च ।
वरप्रदानं कंसस्य सोपानेष्वाहितं क्रमात् ॥१०

देवर्षेः शापतो लुप्ता विरञ्चेरर्चना भवे ।
चतुर्दशे समाख्याता कथाऽसौ लोकहेतवे ॥११
निचितं पञ्चदशेयत्नै र्माहात्म्यं पौठकरं वरम् ।
षोडशे शारदासम्यक् स्थापिता धीमता परा ॥१२
सावित्र्या ब्रह्मगायत्र्या अन्वाख्यानं च पूजनम् ।
ध्यानं सप्तदशे मूर्तेर्विधानं चारु चर्चितम् ॥१३
तासामष्टादशे यानमुक्तमेकोनविंशके ।
ब्रह्मसूत्रं ततो विंशे तन्मानादि प्रकीर्तितम् ॥१४
एकविंशे तु हिन्दूनां संस्कारः कर्मपूजनम् ।
द्वाविंशे हंसवाहिन्याः सपर्या समुदाहृता ॥१५
त्रयोविंशेऽर्चनं शक्त्याश्चतुर्विंशे समापनम् ।
अन्विष्यापादितं सर्वं कर्मनिष्ठेन सूरिणा ॥१६
वैदिकधर्मरक्षायै भक्तनैष्ठिकहेतवे ।
बुधा रामप्रसादेन ग्रन्थानैके विनिर्मिताः ॥१७
तेषामन्यतमो ग्रन्थो ब्रह्मतत्त्वाभिसंज्ञकः ।
विधातुर्वृत्तमाभास्य भविष्यत्युपकारकः ॥१८
अनुसन्धातृजिज्ञासुच्छात्रोपासकधीमताम् ।
मन्ये ग्रन्थोऽयमामोदं हृदये संविधास्यति ॥१९
विद्वद्वर्यः सुकर्मा श्रुतिपथनिरतः श्रील रामप्रसादः,
कल्याणार्थं जनानां निगमनिगदितान् धर्मकर्मादिमार्गान् ।
कृत्यैरेवं प्रशस्तैः सततमिह भवे भूरियत्नैः प्रकाश्य,
ख्यातिं यायात् समीहे बुधजननिवहे रामनारायणोऽहम् ॥२०

शम्

* *

॥ श्रीः ॥

डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी शास्त्री, एम.ए. (हिन्दी-संस्कृत), पी-एच. डी. उपाचार्य (रीडर) संस्कृत-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

श्री पण्डित राम प्रसाद शर्मा शास्त्री जी,

महोदय,

आपके द्वारा प्रेषित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' की संक्षिप्त परिचय-सूची उपलब्ध हुई। ब्रह्माजी के सम्बन्ध में आज तक कोई पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई। आपका एतत्सम्बन्धी प्रथम प्रयास, रोचक एवं अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है। आपके पिछले ग्रन्थों द्वारा जो शब्द ब्रह्म की अर्चना प्रारम्भ हुई है, यह ग्रन्थ उसका नीराजन स्थानीय है। प्रस्तुत ग्रन्थ में ब्रह्माजी से सम्बद्ध कोई विषय छोड़ा नहीं गया, यह

देखकर चित्त हर्षातिरेक से भर गया। हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार करें।

ऋग्वेद, मण्डल २, सूक्त १, मन्त्र ३ में अग्नि के विषय में कहा गया है—

'त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते।'

यह अग्नि ही आदि शरीरी पुरुष ब्रह्मा हैं—

'स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदि कर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत॥

(मार्कण्डेय पुरा. अध्याय. ४४)

पद्मसम्भव ब्रह्मा को आदि ब्रह्मा कहा जाता है। कालिदास ने रघुवंश में लिखा है—

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते॥

(१३।६)

महत्तत्त्व का अधिष्ठाता, ब्रह्मा कहलाता है—

'मनो मतिर्महान् ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।'

ब्रह्मसूत्र (१।४।१) में शंकराचार्य द्वारा उद्धृत वायुपुराण (४।२४,२७; २८।१०२,२१) महाभारत, शान्तिपर्व (३१७।७) मनुटीकासंग्रह-नन्दन—(अध्याय १। श्लोक ११) सांख्यकारिका की युक्तिदीपिका टीका (का. २२)।

अस्तु। आप इस वाङ्मयी पूजा में सतत निरत रहें, यही भगवान् से प्रार्थना है। दिनाँक १९-१-८१ शिवशङ्कर अवस्थी

* *

॥ श्रीः ॥

डॉ. मोतीलाल गुप्त, एम. ए., बी. टी., पी-एच. डी; डी. लिट्. डी. पी-एच. (लंदन), यू. जी. सी. शोध-प्राध्यापक, आगरा विश्वविद्यालयान्तर्गत मानदशोधनिदेशक श्री वृन्दावनशोध-संस्थान

आदरणीय शास्त्रीजी,

ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन का विवरण अवलोकन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। प्रथम शिव, द्वितीय शक्ति, तृतीय विष्णु तदुपरान्त विश्व निर्माता ब्रह्मा का तत्त्व-दर्शन निश्चय ही परम श्लाघ्य है। जिसमें गायत्री माँ के चौबीस मन्त्राक्षरों पर आधारित चौबीस सोपान निर्माण कर ब्रह्मा एवं उनकी शक्ति तथा वाहनों सहित सम्पूर्ण सामग्री का समावेश करके इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। इसकी रूपरेखा की विवरण पत्रिका के देखने से पता चलता है कि इसकी सामग्री संग्रह में आपने कितना प्रौढ़ पाण्डित्यपूर्ण कठोर परिश्रम किया है। ग्रन्थ का निर्माण हिन्दी भाषा में तथा प्रमाण मंत्र, सूत्र, श्लोक मूल प्राच्यशास्त्रों के पूर्ण

संदर्भ भाषार्थ सहित दर्शाने से ग्रन्थ सर्वसाधारण हिन्दी भाषी से शास्त्र दीक्षित विद्वानों तक लिये समान उपयोगी सिद्ध होगा । मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों के समान ही यह ग्रन्थ भी समादर किया जायेगा । इस स्तुत्य प्रयास के प्रति आपका वंदन करते हुए प्रकाशन की कामना करता हूँ । अभिवादन सहित । दिनांक ६ जनवरी ८१　　मोतीलाल गुप्त

* *

॥ श्री ॥

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी एम. ए., पी-एच., डी. लिट्., साहित्याचार्य आचार्य-नवीन-पीठ, अध्यक्ष-हिन्दी प्राध्ययन केन्द्र, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

महामनीषि मान्य शर्मा शास्त्री जी

आपकी लेखनी द्वारा विरचित 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' के संक्षिप्त परिचय को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । इस पुस्तक में ब्रह्मा एवं उनकी शक्तियों के विषय में महत्त्वपूर्ण एवम् गंभीर मीमांसा लिखी है । ब्रह्मा शक्ति गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों के आधार पर ग्रन्थ चौबीस सोपानों में पूर्ण किया गया है । यह संख्या रहस्यात्मक और संकेत गर्भ है । इसमें भगवान् ब्रह्मा जी के प्रादुर्भाव से लेकर-उनके लोक मांगलिक क्रिया कलापों, विविध अवतारों तथा सुचरितों का प्रसन्न तथा प्राञ्जलभाषा में निरूपण है । सावित्री-गायत्री-सरस्वती ब्रह्मा जी की शक्तियाँ हैं । इन शक्तियों के स्वरूप का विशद निरूपण तथा उनके उपासकों का स्वरूप विवरण ग्रन्थ की उपादेयता में चार चाँद लगा देते हैं ।

विश्वमान्य हिन्दू विचारधारा को विभिन्न ग्रन्थों के प्रणयन से हस्तावलम्ब आप प्रदान कर रहे हैं । आपकी गरिमा युक्त सारस्वत साधना का यह आदर्श रूप है । मैं इस ग्रन्थ के साथ ग्रन्थप्रणेता शर्मा शास्त्री को भी सम्मान देता हूँ और आशा करता हूँ कि आपकी यह तपःपूत साधना निरन्तर जगमगाती रहेगी ।

दिनांक २६-११-८०　　राममूर्ति त्रिपाठी

* *

॥ श्री ॥

डॉ. कृष्णदत्त वाजपेयी सेवानिवृत्त टैगोर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, पूर्व अध्यक्ष भारतीय मुद्राशास्त्र परिषद्, अध्यक्ष भारतीय पुरालेख परिषद्, विजिटिंग प्रोफेसर सागर विश्वविद्यालय (मध्य प्रदेश)

पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री वेद, धर्मशास्त्र और भारतीय दर्शन के निष्णात भारतविख्यात विद्वान् हैं । अनेक वर्षों से निरन्तर प्राचीन धर्म साहित्य

के अध्ययन चिन्तन में रत हैं । 'शिव-तत्त्व-दर्शन', 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन', और विष्णु-तत्त्व-दर्शन' नामक बृहत्काय अनुपमेय ग्रन्थों की रचना कर प्रकाशित कराये हैं। जिनकी विद्वत जगत् में अत्यन्त सराहना हुई है। अब आपने चतुर्थ ग्रन्थ ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन का निर्माण किया है। ब्रह्माजी के नाम से अब तक कोई ग्रन्थ दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। यह नितान्त ही अपूर्व अभिनव ग्रन्थ है। ब्रह्मा जी के विषय में स्वल्प ही साहित्य प्राप्त होता है। अतः यह ग्रन्थ पूर्व ग्रन्थों के समक्ष छोटा ही होगा, तथापि ब्रह्मा-तत्त्व विषय में उत्तम प्रमाणिक विश्लेषण प्रतिपादन किया गया है और मूलाधर प्राचीन साहित्य ही है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन पश्चात् शर्मा शास्त्री जी की त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की उनकी शक्तियों सहित तत्त्व-दर्शन विषयक वाङ्मयी पूजा पूर्ण होगी। शर्मा शास्त्री का यह प्रयास निस्संदेह प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। आशा ही नहीं मेरा पूर्ण विश्वास है कि पूर्व ग्रन्थों के भाँति यह भी विद्वत समाज में बेजोड़ प्रमाणित एवं प्रशंसित होगा। मैं शर्मा शास्त्री जी के स्वस्थ एवं दीर्घायु की कामना करता हूँ।

ता. २२-१२-८० कृष्णदत्त वाजपेयी

**

॥ श्री ॥

डॉ. प्रभाकर शास्त्री, अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, राजस्थान विश्व-विद्यालय, जयपुर

'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ की योजना का अवलोकन करने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि रामप्रसाद जी शास्त्री द्वारा किया जाने वाला यह महत्वपूर्ण कार्य शोध के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय होगा।

पौराणिक ग्रन्थों के विशेष अध्येता होने से श्री शास्त्री जी द्वारा प्रस्तूयमान यह कार्य सर्वत्र श्लाघनीय होगा। श्री शास्त्रीजी ने मनोयोग पूर्वक अब तक शिव, शक्ति व विष्णु तत्त्व को प्रकाशित कर महत्वपूर्ण प्रशंसनीय कार्य किया है, जिसे पढ़कर अनेक पाठकों ने ज्ञान व आनन्द लाभ किया है।

शिव, शक्ति व विष्णु तत्त्व के सम्बन्ध में तो सामग्री प्रचुर मात्रा में विख्यात भी है तथा उपलब्ध भी, परन्तु ब्रह्माजी के विषय में लोक में अधिक चर्चा नहीं है। केवल पुष्कर तीर्थ के साथ ब्रह्माजी का नाम जुड़ा है तथा वहीं प्रसिद्ध मन्दिर भी है। इसके अतिरिक्त कहीं भी ब्रह्मा जी का विग्रह भी नहीं मिलता। हाँ कुछ स्तंभों में चतुर्मुख ब्रह्मा का उत्कीर्ण रूप अवश्य मिलता है। शास्त्रीजी द्वारा गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों को प्रतीक मानकर २४ अध्यायों में पूर्ण किये जाने वाले इस महाग्रन्थ में उपयोगी व अलभ्य-दुर्लभ सामग्री का संकलन परमोपयोगी होगा। वास्तव में ब्रह्मा तत्त्व का पौराणिक विवेचन व उसका आधार प्रदर्शित करने से धर्मप्राण जिज्ञासुओं के लिए इस ग्रन्थ का महत्व बढ़ेगा-यह निर्विवाद

विषय है । मैं भी प्रयास कर रहा हूँ कि इस विषय में कुछ खोज सकूं तथा उसका इस ग्रन्थ में समावेश करा सकूं ।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वे श्री शास्त्रीजी को वह शक्ति व सुस्वास्थ्य प्रदान करें, जिससे श्री शास्त्री जी अपने संकल्प को मूर्त रूप प्रदान कर सकें । मैं इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की पूर्ति हेतु अपनी मंगलकामनायें प्रेषित कर रहा हूँ ।

दिनांक ७-३-८१　　डॉ. प्रभाकर शास्त्री

**

।। श्री ।।

डॉ. शिवसागर त्रिपाठी, महासचिव, राजस्थान संस्कृत परिषद्, प्राध्यापक संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

तत्त्व-दर्शन-परम्परा में 'शिव', 'शक्ति' और 'विष्णु' के पश्चात् अब 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' का प्रणयन पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने किया है । यह असीम हर्ष का विषय है । पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों की शैली और प्रस्तुत ग्रन्थ की संक्षिप्ति को देखने से यह स्पष्ट है पाठकों को इतस्ततः प्रकीर्ण बहुमूल्य सामग्री मौलिक और गवेषणात्मक संगति के साथ, चौबीस सोपानों में विभक्त इस रचना में एकत्र प्राप्त हो सकेगी । भारतीय वाङ्मय में त्रिदेवत्व की कल्पना अतिप्राचीन है । इसमें प्रथमत्वेन स्मृत, सृष्टिसर्जक ब्रह्मा की उपासना अन्य देवों की अपेक्षा कम प्रचलित रही यह आश्चर्य है । इस शङ्का का समाधान इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है । ब्रह्मा के प्रादुर्भाव और उसके क्रमिक विकास पर दृष्टि निक्षेप करते हुए सृष्टि-प्रक्रिया में उनके अवदान की विवेचना की गई है । ब्रह्माजी के अवतारों और राक्षसों को दिये गए वरदानों का उल्लेख करते हुए उनके मुख्य क्षेत्र पुष्कर का माहात्म्य उनकी ब्रह्म शक्ति सावित्री-गायत्री और वाक् शक्ति सरस्वती का परिचय महत्त्व और पूजाविधि आदि का सप्रमाण सविस्तार वर्णन हुआ है । प्रसंगतः ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीत और शिखा की आवश्यकता तथा महत्ता आदि पर प्रकाश डाला गया है । इस प्रकार ग्रन्थ में शास्त्रीय और व्यावहारिक पक्षों पर अपेक्षित एवं उचित ध्यान दर्शाया गया है । इस स्तुत्य प्रयास और सर्वहितकारिणी सतत सारस्वत साधना के लिए लेखक को अनेकशः साधुवाद ।

निःसन्देह लेखक के प्रथम तीन ग्रन्थ शिव, शक्ति और विष्णु के प्रति भक्ति बढ़ाने वाले तथा भक्तों और जिज्ञासुओं का ज्ञानवर्द्धन करने वाले सिद्ध हुए हैं । उसी प्रकार यह सद्ग्रन्थ भी विद्वज्जन किंवा जन-जन का कण्ठहार बने, ऐसी मेरी कामना है । किमधिकम् ।

शक्ति-त्रिदेव बोद्धारो ग्रन्थस्यास्य च लेखकाः ।
वैद्याः रामप्रसादाख्याः वर्धाप्यन्ते त्रिपाठिना ।।

दिनांक १६-१-८१　　डॉ. शिवसागर त्रिपाठी

* *

।। श्री ।।

डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, प्राध्यापक संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

श्रीमान् शास्त्री जी नमस्कार,

विश्व स्रष्टा ब्रह्मा के विषय में प्रामाणिक निरूपण के साथ आपने उनकी शक्तिभूता सावित्री (गायत्री) तथा सरस्वती का भी विवेचन इस ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ में करके वृहत् शास्त्र ज्ञान का परिचय दिया है। आपके पूर्व विरचित वृहत्-काय ग्रन्थों के समान ही इस ग्रन्थ में भी अनेक शास्त्र प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

भगवान् ब्रह्मा की पूजा के लिये आज एकाध ही मन्दिर दृष्टि में आये हैं किन्तु वेद तथा पुराण एवं परवर्ती साहित्य में उनका महत्त्व बराबर बना रहा है। स्रष्टा के रूप में उनका स्थान ऐकान्तिक है तथा चतुर्मुख के रूप में चतुर्वेदों के आविष्कार के कारण ज्ञान के क्षेत्र में तथा सावित्री (गायत्री) के रूप में ब्रह्मतेज एवं सरस्वती के रूप में शुद्ध विद्याज्ञान के प्रतीक में उनका स्थान अद्वितीय बना रहा है। आपके द्वारा निर्मित ग्रन्थों से धर्मप्रेमी भारतीय जनता एवं जिज्ञासु पाठकों का महान् उपकार हो रहा है। आपकी इस प्रकार की सारस्वत साधना के प्रति मुग्ध होकर भगवान् आशुतोष से सविनय अभ्यर्थना करते हैं कि आप स्वस्थ रहते हुए इस साधना में निरन्तर लगे रहें।

दिनांक ६।१।८० रामचन्द्र द्विवेदी

* *

।। श्री ।।

डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, वरिष्ठ हिन्दी प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

भारतीय मानस ने सृष्टि की मूलभूत, उद्‌भवकारिणी शक्ति को ब्रह्मा के रूप में स्वीकार करके ज्ञानगम्य बनाया है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वर्धमान है वह ब्रह्म या ब्रह्मा है। शक्ति और शक्तिमान् की कल्पना की दृष्टि से ब्रह्मा शक्तिमान् का रूप है और वाक् (सुब्रह्मण्या वाक्) उसकी शक्ति है। आशा है 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ ब्रह्म और सुब्रह्मण्या वाक् के रहस्य को उद्‌घाटित करेगा और साधकों तथा आराधकों के लिए भागवती-साधना के परम्परागत ब्रह्मा-केन्द्रित स्वरूप की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत करेगा।

बद्रीप्रसाद पंचोली

* *

॥ श्री ॥

डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' आचार्य हिन्दी-विभाग, विश्व-विद्यालय, उदयपुर

प्रियवर शास्त्री जी

प्रणाम ।

'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' की रूपरेखा को ध्यान से पढ़ा । आपने बहुत परिश्रम तथा महर्घ विद्वत्तापूर्ण वेद-शास्त्र समन्वित शोधमार्ग अपना रखा है । धार्मिक आध्यात्मिक मौलिक विषय पर ग्रन्थ लेखन कार्य में समय का सदुपयोग श्रम निश्चय ही अपने आप में महायज्ञ है । आपके पूर्वरचित ग्रन्थों तथा ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन की रूप रेखा से स्पष्ट है कि आप एक ऐसे पथ के यात्री हैं । 'चलते चलो, बढ़ते चलो' गाते-गाते सफलता के शिखर प्राप्त होते हैं । भगवान् ब्रह्मा के विषय में कोई पुस्तक और उपासना पद्धति अब तक देखने, सुनने में नहीं आई । इस अभिनव ग्रन्थ 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' से हिन्दू धर्म में रुचि रखने वाले सर्व साधारण से महाविद्वानों तक सभी लाभान्वित होंगे । मैं आपकी प्रौढ़ पाण्डित्यपूर्ण गंभीर ज्ञान गरिमा तथा विलक्षण प्रतिभा को देखकर आश्चर्य मुग्ध हूँ । निश्चय ही आप सम्मान और बधाई के पात्र हैं।

दिनांक १६।१२।८० डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

* *

॥ श्री ॥

आचार्य डॉ. शुकरत्न उपाध्याय, केन्द्रीय विद्यालय, शक्तिनगर. ग्वालियर

परमादरणीय शास्त्री जी

सादर प्रणाम ।

इस सृष्टि, सृष्टि-तत्त्व और सृष्टि की समस्याओं के सम्बन्ध में हिन्दुओं ने जितना गहन चिन्तन किया है, वह आश्चर्य जनक है । हिन्दु शास्त्रों के अनुसार एक ही ब्रह्म-तत्त्व सृष्टि के विकास और व्यवस्था के लिए अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है, उनमें से भगवान ब्रह्मा विश्व के सृजनकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं—'बृंहति वर्द्धते प्रजाय:' । जगत् में ज्ञान के महान् ग्रन्थ वेदों का सर्वप्रथम प्रकाशन उनसे ही हुआ है—

अये ! ब्रह्मन् ! जगन्नाथ ! वेदकर्ता त्वमेव च ।
किं वा वेद प्रणिहितं कर्म किन्तद्विपर्ययम् ॥

(ब्रह्मवैवर्त)

क्यों कि सृष्टि की मूलसत्ता ने सर्वप्रथम उनको ही ज्ञान का उपदेश किया था । किन्तु सर्वसाधारण तथा विद्वान् दोनों के लिये ही ऐसा कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध

नहीं है, जिससे उनके तत्त्व का समग्र वर्णन प्राप्त हो सके। अनेक अनूठे ग्रन्थों के रचयिता स्वनामधन्य श्री पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री वेद, वेदाङ्ग शास्त्र निष्णात् ने इस ग्रन्थ का प्रणयन कर धर्मप्राण, भारतीय-जनता और विश्वमानवता एवं राष्ट्र का महान् उपकार किया है। वे उस प्रकाशस्तम्भ की भाँति है, जिनसे भारत के लाखों संन्यासियों तथा असंख्य कार्यमुक्त लोगों को प्रकाश प्रेरणा तथा मार्गदर्शन मिलेगा कि वे भी अपना मूल्यवान् समय इसी प्रकार भारतीय ज्ञान की खोज और उसके प्रकाशन में व्यय करें, जिससे सम्पूर्ण मनुष्य-जाति धन्य होगी। जिन महानुभाव सज्जनों ने इस कार्य में श्री शास्त्रीजी का किसी भी प्रकार से सहयोग किया है, वे भी अनन्त धन्यवाद के पात्र हैं। उनसे भी प्रार्थना है कि जब तक श्री शास्त्री जी इस पृथ्वी पर हैं, तब तक उनके ज्ञान समुद्र के मन्थन से उत्पन्न रत्न संसार को भेंट कराते रहें, क्यों कि इस प्रकार के वेद शास्त्र सम्पन्न शक्तिशाली विद्वान् अहर्निश घोर परिश्रम करने वाले दृढ़ लगन के धनी महान् ज्ञानशास्त्र निर्माण करने के लिए जीवन समर्पण करने वाले विरले ही मिल पाते हैं। अनन्त शुभ कामनाओं सहित सर्वदा आपका—

दिनांक ६ दिसम्बर ८० डॉ. शुकरत्न उपाध्याय

※ ※

॥ श्री ॥

डॉ. धनवती मिश्र, व्याख्याता, केम्ब्रिज विद्यालय भोपाल (मध्य प्रदेश)

संसार के साक्षात् सत्य का इतिहास हिन्दू धर्म के पुराण शास्त्रों में सृजन और संहार की विविध विस्तृत व्याख्याओं में प्राप्त होता है।

सृष्टि के संहारक परम कल्याण कर्ता शिव और पालक भगवान् विष्णु के तत्त्व-दर्शन के पश्चात् सृष्टा भगवान् ब्रह्मा के तत्त्व-दर्शन में ही ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन परिपूर्ण हो रहा है।

सृजन का यह सत्य शरीर-प्रधान (भौतिकता-प्रधान) हो जाता यदि माता सावित्री-गायत्री के साथ सृष्टि-कर्ता विधाता अर्थात् धी के साथ धाता का संयोग न होता।

त्रिदेव-तत्त्व-दर्शन ही हिन्दू-धर्म-संस्कृति का प्राण-तत्त्व है, किन्तु उपासना के क्षेत्र में वंचित भगवान् ब्रह्मा जन-मानस से कुछ दूर चले गये। उनकी सीमा पुराणों तथा उपनिषदों तक सीमित रह गयी। इस प्रकार अपने सृष्टा के वास्तविक दर्शन से जन-साधारण तो अनभिज्ञ रहा ही विद्वान् भी बचकर निकलता रहा।

ऐसे गूढ़ ही नहीं, निगूढ़ विषय पर दैव-तत्त्व दर्शी लेखक शर्मा शास्त्रीजी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन कर सृष्टि के बाह्य रूप के साथ इसके आन्तरिक सौन्दर्य

के दुर्लभ दर्शन कराये हैं।

इस विषय के विस्तार में जाने की न तो क्षमता ही है, न अधिकार, किन्तु ग्रन्थ रचयिता के विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू-धर्म-तत्त्व-दर्शन के मान सरोवर पर बैठा यह हंस जो मोती लाया है, वे अमूल्य रत्न हैं।

जन-मानस से लुप्त प्राय और उपहासित ब्रह्म-सूत्र तथा शिखा के महत्त्व का विवेचन उसके पुनरुद्धार का स्तुत्य प्रयास है।

अन्त में इतना ही कहूँगी कि धन्य और प्रणम्य ही नहीं, प्रात: स्मरणीय हैं, ऐसे भक्त, शास्त्रदक्ष जिन्होंने इस प्रकार के ग्रन्थों की रचना द्वारा अपनी साधना के सुफल का रसास्वादन सर्व साधारण को सुलभ करा दिया।

आश्चर्य और आह्लाद से अभिभूत जब इन ग्रन्थों की सफलता के विषय में सोचती हूँ तो 'ज्यों गूंगे का गुड़, मन ही मुसक्याय' की स्थिति में हो जाती हूँ, किन्तु तभी भक्त तुलसी का विश्वास बोल उठता है—

भगत हेतु विधि-भवन बिहाई,
सुमिरत सारद धावति आई।

माँ शरदा अपनी कृपा का प्रसाद ग्रन्थ के पाठकों को भी शीघ्र दें, यह प्रार्थना उनके चरणों में निवेदित करते हुए—मंगलमय कामनाओं के साथ।

दिनांक २०-१-८१   डॉ. धनवती मिश्र

* *

॥ श्री ॥

डॉ. श्यामा भटनागर संस्कृत विभागाध्यक्ष, ज्ञान-विज्ञान महाविद्यालय, वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

पण्डित राम प्रसाद शर्मा शास्त्री के पूर्व प्रकाशित शिव-तत्त्व-दर्शन, शक्ति-तत्त्व-दर्शन, एवं विष्णु-तत्त्व-दर्शन नामक कृतियों के माध्यम से पाठकगण पूर्ण परिचित हो चुके हैं। ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन नामक प्रस्तुत ग्रन्थ उसी श्रृंखला की चोथी कड़ी है। शास्त्री जी ने साधारण हिन्दी पढ़े लिखे एवं संस्कृतज्ञ विद्वान दोनों को समानरूपेण उपयोगी विधि द्वारा स्व-संस्कृति से परिचित कराने हेतु जिस विलक्षण कार्य-धुरा का वहन किया है, उसके लिए वे सभी संस्कृति-प्रमियों के धन्यवादार्ह हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय देव-त्रयी में ब्रह्मा जी ही सबसे अधिक उपेक्षित देव रहे हैं। शिव एवं विष्णु के सम्बन्ध में धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य की प्रचुरता यदि समस्याकारिणी हो सकती है तो ब्रह्मा के सम्बन्ध में (कतिपय पुराणों को छोड़कर) उसका नितान्त अभाव ही समस्या को जन्म देता है।

शास्त्र पारंगत एवं अध्यवसायी लेखक ने वेद, विभिन्न पुराण, योगवशिष्ठ,

तंत्र, उपनिषद्, कल्प, सहस्रनाम, रामायण, महाभारत, स्मृति आदि विभिन्न कोटि के ग्रन्थों का मंथन कर ब्रह्मा विषय का सम्यक् प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत प्रयास में एक श्लाघ्य नूतनता यह है कि प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाण्य के साथ उस दिशा में होने वाले अर्वाचीनतम अनुसंधानों का सदुपयोग कर विषय को पूर्णता प्रदान करने के साथ प्राचीन-नवीन का संगम प्रस्तुत कर आधुनिक विद्वानों को भी स्वसंस्कृत्योन्मुख करने हेतु पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

द्वितीय सोपान प्राचीन भारतीय पौराणिक कालगणना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

शास्त्री जी का यह वैशिष्ट्य है कि वे ज्ञान प्रधान आध्यात्मिक विवेचन के अन्तर्गत कर्मकाण्डियों की दृष्टि से पूजा विधि, मूर्तिस्थापन, प्रतीकादि का परिचय, धर्मप्राण श्रद्धालु विश्वासी लोक दृष्टि से तीर्थों एवं उनके माहत्म्यों तथा यायावरीयों की दृष्टि से तीर्थों की दैशिक स्थिति, मार्ग तथा अन्य सुविधाओं का वर्णन भी कर देते हैं।

उद्धृत मूल-अंशों का भाषानुवाद संस्कृत-ज्ञान-रहित सर्वमान्य के लिए भी ग्राह्य बना देता है।

प्रसंगवश 'वाक् शक्ति सरस्वती' एवं 'ब्रह्मा शक्ति गायत्री' आदि के प्रतीकों का उद्घाटन तथा भारतीय संस्कृति विस्मृत भारतीयों को शिखा एवं सूत्र की महत्ता का सप्रमाण स्मरण कराना ग्रन्थ महत्ता में अभिवृद्धि कारक है।

अतः यह ग्रन्थ धर्म-जिज्ञासुओं, विद्वानों, अनुसंधान कर्ताओं, विद्यार्थियों तथा श्रद्धालु लोक मानस सब ही के लिए उपयोगी तथा पुस्तकालयों एवं व्यक्तिगत रूप में भी संग्रहणीय है।

शास्त्री जी अपनी संस्कृति की इसी प्रकार सतत साधना एवं सेवा करते हुए चिरायु हों, यही मेरी शुभ कामना है।

दिनांक २०-१-८१ श्यामा भटनागर

* *

॥ श्रीः ॥

पण्डित द्वारकाप्रसाद शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, काव्य-सांख्य-स्मृतितीर्थ, कविराज, आयुर्वेदकेशरी-भूषण, रत्नादि पदवी-अलंकृत, राजगांगपुर (सुन्दरगढ़) उड़ीसा प्रान्त

विद्वद्वरेण्य पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री द्वारा विचिरत 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' में वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, स्मृति आदि प्राचीन तथा अर्वाचीन सम्मानित बहुसंख्यक ग्रन्थों के चुने हुए सैकड़ों प्रमाण सन्दर्भ पुष्टित चौबीस सोपानों में विभक्त ब्रह्मा-विषयक सभी प्रकारों का प्रतिपादन किया गया है। मूल ग्रन्थों के पाठ के साथ उनका सरल अनुवाद होने से साधारण हिन्दीभाषी से महाविद्वानों तक के

लिए ग्रन्थ समान उपादेय तथा आदरणीय है। एक ही ग्रन्थ में सैकड़ों ग्रन्थों के समन्वय द्वारा ब्रह्मा-विषयक यह रचना हमारे भारतीय धर्म-संस्कृति 'इन्साइक्लोपीड़िया' जैसी है। सनातनधर्म-साहित्य में इस प्रकार के उत्तम प्रामाणिक ग्रन्थ के प्रत्येक सोपान में सचमुच धार्मिक पथ में नवीन प्रकाश फैलता दृष्टि में आता है। लेखक का सोपान वर्गीकरण, सामग्रीचयन, प्रस्तुतीकरण अपनी विशेषताएँ हैं। ग्रन्थकार इस वृद्ध अवस्था में जिस लगन, कर्मठता एवं निःस्वार्थ सनातन धर्म की सेवा कर रहे हैं यह उनकी धर्म, राष्ट्र, साहित्य, समाज की सर्वोच्च सेवा का प्रतीक है। इसके द्वारा हम सबको प्रेरणा व अनुकरण ग्रहण करना चाहिए। यह लेखक की चतुर्थ कृति है। लेखक ने इन ग्रन्थों की रचना में अत्यन्त कठिन परिश्रम और प्रचुर धन व्यय किया है। आपकी प्रत्येक ग्रन्थ रचना में शास्त्र दीक्षितता के साथ सर्वोच्च मस्तिष्क विचारों का द्योतक है। आपकी लेखनी द्वारा तिरोहित शिव-शक्ति-विष्णु तथा प्रस्तुत 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' सब ही ग्रन्थ 'कौस्तुभमणि' हैं।

"अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मण वर्चसे न" इस देव वाणी द्वारा ईश्वर से प्रार्थना है कि आप अपने राष्ट्रीय, यश, स्वातन्त्र और ब्रह्मतेज से सत्य-शिव-सुन्दर और समृद्ध करें। ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़कर मेरा चित्त परम प्रसन्न हो गया। लेखक की विद्वद्ता एवं कठिन श्रम इस लेखनी द्वारा पूर्ण प्रकट करना सम्भव नहीं है।

दिनांक ९-१-८१   कविराज द्वारकाप्रसाद वैद्य

**

॥ श्रीः ॥

श्रीमती प्रोफेसर कादम्बरी शर्मा, सिल्लीगुड़ी (पश्चिम बंगाल)

पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री द्वारा लिखित शिव, शक्ति तथा विष्णु-तत्त्व-दर्शन के पश्चात् यह चतुर्थ कड़ी है 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन'। इस ग्रन्थ को वैज्ञानिक आधार पर चौबीस सोपानों में विभक्त किया गया है। शास्त्री जी ने गवेषणात्मक दृष्टि द्वारा ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव, उनका प्रतीक (मूर्ति) वाहन, निदान, प्रयाण, उनका आयुमान, तात्त्विक व्याख्या, उनके अवतरण अंगों के क्रिया-कलापों का अपनी सशक्त लेखनी द्वारा प्रमाणित प्रतिपादन किया है। तत्पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा वरदान प्रदान एवं नारद जी द्वारा ब्रह्माजी को शाप होने की मनोहारी कथाओं और ब्रह्माजी के तीर्थ मन्दिरों का माहात्म्य परिचय द्वारा इस ग्रन्थ को अत्यन्त रोचक बना दिया है। हिन्दू संस्कृति के प्रतीक (चिह्न) यज्ञोपवीत तथा शिखा (चोटी) की आवश्यकता व महत्त्व का विवेचन किया है। ब्रह्मा की ब्रह्मशक्ति सावित्री (गायत्री) तथा वाक् शक्ति सरस्वती उनके वाहनादि सहित वर्णन और पूजा विधि भी लिखी है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मा सम्बन्धित कोई विषय अछूता नहीं रहा जिसका इसमें समावेश नहीं हो पाया हो। वास्तव में यह ब्रह्मा-विषयक

अपूर्व अनोखा ग्रन्थ है जो शास्त्री जी की कठिन सारस्वत साधना का प्रतिफल है। हिन्दू धर्म-संस्कृति में रुचि रखने वाले सभी पाठक एवं शोधकर्ता सर्वदा शास्त्री जी के कृतज्ञ रहेंगे।

दिनांक ८-१-८१ प्रोफेसर कादम्बरी शर्मा

* *

॥ श्रीः ॥

पण्डित जगदीशप्रसाद दीक्षित, सेवा-निवृत्त मजिस्ट्रेट, १६ जोबनेर बाग, जयपुर (राजस्थान)

सनातन धर्म में त्रिदेवत्व (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) की मान्यता है; किन्तु सृष्टि-निर्माता ब्रह्मा का पुष्कर के अतिरिक्त कहीं मन्दिर देवालय तथा ब्रह्मा-विषयक कोई पूजा विधि, व्रत, स्तोत्र, कवच देखने-सुनने में नहीं आये। पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री का यह नितान्त ही अपूर्व प्रयास स्तुत्य है। इन्होंने महोदधि समान बृहत्काय अनेक धर्मग्रन्थों का अहर्निश अध्ययन कर अनेक बहुमूल्य मुक्ताओं को चुन-चुनकर अत्युत्तम अपूर्व ग्रन्थ की रचना की है यह हिन्दू धर्मसंस्कृति की महान् सेवा है। लेखक के पूर्व निर्मित शिव, शक्ति, विष्णु-तत्त्व-दर्शन ग्रन्थ विद्वत् समाज में लोकप्रिय हुए हैं। इसी प्रकार यह ग्रन्थ भी विद्वानों द्वारा समादृत किया जायेगा। ग्रन्थ निर्माता का यह कार्य अत्यन्त अभिनन्दनीय है।

दिनांक १७-१२-८० जगदीश प्रसाद दीक्षित

**

॥ श्री ॥

वैद्य निरंजनलाल मिश्र भिषगाचार्य, मैनेजर श्रीधन्वन्तरि औषधि निर्माण शाला, जयपुर

पण्डित रामप्रसाद शर्मा शास्त्री ने अपने वानप्रस्थ आश्रम के सदुपयोग हेतु प्राचीन अनेक धर्म-ग्रन्थों का स्वाध्याय कर शिव-तत्त्व, शक्ति-तत्त्व, विष्णु-तत्त्व-दर्शन बृहत्काय ग्रन्थों की रचना कर सनातन धर्म की बृहत् प्रशंसनीय सेवा की है। इन कृतियों के निर्माण द्वारा लेखक ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। विश्व के आदि निर्माता ब्रह्मा के विषय में कोई पुस्तक आज तक देखी-सुनी ही नहीं थी। यह नवीन कृति विद्वत् समाज में लेखक के पूर्व ग्रन्थों से अधिक सम्मान प्राप्त करेगी। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं लेखक के स्वस्थ दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

दिनांक १२-१-८१ वैद्य निरंजनलाल मिश्र

* *

॥ श्रीः ॥

पण्डित विश्वनाथ मिश्र, प्रधानाचार्य श्री शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर, (राजस्थान)

श्रीरामप्रसाद शास्त्रिशर्म द्वारा लिखितस्य ब्रह्म-तत्त्व-दर्शनस्य

संक्षिप्त परिचयो व्यलोकि। पुस्तकेस्मिन् कार्यब्रह्मणो हिरण्यगर्भस्य विषये समुपन्यस्तानि समपेक्षितानि तत्त्वानि निखिलानि। कथं तदीयं प्राकट्यं, कीदृशं च तदीयं तत्त्वम्, कथञ्चासावतरति, कदाऽवतरति, कियन्तश्च तदीया अवताराः कथं वा पुष्करक्षेत्रेण सह तदीयः सम्बन्धः पुष्करस्य च किं वैशिष्ट्यमित्यादयः कृते बहूनामविज्ञातविषयाः प्रस्तुतीकृत्वा वर्तन्तेऽत्र। ब्रह्मणः सम्बन्धितया ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतं, तदवसरे नान्तरीयकतामापन्ना शिखा, सावित्री, सरस्वती प्रभृति विषयाश्चतुर्विशंति सोपानेषु विभज्योपवर्णिताः। कर्मणानेन महदुपकृतं धार्मिकं जगल्लेखकेनेति नात्र संशयः। एतदर्थं भूयः परिश्रान्तमनेन। नूनमत्र मननपथमानीतानि पुराणानि, सम्यक्तया पर्यालोचितानि भारतीय संस्कृति मणि मञ्जूषा कल्पानि रामायणमहाभारतभागवतादीनि ग्रन्थरत्नानि, परिशीलिता वेदाः उपनिषदश्चाप्यवहितचेतसा विचारपदवीमानीताः।

ब्रह्मतत्त्वख्यापने पुस्तकमिदं कियदुपकरोतीति कथनस्य नास्त्यावश्यकता। अतीवोपयोगि पुस्तकमिदमधीयतां जिज्ञासुभिः विज्ञायताञ्च ब्रह्मतत्त्वम्, अनुष्ठीयतां समर्चना, क्रियताञ्च मन आत्मभुवि, जायताञ्च प्रसारोऽस्य भुवि, स्यादेतत् श्रेयसे प्रेयसे च सर्वेषामिति कामयते।

दिनांक १६ मई, ८१ विश्वनाथ मिश्रः

**

॥ श्रीः ॥

डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बी. एस. एम. पोस्ट-ग्रजुएट कॉलेज, रुड़की (उ. प्र.)

वस्तुतः तपी धर्म ग्रन्थकार पण्डित रामप्रसाद शर्मा 'विश्व कोश' हैं।

'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' तपी धर्म ग्रन्थकार एवं निष्ठावान धर्मानुयायी श्रद्धेय पण्डित राम प्रसाद शर्मा शास्त्री का अमृत प्रसाद ही है, जो आस्तिक हृदयों का शृंगार बनेगा, इसलिये कि उसमें 'सृष्टि कर्ता ब्रह्मा' के तत्त्व का प्रामाणिक शास्त्रोक्त विवेचन किया गया है और बुद्धिजीवी-शोधार्थियों के लिये आकर्षण केन्द्र बनेगा क्यों कि उसमें भारतीय-मनीषा का सारतत्त्व निहित है।

विद्वत्-प्रवर पं. राम प्रसाद शर्मा शास्त्री ने 'त्रिदेव' विषयक भारतीय-चिन्तना का गहन और व्यापक अनुशीलन करके सर्वप्रथम दिया था 'शिव-तत्त्व-दर्शन' जिसमें देवाधिदेव महादेव शिव के परम तत्त्व का दर्शन उन्होंने हमें कराया था। परम शिव ही मूल-तत्त्व हैं, जिनकी परम शक्ति इस सृष्टि का कारण भी है और प्रलय की नियोजिका भी है। इसीलिये संभवतः विद्वान् चिन्तक शर्मा शास्त्री जी ने 'परम शिव' की पूर्णता के निमित्त 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' हिन्दी जगत् को दिया।

'शिव-तत्त्व-दर्शन' एवं 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' महाग्रन्थ उन अनास्थावादियों के लिए चुनौती बनकर आये, जो हिन्दू-धर्म एवं पौराणिक साहित्य को 'दकियानूसी

दृष्टि' से पूर्ण मानकर उपहास करते रहे हैं। इन दोनों ग्रन्थों में शास्त्री जी ने विभिन्न पुराणों, उपनिषदों एवं विशद धर्म ग्रन्थों से शिव एवं शक्ति विषयक प्रामाणिक सामग्री एक स्थान पर संकलित करके हिन्दी भाषियों पर उपकार किया है।

उक्त दोनों ग्रन्थों के क्रम में शास्त्री जी ने 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' शीर्षक से ऐसा विलक्षण महाग्रन्थ गत वर्ष दिया, जिसमें भारतीय अवतारवाद की अवधारणा के मूलाधार भगवान् विष्णु का तात्विक रूप विवेचित हुआ था।

परम हर्ष और गौरव का विषय है कि भारतीय-संस्कृति के मूल धर्म ग्रन्थों की प्रामाणिक सामग्री का संकलन करके विद्वान् पं. राम प्रसाद शर्मा शास्त्री अब 'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' में सृष्टि कर्ता ब्रह्मा के तात्विक स्वरूप का दर्शन हमें करा रहे हैं। संयोग ही समझिये कि जब श्रद्धेय शास्त्री जी 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' छपाने को तैयार हो रहे थे, तो मैंने कहा था कि यह अमूल्य ग्रन्थ सन् १९८० (१+९+८+०=१८=९ 'पूर्णत्व' का प्रतीक) में छपेगा और यह सत्य हुआ।

उसी समय 'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' की भी चर्चा चली तो मैंने कह दिया कि यह ग्रन्थ '१९८१' (१+९+८+१=१९=१०=१ ब्रह्मतत्त्व का प्रतीक) में छपेगा। यह भविष्यवाणी नहीं है प्रत्युत विद्वद्वर शर्मा शास्त्रीजी की 'शक्ति-तत्त्व-दर्शन' में उल्लिखित 'अंक शक्ति महत्व' अध्याय के अध्ययन से ही प्राप्त 'अन्तश्चेतना' (इन्टयूशन) का ही सुफल है।

यह 'ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ अब तक के तीन ग्रन्थों से अलग क्रम में रचा गया है। शिव एवं शक्ति तत्त्व विषयक ग्रन्थ क्रमशः तीन-तीन स्कन्धों तथा १८-१८ सोपानों में विभक्त थे। 'विष्णु-तत्त्व-दर्शन' में चार स्कन्ध, सोपान १८-१८ रखे गये थे, जो विष्णु के 'चतुर्भुज' स्वरूप के प्रतीक थे। 'ब्रह्मा-तत्त्व दर्शन' में कुल २४ सोपान रखे गये हैं अर्थात् २+४=६ ब्रह्मतत्त्व की एकांश शक्ति=३ का द्वित्व जो प्रतीक इस सत्य का है कि ब्रह्मा जन्म के अधिदेव हैं और वे ही 'मृत्यु' अर्थात् 'प्रलय' के अधिपति शिव तक पहुँचाने वाले कारण हैं। वस्तुतः 'ब्रह्मा' में 'शिवत्व' मूल रूप में अवश्य रहता है, अतः ब्रह्मा में 'ब्रह्म+आ' अर्थात् शक्ति का समन्वय रहने से ही (३+३=६ की) शक्ति रहती है। ब्रह्मा कारण-कार्य दोनों ही हैं, इसलिये ग्रन्थ में २४ सोपान साभिप्राय रखे गये हैं।

मुझ जैसे अकिंचन का परम तपी श्रद्धेय शर्मा शास्त्री जी द्वारा निर्मित कृति 'ब्रह्मा-तत्त्व-दर्शन' ग्रन्थ पर अपने विचार (सम्मति) लिखने का सुअवसर तो निश्चय ही पूर्वकृत शुभ कर्मों का ही सुफल है। मैं परम प्रभु से यही प्रार्थना करता हूँ कि शर्मा शास्त्री जी दीर्घायुष्य प्राप्त करें, वे निःसन्देह "हिन्दू धर्म के 'विश्वकोश' हैं", जिन पर हम सब सच्चे रूप में गर्व कर सकते हैं।

'हे प्रज्ञा के दीप तुम्हारा दिव्य उजाला, जन-मन के मानस का तम नित दूर करे।
हे ज्ञान-सिन्धु ! यह ज्ञान तुम्हारा अविरल, हर ले सब अज्ञान, ज्ञान भरपूर भरे॥'

मेरी हार्दिक मङ्गल कामनाएँ एवं सात्त्विक श्रद्धा परम तपस्वी श्रीयुत पं.

रामप्रसाद शर्मा शास्त्री के श्रीचरणों में समर्पित है। सादर—

दिनांक १३ मई, १९८१ ई. विनीत—
योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

* *

॥ हरिॐ ॥

पण्डित रमेशचन्द्र तैलंग शास्त्री एम. ए., शिक्षा शास्त्री., बी. एड., संगीत सरोज, कोविदमणि, प्राचार्य राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, करोली, राजस्थान

ब्रह्म-तत्त्व-दर्शने प्रशस्ति

आर्य सुरभारती सौरभ लोलुप मिलिन्द प्रतीकाशा:। दृष्टं मया तावकम् ब्रह्म-तत्त्व-दर्शन संक्षिप्त परिचय पत्रम्। अवलोकनेनैतज्ज्ञातम् यदस्य सर्वापेक्षत्वम् वरीवृत्यते। अप्रकाशित पूर्व पठन पाठन साधन प्रधानोऽयङ् ग्रन्थ शेमुषीमताम्। अयम् नव प्रकाशित ज्ञानोपलब्धि द्वारा श्रोतृणामध्येतृणाञ्च मनस्यनल्पमाह्लादम् जनिष्यति। अनुदिनम् परिक्षीयमाणधर्माचरणसमयेऽस्मिन् दारुणकलिकाले इयङ् कृति-स्सर्वेषाम् कल्याणम् करिष्यति। एषाऽतीव परिश्रमस्य परिचायिका विद्यते। अयम् हि जिज्ञासूनाम् ज्ञानपिपासूनाञ्च कौतूहलमुत्पाद-यिष्यति। एतद्द्वारा मानवो ब्रह्म-तत्त्व शक्ति विषयक वास्तविक विज्ञानम् प्राप्स्यति। अमुष्मिन्ननेके शास्त्रपुराणोपनिषदादयः प्रमाणाः सन्ति। इयमाधुनिक शोधपूर्णरचना वर्त्तते। अयं ग्रन्थः पुरुषब्रह्मणः प्रारम्भ ब्रह्माण्ड ज्ञानेन संयोजयामि। तेन च तस्य आत्मज्ञानम् नो भविष्यति। सृष्टिकर्त्तुर्ब्रह्मणो मूर्तिपूजाविधानमवताराऽस्मिन् भागवतेऽनिरुद्ध, ऋक्षराज जाम्बवान् मध्वाचार्यादयः प्रमापयन्ति। अस्मिन् खलु अपूर्व प्रकाशित रहस्यानाम् प्राकट्यम् दृष्टवा नितराम जना मोदिष्यन्ते, समस्त शास्त्रीय कर्मसंपादनाय वैदिककार्यनिष्पन्नार्थञ्च शिखाऽऽवश्यकीयाऽस्ति। तया विना संध्या पूजोपासनादयो निष्फलाः न सम्यग् पूर्वफलमुत्पादयि-ष्यन्ति। अस्माकञ्च हिन्दुत्व प्रतीकेषा शिखा इति सुष्ठु प्रतिपादिमस्ति-अस्मिन् ग्रन्थे। भगवतो ब्रह्मशक्ति वाग्रूपा पूजाविधि देवीभागवत नवम स्कन्ध द्वारा समर्थिता एतत्प्रकाशनम् तथा गायत्री-सावित्र्यौ ब्रह्मणो शक्ति वर्त्तते तयोरपि पूजोपासना द्विजातिभ्यो हितम् सम्पादयति। यत्र तत्र भाषार्थोऽप्यल्प भाषा विज्ञानवताङ्कृते उपकरिष्यामि। अतः सर्वथा मम मतेन शस्तमे तत्त्व व रचना कार्य्यमिति।

श्रीमतां रामप्रसाद शास्त्रि विविधोपाधिभिरलंकृतानां महोदयानां पुरतो मे श्रद्धाप्रसूनाञ्जलि शिरसोपतिष्ठताम्।

दिनांक १४ मई १९८१ ई० पण्डित रमेशचन्द्र तैलंग

ब्रह्म (ब्रह्मा)-तत्त्व-दर्शन

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२८	रक्त वेत	रक्तश्वेत
६	१३	पहँच	पहुँच
७	१७	मुसकान	मुस्कान
८	२०	श्रीदमभागवत	श्रीमद्भागवत
८	२३	दिक	दिक्
९	२३	पृष्ट	पृष्ठ
१०	१६	नाम मे	नाम से
१०	१६	वर्ष	वर्ष
१२	१	ध्वनि	ध्वनि
१३	१९	गायो	गायों
१६	१३	लिङ्गभूययस्त्वाधिकरण	लिङ्गभूयस्त्वाधिकरण
१६	३२	व्रत	व्रत
१८	११	कुवेर	कुबेर
१८	१५	ब्रह्मा, महेश	ब्रह्मा, विष्णु, महेश
२१	३०-३१	जन्म-बुद्धि-विकास	जन्म-वृद्धि-विकास
	१	करत	करते
२२	१	अतएव	अवयव
२३	२७	(१, ८१; ८२, ३)	(१०, ८१; ७, ८२, ३)
२४	२७	विवेचेन	विवेचन
२५	१७	तव	तब
३०	१०	सुशोमित	सुशोभित
३३	२	ग्रामवासियो	ग्रामवासियों
३८	१३	कान्तिमान	कान्तिमान
४१	२०	वर्ष	वर्ष
४५	११	होगें	होंगे
४६	२७	कार्मो	कार्यों
४७	१०	सर्वोच्च	सर्वोच्च
४७	२२	निर्दोष	निर्दोष
४७	३३	अकर्मन्यता	अकर्मण्यता
५७	२१	सृत्यु	मृत्यु
५७	३०	इसौ भांति	इसी भांति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८	१४	ग्रोंर	ग्रौर
६४	२३	दूसरी ग्रौर	दूसरी ग्रोर
६९	१४	सध्याग्रों	संध्याग्रों
६९	२३	उत्तभाग	उत्तरभाग
७३	१६	नागपत्तम्	नागपत्तनम्
८२	२७	सार्यं	सायं
८५	२	यबोपवीत	यज्ञोपवीत
८५	३४	यज्ञ-यज्न	यज्ञ-यजन
८६	२४	सस्कार	संस्कार
८९	२	नतन	नूतन
८९	१७	मृत्यु-सस्कार	मृत्यु-संस्कार
१००	२८-२९	सुप्रतिष्ठत	सुप्रतिष्ठित
१०५	२१	पुण्पसूत्रविनिर्मितम्	पुण्यसूत्रविनिर्मितम्
१०६	६	सिन्द्र्र	सिन्दूर
१०६	१२	विरञ्ज	बिरञ्ज
१०७	६	पुरुषों का	पुरुषों को
११६	५	मार्गेंण	मार्गेण
११७	४	ग्रति ग्रत्यन्त	प्रति ग्रत्यन्त
११९	३५	क्ष म्यतां	तत्सर्वं क्षम्यतां
१२०	१४-१५	वस्तु रक्षा की	वस्तु की रक्षा
१२०	३५	ग्रर्था त्	ग्रर्थात्
१२१	८	भगत्कृपा	भगवत्कृपा
१२४	१५	प्रान्नीय	प्रान्तीय
१२४	२०	भगवनी	भगवती
१२९	११	सृप्टि	सृष्टि
१३०	१८	समर्व्तताग्रे	समवर्तताग्रे
१३०	३३	चार मख	चार मुख
१३४	५	महर्षियो	महर्षियों
१३४	७	बना कर को पञ्चोपासना	बना कर पञ्चोपासना
१३५	३४	तीन मेद	तीन भेद
१३६	९	व्रह्माजी	ब्रह्माजी
१३६	१३	रुद्राणीश क्ति	रुद्राणी शक्ति
१३६	३३	शव्दमय	शब्दमय
१३७	२५	स्वामि	स्वामी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३७	२५	धर्मकल्पद्रृम	धर्मकल्पद्रुम
१४०	४	हरिशंकर शास्त्री वेणीराम शास्त्री	हरिशंकर वेणीराम शास्त्री
१४०	१४	वांसवाड़ा	बांसवाड़ा
१४२	३	वेखने	देखने
१४२	१५	ब्रजेन्द्ररनाथ शर्मा	ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा
१४४	२	अनन्स	अनन्त
१४४	१५	दिनांर	दिनांक
१५०	८	प्रादुभाव	प्रादुर्भाव
१५१	१६	वक्रमे	वैक्रमे
१५१	२२	एत्र-तत्र	यत्र-तत्र
१५१	२४	पूनीत	पुनीत
१५८	१३	क्ररके	करके
१५८	२४	विद्रन्मूर्धंन्या	विद्वन्मूर्धन्या
१६२	१२	इण्डोखोजी	डण्डोलोजी
१६२	२३	जा रहा हैं	जा रहा है
१६३	२	विश्नाथ	विश्वनाथ
१६३	२८	हिन्दा	हिन्दी
१६८	२	तक लिए	तक के लिए
१६८	११	दशन	दर्शन
१७४	१५	शरदा	शारदा
१७४	१९	विभागायध्क्ष	विभागाध्यक्ष
१७४	२६	प्रमियों	प्रेमियों
१७५	२९	विचिरत	विरचित
१७६	३४	विषयव	विषयक

□□

J